

॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षण श्रेणी की पाठ्यपुस्तक : 9

सहजानंद चरित्र

लेखक

प्रो. रमेश म. दवे



प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004

SAHAJANAND CHARITRA (Hindi Edition)

(Life sketches of Lord Swaminarayan)

By Prof. Ramesh M. Dave

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.**Inspirer:** HDH Pramukh Swami Maharaj**Presented by:**Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.**Publishers:**SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.**2nd Edition:**

March, 2009. Copies: 4,000 (Total Copies: 7,000)

Copyright: ©Swaminarayan AksharpithThis book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.**ISBN:** 81-7526-171-4**रज्जूकर्ता :** बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.**प्रेरणामूर्ति :** प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज**सूचना :** सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठइस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की
लिखित सम्मति अनिवार्य है।**द्वितीय संस्करण :** मार्च, 2009**प्रति :** 4,000 (कुल प्रतियाँ : 7,000)**मूल्य :** रु. 25.00 (स्वामिनारायण अक्षरपीठ के आर्थिक अनुदान से
रु. 37-00 से घटाया हुआ मूल्य।)**मुद्रक एवं प्रकाशक :****स्वामिनारायण अक्षरपीठ**

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक

जय श्री स्वामिनारायण।

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी

(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तमनारायण भगवान् स्वामिनारायण ने इस पृथ्वी पर आकर अनन्त दिव्य चरित्र किये हैं। इन अपार चरित्रों का सम्पूर्ण वर्णन करना मुश्किल है – असम्भव है। फिर भी ‘घनश्याम चरित्र’ एवं ‘नीलकंठ चरित्र’ के बाद, अब श्रीजीमहाराज ने धर्मधुरा धारण की तब से लेकर देहत्याग तक के चरित्रों का संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तिका के द्वारा आपके समक्ष रखने का हमारा यह अल्प प्रयास है।

पुस्तक की रचना एवं प्रसंगों का चुनाव प्रायः निश्चित की हुई निम्नोक्त कक्षा को लक्ष्य में रखकर किया गया है। (1) खास खास जानने योग्य अत्यावश्यक प्रसंगों को इसमें स्थान दिया है। (2) ‘सत्संग शिक्षण परीक्षा’ के अभ्यासक्रम में सूचित अन्य पाठ्यपुस्तकों में जिन प्रसंगों का विस्तृत निरूपण किया गया है, ऐसे कुछ प्रसंगों का निर्देश यहाँ नहीं किया गया है। और कुछेक आवश्यक प्रसंगों का अतिसंक्षेप भी करना पड़ा है। (3) इस पुस्तिका में जो भी लिखा गया है, वह सम्प्रदाय के प्रचलित एवं सर्वसामान्य ग्रंथों का आधार लेकर लिखा गया है, उन ग्रंथों की सूची इस पुस्तिका के अंत में दी गई है। (4) सम्प्रदाय के सदगुरुओं द्वारा रचित-उपलब्ध ग्रंथों में भी कुछ चरित्रों, साल-तिथियों और प्रसंगों के निरूपण में पाठभेद मिलता है, ऐसी स्थिति में समान्तर निरूपित प्रसंगों एवं परम्पराप्राप्त और सम्प्रदाय में सुनाई देते प्रचलित निरूपणों को प्राधान्य दिया गया है। (5) प्रसंगनिरूपण में स्थान और काल का क्रम ध्यान में रखा है, शायद ही कहीं अपवाद हो। ‘पादटीपों’ में दी हुई साल-तिथियाँ सम्प्रदाय के प्रसादीरूप स्थानों के शिलालेखों एवं मान्य ग्रंथों में मिले हुए संकेतों पर आधारित हैं। (6) ये साल-तिथियाँ ‘हालारी पंचांग’ के अनुसार हैं। विक्रम संवत् का हालारी वर्ष आषाढ़ शुक्ला १ से लेकर ज्येष्ठ कृष्ण अमावस तक का माना जाता है। श्रीजीमहाराज के ‘वचनामृत’ एवं ‘हरिलीलामृत’ में इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के अभ्यासक्रम के एक अंश के रूप में इस पुस्तिका की रचना की गई है। ‘सत्संग परिचय’ परीक्षा के लिए रचित यह पुस्तिका आपके करकमलों में रखते हुए हमें प्रसन्नता होती है। मूल गुजराती पुस्तिका का यह हिन्दी अनुवाद अक्षरनिवासी श्री योगेन्द्र प्रकाशजी ने किया है। हम उनके आभारी हैं।

भगवान् स्वामिनारायण, गुणातीतानंद स्वामी एवं प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज को प्रसन्न करने के लिए सभी सत्संगी बालक, युवक एवं जिज्ञासु इस अभ्यासक्रम को तैयार करके सत्संग की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें, यही अभ्यर्थना।

– संपादक मंडल

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयतेतमाम् ॥



ठम अभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
 ठम अभी श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ॥
 नहीं डरते नहीं करते, ठमारी जान की पत्रवाह ।
 ठमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए ॥
 ठमने है यज्ञ आरंभ, अढ़ा बलिदान ठम देंगे ।
 ठमारा अक्षयपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए ॥
 ठम अभी श्रीजी की अंतान, अक्षय में वास ठमारा है ।
 स्वधर्मी भूत नमाई है, अब ठमें शर्म किसीके लिए ॥
 मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए ठम पूर्णकाम अभी ।
 प्रगट पुरुषोत्तम पाये, अंत से मुक्ति के लिए ॥

अनुक्रमणिका

- [1] स्वामिनारायण का भजन (2) श्रीहरि का कठोर धर्माचरण (4) सत्संग का प्रचार और रघुनाथदास का उपद्रव (5) नर्क के कुण्ड खाली किये (6)
- [2] मगनीराम से अद्वैतानन्द (8) रामचन्द्र सेठ का निश्चय (13) समाधि प्रकरण (14) लोज में अन्नकूट उत्सव (16) मुक्तानन्द स्वामी के भ्रम का निवारण (16) दो स्वरूपों में दर्शन (19) फकीर को सत्संगी बनाया (21)
- [3] सदाव्रत की प्रवृत्ति (22) दूध से मीठी छाछ (23) सुन्दरजी बढई की परीक्षा (24) मूलजी सेठ की रक्षा (26) रघुनाथदास सत्संग से विमुख (27) लालजी बढई को दीक्षा दी (28)
- [4] कारियाणी और गढ़डा में पधरावनी (30)
- [5] कल्पित भय एवं वहम से मुक्ति (31) वासुदेवनारायण की प्रतिष्ठा (34) अच्छे पदार्थों का (35)
- [6] मूलखाचर की व्यसनमुक्ति (36) भट्टजी की उलझन मिटाई (37) बालहत्या बन्द करवाई (38) सतीप्रथा का अन्त (41) परमहंस दीक्षा (42)
- [7] मूलजी भक्त की महिमा (43) अट्टारह को दीक्षा (45) हिंसामय यज्ञ का खंडन (46) ब्रह्मचारी को साथ बैठाया (47) स्वयं पालन करके फिर पालन करवाया (48) साधुओं की कठिन परीक्षा (49) गाजर मेरी बैरन (52) पठान को निश्चय (53)
- [8] गूँगे के मुख से वेद-पाठ (54) संस्कृत पढ़ने की आज्ञा (55) जेतलपुर में हिंसामुक्त यज्ञ (57) माणकी का सवार (59) लोलंगर का उपद्रव (63) जगजीवन का अन्त (64)
- [9] सबका कल्याण करना है (65) डभाण का यज्ञ (67) 'हम पर दयारखिएगा' (68) कृपासाध्य श्रीजीमहाराज (69) समदर्शी (71)
- [10] धर्म भक्ति के दर्शन (71) शोभाराम की आँखें गई (72) मूलजी सेठ की पत्नी को दृष्टि का दान (74)
- [11] जीवाखाचर की परीक्षा (75) पवित्र वाणी का नियम (77) अकाल की भविष्य वाणी (78) मोक्ष की विद्या (79) अश्लीलता बन्द करवाई (81) गुणातीत की महिमा (83) नवाब का निश्चय (85)
- [12] संवत् 1869 के वर्ष में अकाल (87) अकाल ने बिदा ली, सुकाल आया (88)
- [13] जालिया में बीमारी ग्रहण की (88) कबूतर के कबूतर (91)

- [14] गरीबनिवाज (92) भगवान की गद्दी (94) धरमपुर में पधरावनी (95)
‘सबको पूर्ण अखण्ड और शुद्ध बनाऊँगा’ (96) बारह स्वरूपों में दर्शन (97)
- [15] साधुओं के आचरण की रीति (98) बुरा स्वभाव छोड़ना (99)
- [16] लग्न के अश्लील गीत बंद करवाये (100) बच्चे को प्रसन्न किया (100)
- [17] वेदान्ताचार्य की पराजय (101) अहमदाबाद में पुनः प्रवेश (102) आणंद में
अपमान (105)
- [18] सद्गुरु बनाये (107) साधुधर्म समझाया (111) शिशुवत्सल प्रभु (112)
- [19] सहजानन्दी होना चाहिए (112)
- [20] श्रीहरि के प्राकट्य के छः हेतु (113) लोया में शाकोत्सव (115) भाइयों
का मिलन (116) पंचाला में बीमारी (117)
- [21] अपना वृत्तान्त (119) नरनारायण देव की प्रतिष्ठा (121) ‘हमको कैसा
कहेंगे?’ (124) बन्दर ने माला घुमाई (124) सहजानन्दरूपी सूर्य (125)
- [22] भुज में मूर्तिप्रतिष्ठा (126)
- [23] हमारा जड़भरत (127) धर्मकुल से मिलन (128) ‘यह कीचड़ नहीं चन्दन
है’ (129)
- [24] वरताल में लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा (130) सूरत में पधरावनी (130)
बिशप रेजिनार्ल्ड हेबर से भेंट (133) द्वारिका की गोमती वरताल में (136)
सौराष्ट्र के मंदिर (138)
- [25] नूतन मंदिरों का प्रारंभ (141) शूद्रों को द्विजत्व दिया (142) ‘शिक्षापत्री’
(143) धोलेरा में मूर्तिप्रतिष्ठा (145)
- [26] महन्तों की नियुक्ति (146) ‘हमारा अक्षरधाम’ (147) ‘शिक्षापत्री’ का
उल्लंघन मत करना (148)
- [27] संतों को जूते पहनाये (149) जूनागढ़ के मन्दिर में मूर्तिप्रतिष्ठा (149)
स्वामिनारायणिया (150)
- [28] गढ़पुर में मूर्तिप्रतिष्ठा (150) भावनगर में पधरावनी (151) गुण ग्रहण की
प्रेरणा (153)
- [29] अपनी छाप बनवाई (154) गवर्नर ज़ॉन माल्कम से भेंट (155) अन्तिम
दिन... (157) प्रतिज्ञा लिखाई (159) ‘हमें स्वस्थ होना है’ (160)
काकाभाई को दर्शन (161) ‘मीठा व्हाला केम विसरूं?’ (162) स्वधाम
गमन (164) ‘मैं तो आप में अखंड रहा हूँ’ (165) भगवान स्वामिनारायण
का पृथ्वी पर निवास (167) ग्रन्थसूचि (167)



पूर्ण पुरुषोत्तमनारायण भगवान श्री स्वामिनारायण

ग्रन्थ प्रवेश

भारतभूमि में संवत् 1837 (सन् 1781) चैत्र शुक्ला नवमी के दिन धर्मदेव और भक्तिमाता के घर बालक घनश्याम का जन्म हुआ। पृथ्वी पर एकान्तिक धर्म की स्थापना करने, अनन्त जीवों को मोक्ष देने और अपने भक्तों को सुख देने के लिए करुणा करके परब्रह्म पुरुषोत्तम पृथ्वी पर साक्षात् प्रकट हुए। अपने माता-पिता को उन्होंने सुख दिया। बालमित्रों के साथ दिव्य चरित्र भी किये। कालीदत्त जैसे असुरों का विनाश किया। आठ साल की उम्र में उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया। सकल शास्त्रों का अध्ययन उन्होंने बहुत कम समय में पूर्ण किया। दस साल की छोटी उम्र में काशी के पंडितों की सभा में जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म इन पाँच अनादि भेदों का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अपने माता-पिता को, अन्तकाल में अपने मूल स्वरूप का परिचय करवाया और उन्हें दिव्य गति दी। संवत् 1849 (सन् 1793) की आषाढ़ शुक्ला दशमी के दिन उन्होंने गृहत्याग किया।

हिमालय में सर्दी, गर्मी, बरसात, भूख, प्यास सहकर केवल कौपीन धारण कर खुले शरीर और नंगे पैर पैदल विचरण किया। पुलहाश्रम में चार्तुमास के दिनों में कठोर तपश्चर्या की और सूर्यनारायण को प्रसन्न किया। उन्होंने गोपाल योगी से अष्टांगयोग सिद्ध किया तथा उनको दिव्य गति दी। नौ लाख योगियों का कल्याण किया। अनन्त जीवों का उद्धार करते हुए, उत्तर, पूर्व और दक्षिण के तीर्थों में विचरण करते हुए वे सौराष्ट्र में संवत् 1856 (सन् 1800) की श्रावण कृष्ण षष्ठी के दिन गुजरात में जूनागढ़ जिले के लोज गाँव में पहुँचे। वहाँ रामानन्द स्वामी के आश्रम में मुक्तानन्द स्वामी के साथ निवास किया। दस महीने के बाद पीपलाना गाँव में उनकी

रामानन्द स्वामी से प्रत्यक्ष मुलाकात हुई। उन्होंने रामानन्द स्वामी को अपना गुरु बनाया। गुरु रामानन्द स्वामी ने संवत् 1857 (सन् 1801) की कार्तिक शुक्ला प्रबोधिनी एकादशी के दिन घनश्याम या नीलकण्ठ ब्रह्मचारी को स्वामी सहजानन्द नामाभिधान करके भागवती दीक्षा दी।¹

[1]

स्वामिनारायण का भजन

आ. संवत् 1858 (सन् 1802) मार्गशीर्ष त्रयोदशी को श्री रामानन्द स्वामी ने जूनागढ़ जिले के फणेणी गाँव में देहत्याग किया। सारे भक्तजन शोक सागर में डूब गये। परंतु सहजानन्द स्वामी ने संप्रदाय की धुरा संभालते हुए मुक्तानन्द स्वामी के साथ श्रीमद् भगवद्गीता की कथा आरम्भ करवाई, जो दस दिन तक चली।

कथा में श्रीहरि स्वयं अपने सिद्धांतों का सुंदर निरूपण किया। ग्यारहवें दिन कथा-पारायण की पूर्णाहुति हुई। विधिपूर्वक गुरु की सम्पूर्ण श्राद्धक्रिया संपन्न की गई। ब्राह्मणों को दानदक्षिणा दी गई और सबको भोजन करवाया गया।

चौदहवाँ दिवस हुआ। संवत् 1858 (सन् 1802) मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी के दिन सभी हरिभक्तों ने सहजानन्द स्वामी को आग्रहपूर्वक एक अलग सिंहासन पर बिठाया। उनके साथ मुक्तानन्द स्वामी और आश्रम के सभी संत बिराजमान हुए। भक्त समुदाय के पीछे और कुछ दूर स्त्रियों ने भी अपना स्थान लिया।

उस समय सहजानन्द स्वामी ने धर्मशास्त्रों के आधार पर धर्म-नियमों का उपदेश देते हुए कहा, 'श्री रामानन्द स्वामी ने मुझे अपने स्थान पर बैठाया है, इसलिए गुरु के साथ से आप सभी के हित की कुछ बातें बता रहा हूँ। आप सभी हमारी इन बातों को ध्यान से सुनें और अपने जीवन में आत्मसात् करने का प्रयास करें।'।

इस प्रकरण में आषाढी संवत् 1858 के प्रसंग दिये गये हैं।

1. श्रीजीमहाराज के जन्म से लेकर उन्होंने धर्मधुरा धारण की तब तक के सारे चरित्रों का चित्रण क्रम से 'घनश्याम चरित्र' एवं 'नीलकण्ठ चरित्र' नामक पुस्तिकाओं में कर दिया गया है।

‘त्यागी साधुओं को चाहिए कि वे सत्य, दया, तप, पवित्रता, देहदमन, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शास्त्रों का नियमित पाठ, सेवा, त्याग, जितेन्द्रियता, आत्मनिष्ठा आदि सद्गुण धारण करें।’

‘त्यागी और गृहस्थ - सारे हरिभक्तों को चाहिए कि वे भगवान की भक्ति करें। मद्यपान, मांसाहार, जीवहिंसा, चोरी, आत्महत्या आदि दोषों से बचें। किसी पर कलंक न लगाएँ। देव-निन्दा न करें। विमुख व्यक्ति के मुँह से कथा न सुनें और अनुचित खानपान न करें।’

‘गृहस्थ शास्त्रों के आदेशानुसार सोलह संस्कार विधिपूर्वक संपन्न करें। गृहस्थधर्म का परिपालन करें। वेद, ब्राह्मण, सन्त, पतिव्रता एवं विद्वान का आदर करें। दान, धर्म और नीति का पालन करें। अहिंसा और दया युक्त रहें। आचार, विचार और उच्चार - इन तीनों को विशुद्ध और धर्ममय रखें।’

ऐसे शास्त्रसंमत धर्मोपदेश से सबकी वृत्तियाँ उनकी ओर आकृष्ट हो गईं। भक्तजनों का शोक मिट गया, सभी ने मिलकर स्वामीजी का पूजन किया। लोगों ने अनेक प्रकार की भेंट उनके चरणों में रखी। इसी दिन सहजानन्द स्वामी ने सबको स्वामिनारायण मंत्र की महिमा समझाई और उस मंत्र की धुन कराई। इस तरह उन्होंने अपने स्वरूप के भजन का प्रारम्भ करवाया। राम कृष्ण गोविन्द के साथ-साथ स्वामिनारायण मंत्र के जप का प्रारम्भ हुआ।

बस, इसी दिन से सहजानन्द स्वामी को सब लोग ‘श्रीजीमहाराज’ तथा ‘भगवान स्वामिनारायण’ के दुलारभरे नाम से सम्बोधित करने लगे।

शीतलदास नाम का एक ब्राह्मण भगवान की खोज के लिए गुजरात आ पहुँचा। उसको किसी ने खबर दी थी कि ‘गुजरात में रामानन्द स्वामी समर्थ सद्गुरु हैं, तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हें भगवान से मिला देंगे।’ वह घूमता-फिरता ‘फण्णी’ पहुँचा। परंतु तब तक रामानंद स्वामी का देहांत हो चुका था। इस खबर को पाकर शीतलदास हताश हो गया तथा अपने भाग्य को कोसने लगा। जब वह वापस लौटने लगा तब अचानक महाराज ने उसे बुलाकर कहा, ‘आज के दिन तुम यहाँ ठहर जाओ, मैं तुम्हें रामानंद स्वामी का दर्शन कराऊँगा। यदि जाना ही है तो कल दोपहर के बाद चले जाना।’

इस सूचना को ध्यान में रखते हुए शीतलदास वहाँ ठहर गया। दूसरे दिन श्रीहरि ने उसको 'स्वामिनारायण' मंत्र का जप करने के लिए आदेश दिया। मंत्रजाप करते ही कुछ देर में शीतलदास को समाधि लग गई। जहाँ उसने अक्षरधाम का दर्शन किया और देखा कि श्रीहरि स्वयं सिंहासन पर विराजमान हैं और रामानंद स्वामी उनके सामने वन्दन करते हुए हाथ जोड़कर खड़े हैं।

रामानन्द स्वामी ने कहा, 'सहजानन्द स्वामी के स्वरूप में सभी अवतारों का पूरा समावेश है, क्योंकि वे तो अवतारों के भी अवतारी हैं और सबके कारण हैं।'

समाधि के टूटने पर शीतलदास ने पूरी घटना का बयान, वहाँ उपस्थित हर किसी को सुनाया और स्वयं महाराज के चरणों में गिर पड़ा और निवेदन करते हुए वे कहने लगे कि हे महाराज, मुझे त्यागीदीक्षा देकर कृतार्थ करें। श्रीहरि उनको त्यागाश्रम की दीक्षा दी और उनका नामकरण हुआ 'स्वामी व्यापकानन्दजी।'

श्रीहरि का कठोर धर्माचरण

भगवान स्वामिनारायण स्वयं कठोर धर्माचरण करने के बाद ही दूसरों को उस प्रकार आचरण रखने की प्रेरणा देते थे। उनकी यह स्वभाविकता थी कि वे सभी सन्तों को भोजन कराने के बाद ही भोजन करते थे। दोपहर को भोजन के बाद करीब दो बजे तक कथावार्ता का आयोजन करते। संध्या के समय स्नानादि करके अतिथि को भोजन आदि से तृप्त करके दैनिक नियमानुसार रात के करीब बारह बजे तक कथावार्ता में लगे रहते थे। करीब दो घंटे की नींद के बाद रात के दो बजे उठकर सभी संतों को जगाकर ध्यानस्थ होने का आदेश देते। श्रीहरि उस समय हाथ में छड़ी लेकर घूमते और यदि कोई नींद की झपकी खा लेते तब छड़ी से छूकर उनको जगाते और ध्यान का प्रशिक्षण देते। सुबह चार बजे वे स्नान, पूजा तथा कथा-कीर्तन के बाद सूर्योदय होते ही भिक्षा के लिए चले जाते। भिक्षा में प्राप्त हुई सामग्री से रसोई तैयार करके वे यात्रियों तथा संतों को भोजन कराते। यही उनका नित्यक्रम था। उनके साथ

रहनेवालों की थकावट कभी मिटती ही नहीं थी, न तो उनकी नींद भी कभी पूरी होती थी।²

श्रीहरि की ऐसी अनन्य दृढ़ता, उनका भक्ति तप एवं धर्म से परिपूर्ण नित्यक्रम तथा उनके दिव्य व्यक्तित्व को देखकर प्रतीति हो जाती है कि इक्कीस वर्ष के इस युवा युगविभूति ने बड़े-बड़े सन्तों तथा विशाल भक्त समुदाय को कड़े अनुशासन में रखकर किस प्रकार कलियुग में सत्युग की स्थापना की होगी। उनकी अनन्य प्रतिभा से निष्पन्न हुआ यह असाधारण चमत्कार था।

सत्संग का प्रचार और रघुनाथदास का उपद्रव

महाराज ने सौराष्ट्र के जूनागढ़ तथा अन्य प्रांतों में विचरण का प्रारम्भ किया। एक दिन धोराजी में वे मावजी भक्त के घर ठहरे थे। उनके घर-आँगन में सभा करके श्रीहरि ने उपदेश देते हुए ही उपस्थित विभिन्न मतानुयायियों को समाधि लगवा दी। सभी को अपने अपने इष्टदेव और उनके धामों का दर्शन हुआ। जाग्रत होते हुए सभी को उनके अलौकिक स्वरूप का निश्चय हो गया। असुरों और नास्तिकों को उन्होंने नर्ककुण्ड की यातना का प्रत्यक्ष दर्शन कराया। तथा समाधि में ही कई लोगों को अपने पाप के कारण यमदूतों की कड़ी मार का अनुभव हुआ। सभी इस अनुभव के बाद सत्संगी होने के लिए आने लगे। महाराज ने सभी को वर्तमान धारण करवाया।

धोराजी से छत्रासा होकर वे भाड़ेर पधारे। वहाँ से माणावदर मायाराम भट्ट के घर पधारे, जहाँ पर रघुनाथदास³ ने बड़ा उपद्रव खड़ा कर दिया था। रामानन्द स्वामी स्थापित धर्म-शासन पर अधिकार जमाने के लिए उसने पाखण्डी प्रचार प्रारम्भ किया था। गुरुपन का दम्भ करके वह रामानन्द स्वामी की नकल किया करता था। भोले-भाले भक्त उनके जाल में फँस रहे थे। वह केवल निन्दा ही नहीं, उनका विरोध करने पर उतारू हो गया था।

2. संतों के द्वारा लिखे गए इतिहास के आधार पर।

3. रघुनाथदास, रामानन्द स्वामी का एक अहंकारी शिष्य था, और हमेशा सहजानन्द स्वामी के साथ द्वेषभाव रखता था।

लोगों के मन में भ्राँति पैदा करते हुए वह कहता था कि रामानन्द स्वामी का सच्चा शिष्य मैं ही हूँ, मैं ही उनका सच्चा वारिसदार हूँ, उन्होंने अपना सारा दैवत एवं ऐश्वर्य मुझे ही दिया है, इसीलिए मैंने अपने आप गुरुपद धारण किया है।’

श्रीहरि, संतमण्डली के साथ पीपलाणा में नरसिंह मेहता के घर पधारे। यहाँ एक दिन शाम को वे उस गाँव के बाहर एक पुराने बरगद के पेड़ के नीचे पधारे। इस पेड़ पर हज़ारों भूतों का निवास था। श्रीहरि ने पेड़ के नीचे सभा करके स्वामिनारायण मंत्र की धुन का आरंभ करवाया। उस दिन के बाद वहाँ भूतों का कोई उपद्रव नहीं हुआ। सभी आत्माओं की मुक्ति हुई। श्रीहरि ने उनको दिव्य देह देकर बदरीकाश्रम भेज दिया। इसी पेड़ पर झूला बाँधकर हरिभक्तों ने श्रीहरि को झुलाया।

परंतु अब तक कई हरिभक्तों के मन में गुरु रामानंद स्वामी का वियोग सताता रहता था। एक दिन उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी से कहा, ‘स्वामी! भुज के हरिभक्तों को आप जाकर धीरज दीजिए, जिनका रामानन्द स्वामी पर अत्यधिक प्रेम है।’

मुक्तानन्द स्वामी ने तुरंत कहा, ‘प्रभु, रघुनाथदास बड़ा अभिमानी और अविवेकी है, सत्संग में रखने लायक नहीं है, उसे बोलने का ढंग भी नहीं आता, इसलिए उसकी बातों पर आप ध्यान न दें। विशेष कोई गड़बड़ करे तो उसे अहमदाबाद भेज दीजिएगा।’

तत्पश्चात् मुक्तानन्द स्वामी संतों के साथ भुज की ओर चल दिए।

नरक के कुण्ड खाली किये

श्रीहरि यहाँ से अगतराई होकर कालवाणी गाँव पधारे। भीमभाई नामक एक हरिभक्त उसी समय कालवाणी पहुँचे। प्रणाम करके उन्होंने कहा, ‘महाराज! इस मृत्युलोक में ऐसी प्रथा है कि राजा के यहाँ जब पुत्र का जन्म होता है और जब नया राजा नियुक्त होता है, तब वह अपने राज्य के सारे कैदियों को छोड़ देता है। आज आपका भी पट्टाभिषेक हुआ है, फिर भी नरक के कुण्ड में पड़े हुए जीव, बंदियों की तरह क्यों पीड़ा भोगते रहें? आपके धर्मधुरा धारण करने से सभी अत्यंत प्रसन्न हुए हैं।

आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप कृपया किसी संत को भेजकर नरकवासी पापी जीवों को मुक्ति दें।’

भीमभाई की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वामी स्वरूपानन्दजी को आज्ञा दी कि, ‘आप यमलोक में जाइए और सभी जीवों को स्वामिनारायण मंत्र के द्वारा वहाँ से मुक्त कर उनको भूमापुरुष के लोक में भिजवा दीजिए।’

महाराज की आज्ञा से स्वरूपानन्द स्वामी उसी समय समाधि में बैठ गये और दिव्य देह धारण करके यमलोक में पहुँचे। नरक के विभिन्न कुंडों में सड़ रहे दुःखी जीवों को देखकर उनके मन में दया उमड़ पड़ी। उन्होंने तुरंत उच्चस्वर से स्वामिनारायण मंत्र का उद्घोष किया। उसी पल सभी पीड़ित आत्माओं को चुतर्भुज स्वरूप प्राप्त हुआ। सभी दिव्य देह धारण कर, दिव्य विमानों में बैठकर भूमापुरुष के लोक में जा पहुँचे। स्वरूपानन्द स्वामी ने समाधि से जाग्रत होकर सारी बातें सबको सुनाई।

तब श्रीहरि ने कहा, ‘हमें तो इस समय अनन्त जीवों का कल्याण करना है, हमारे अथवा हमारे संतों एवं हरिभक्तों के संसर्ग में आने वाला पापी हो या पुण्यशाली, सभी का संकल्प मात्र से कल्याण करना है।’

भीमभाई श्रीहरि की ऐसी विशाल कल्याण भावना देखकर विस्मित हो गये।

श्रीहरि पौषी पूर्णिमा के अवसर पर मांगरोल पधारे। यहाँ पौषी पूर्णिमा का उत्सव किया। माणावदर के नवाब गजेफरखान ने श्रीहरि को अपने महल में पधारने का निमंत्रण दिया। माघ मास आरम्भ होते ही श्रीहरि मांगरोल से माणावदर पधारे और मायाराम भट्ट तथा गोविन्दराम भट्ट के घर निवास किया। यहाँ क्षारवती नदी के तट पर वसंतपंचमी का उत्सव मनाकर श्रीहरि ने रंगोत्सव का लाभ दिया। उत्सव के बाद सभा में बिराजमान हुए। गाँव के जादवजी सेठ ने श्रीहरि का पूजन करके उन्हें भेंट अर्पण की। इस मूल्यवान उपहार को देखकर रघुनाथदास के मन में जलन पैदा हुई। वह सोचता था कि ऐसा उपहार तो मुझे मिलना चाहिए था। ऐसे वस्त्र मेरे शरीर पर ही शोभा दे सकते हैं। परंतु श्रीहरि ने उनकी परवाह न करते हुए अपने स्वभावानुसार उपहार में आए वस्त्र आदि मायाराम और गोविन्दराम भट्ट को

अर्पण कर दिए। रघुनाथदास और भी चिढ़कर ईर्ष्यावश श्रीहरि के लिए उल्टा-सीधा बकने लगा।

श्रीहरि ने सोचा कि यह किसी को चैन से जीने नहीं देगा, जहाँ भी जाएगा, वहीं क्लेश खड़ा करेगा। इसे यहाँ से दूर करना ही आवश्यक है - एकबार श्रीहरि ने उसे अपने पास बुलाया। सम्मान के साथ उसे अपने पास बिठाकर श्रीहरि ने कहा, 'रघुनाथदास! गुजरात के हरिभक्तों को रामानन्द स्वामी के वियोग का बहुत दुःख है। क्या आप उनको सान्त्वना देने के लिए वहाँ पधारेंगे? आप यदि अहमदाबाद पधारें और कथावार्ता करें, तो हरिभक्तों को बहुत सान्त्वना मिलेगी।'।

यह सुनकर रघुनाथदास गर्व से इतराकर कहने लगा कि मैं गुजरात जाकर ऐसी बातें करूँगा की सारा गुजरात मेरे काबू में आ जाएगा। इतना कहकर वह अहमदाबाद जाने के लिए निकल पड़ा।

रघुनाथदास को बिदा करके श्रीहरि पीपलाणा होकर मांगरोल पधारे। वहाँ पुष्पदोल, रामनवमी तथा भीम एकादशी के उत्सव किये। उन्होंने देखा कि गाँव में एक पुरानी बावड़ी थी। जो गंदगी का ढेर बन चुकी थी। श्रीहरि ने अपने संतों के साथ स्वयं जाकर इस पुरातन बावड़ी को स्वच्छ करने का अभियान शुरू किया। कुछ समय के बाद बावड़ी स्वच्छ पानी से छलकने लगीं। श्रीहरि ने ऐसे अनेक पूर्तकर्म का प्रारंभ किया। संवत् 1859 (सन् 1803) आषाढ़ मास की देवशयनी एकादशी भी वहीं करके उन्होंने जन्माष्टमी के उत्सव का लाभ दिया। इस उत्सव में कुछ हरिभक्त अहमदाबाद से भी पधारे थे। उन्होंने वहाँ रघुनाथदास द्वारा की गई गड़बड़ी की बातें बताईं। उसके उपद्रव को शान्त करने के लिए महाराज ने आश्रम के वरिष्ठ संत स्वामी रामदासजी को अहमदाबाद भेजा।

[2]

मगनीराम से अद्वैतानन्द

दक्षिण भारत में मगनीराम नामक एक द्रविड़ी ब्राह्मण था। वह शास्त्रज्ञ, मुमुक्षु एवं तपस्वी था। उसे परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा थी। परमात्मा की खोज में घूमता हुआ वह बंगाल में जा पहुँचा। उसने सुना था इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1859 के प्रसंग दिए गए हैं।

कि पीपा नामक एक राजा ने शारदादेवी को प्रसन्न किया तब उनके द्वारा उसे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ था। इसलिए मगनीराम राजा के गुरु के पास जा पहुँचा। एक दिन उसने गुरु से पूछा कि, 'गुरुदेव शारदादेवी को किस प्रकार प्रसन्न किया जा सकता है?' गुरु ने बड़े प्रसन्न होकर इस युवा ब्राह्मण को शारदादेवी को प्रसन्न करने का उपाय बताया। गुरु की एक सोलह वर्ष की पुत्री थी। उनके मन में मगनीराम को देखते ही बिजली की भाँति विचार कौंधा था कि मैं इसे शिष्य बना दूँगा तो मुझे दामाद ढूँढने के लिए कहीं और नहीं जाना पड़ेगा।

मगनीराम ने गुरु के द्वारा साधना करके शारदा देवी को प्रसन्न कर दिया। इससे उसे कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त हुईं। उन्होंने जब गुरु से बिदा माँगी तो गुरु ने आदेश देते हुए कहा, 'बेटा, तुम्हें मेरी एक आज्ञा माननी पड़ेगी, तुम देख रहे हो कि मेरी सोलह वर्ष की रूपवती पुत्री है, तू इससे विवाह करके यहीं पर ठहर जा।'।

मगनीराम ने विनम्रता से कहा, 'गुरुदेव, मुझे तो जीवनभर ब्रह्मचारी रहना है। वैसे भी गुरुपुत्री तो बहन के समान होती है, इसलिए मैं उससे विवाह नहीं कर सकता।' इतना कहकर वह जगन्नाथपुरी की ओर निकल पड़ा।

यहाँ उसने सोचा, 'क्यों न अपनी सिद्धियों का प्रयोग करके देखें! इससे तो राजा, महाराजा, योगी और महन्तों को भी वश में किए जा सकते हैं और आराम की ज़िंदगी बसर कर पाएँगे।'।

उसने बाबा का भयंकर वेश बनाया, गले में मोटे मनकों की रुद्राक्षमाला, सिर पर लम्बी जटा, बड़ी और छंटी हुई दाढ़ी-मूछ, बड़ी-बड़ी लाल आँखें, कपाल में सिंदूरी तिलक, कान में सोने की कड़ियाँ, हाथ में कड़े, एक हाथ में चिमटा, काँख में जादुई खड़ाऊँ, कछौटा मारकर लंगोट की तरह पहनी छोटी धोती आदि भयंकर वेश बनाकर पालकी में घूमना शुरू कर दिया। साथ में भयंकर परिधान धारण किये शिष्यों की एक टोली बना ली। सबसे आगे एक बाबा हाथ में भगवा झंडा लिए ऊँट पर सवार होकर चलता। इस प्रकार वह गाँव-गाँव घूमने लगा। राजा, महाराजा, योगी, महन्तों को अपनी सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर दो-पाँच हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दण्ड रूप में एँठने लगा।

एक दिन वह पोरबन्दर जा पहुँचा। वहाँ के मठधारी गुसाँईजी को उसने चिमटे से पीटकर उसने तंत्र-मंत्र का भय दिखाया और सैंकड़ों स्वर्ण-मुद्राएँ वसूल कीं।

गुसाँईजी ने डरते हुए कहा, 'अरे, मगनीराम तुम मेरे जैसे मेढ़क को डांट रहे हों और यदि तुम सच्चे सिद्ध हो तो जाओ मांगरोल में, वहाँ जीवनमुक्ता भगवान स्वामिनारायण बिराजमान हैं। लोग उनको भगवान मानकर पूजते हैं। वे बड़े समर्थ और ऐश्वर्यवान हैं। हमारे जैसे सहस्रों मेढ़कों को डराने से क्या? यदि आप स्वामिनारायण जैसे एक ही मणिधर को जीत लें तो मानेंगे की तुम सर्वोपरि सिद्ध हो। यदि साहस हो तो आप एक बार उनसे मिलिए। सुना है कि वे तो आप जैसों को पलभर में वश में करके अपना शिष्य बना लेते हैं।'।

मगनीराम यह सुनकर झुँझलाया, मानो उसकी क्रोधाग्नि में तेल पड़ गया हो! वह तमतमाकर मांगरोल की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँचते ही उसने अपने एक चले को राजमहल में भेजा और पाँच हजार रुपये वसूलने के लिए धमकी दी: 'यदि तुमने रुपये नहीं दिये तो मैं पूरे शहर पर पत्थरों की वर्षा करूँगा। एक ही मंत्र से सारे शहर को भस्म कर दूँगा।'।

यह सुनकर राजा गजेफरखान ने कहा: 'बाबाजी! पाँच ही क्यों, मैं आपको दस हजार रुपये देने को तैयार हूँ, यदि आप हमारे भगवान स्वामिनारायण को जीत लें।'।

वह चेला खाली हाथ लौटा और उसने सारी घटना मगनीराम को सुनाई। मगनीराम का क्रोध आसमान को छूने लगा। घमंड से अंधा होकर दसबीस चेलों के साथ वह श्रीहरि के पास आ पहुँचा। मगनीराम ने चिमटा बजाकर गर्जना की, 'अरे ओ जीवनमुक्ता! पाखण्ड क्यों चला रहे हो? यदि तुम सच्चे सिद्ध हो तो मुझे अपनी सिद्धि दिखाओ।'।

श्रीहरि ने अति शांतभाव से उत्तर देते हुए कहा, 'हम तो सिद्धाई करते नहीं, हम तो जीवों को उपदेश देकर धर्म की ओर मोड़ते हैं। जीवों के कल्याण के लिए हम उनको ज्ञान देते हैं और भजन करवाते हैं।'।

यह सुनकर मगनीराम को लगा कि यह तो मामूली साधु जैसा लगता

है। इसीलिए सभी को डराता हुआ वह कहने लगा, 'तुम लोगों ने मेरा नाम नहीं सुना क्या? मैं हूँ देवीवाला मगनीराम! मुझे बड़े-बड़े सिद्ध एवं राजा-महाराजा नमस्कार करते हैं। मैं मारण, मोहन, वशीकरण, स्तंभन, आदि कई विद्याओं का ज्ञाता हूँ। मैंने शारदादेवी को प्रसन्न किया है। मेरी एक ही फूँक से पर्वत फट जाते हैं, वर्षा होने लगती है। मैं पानी में आग लगा सकता हूँ। तुम मुझे दस हजार रुपए देते हो कि नहीं? वरना मैं सारे शहर को समुद्र में डुबा दूँगा।'

श्रीहरि ने शान्तिपूर्वक कहा, 'देखो मगनीराम, हम कभी रुपये नहीं रखते। यदि तुम चाहो तो अन्न का प्रबंध कर सकते हो। यदि उसमें भी तुम नहीं मानोगे और अपनी देवी को भेजना चाहोगे तो उसे जरूर भेज देना। तुम अपने मंत्र-तंत्र का प्रयोग बड़े शौक से कर सकते हो, हम किसी से डरनेवालों में नहीं हैं।'

मगनीराम क्रोध से फट पड़ा। अब तक ऐसी उसने चुनौती का सामना कहीं नहीं किया था। उसने अपना चिमटा धरती पर पटककर ललकार दी, 'मैं तुम्हें देख लूँगा स्वामिनारायण।' वह अपने निवास स्थान पर चला गया। स्नानादि के बाद वह देवी की आराधना के लिए बैठ गया। एक के बाद दूसरे मंत्रों का प्रयोग शुरू हो गया, परंतु उसे कोई सफलता नहीं मिली। अंत में उसने आह्वान करके स्वयं देवी को प्रकट की।

शारदादेवी ने प्रकट होते ही मगनीराम को फटकार दी, 'अरे मगनीराम, तुम यह क्या करने पर तुले हो? क्या तुमने अपना घर सिद्धियों के लिए छोड़ा था? तुम्हें परमात्मा की चाह नहीं थी? तुम्हें स्वतः एक कन्या प्राप्त हो रही थी, तुमने उसे नकार दिया। ब्रह्मचारी रहना पसंद किया, क्यों? परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही न?'

'जी माताजी।' मगनीराम ने कहा। देवी ने आगे कहा, 'तो सुन यह स्वामिनारायण इन्द्र, चन्द्र, त्रिदेव आदि सभी देवों के स्वामी हैं। इतना ही नहीं वे मेरे भी उपास्य देव हैं, उन्हें कोई नहीं जीत सकता। मुझ जैसी कई देवियाँ उनके चरणों की सेवा चाहती हैं। यदि तुम अपना भला चाहते हो दीनतापूर्वक उनके आश्रित हो जाओ। त्यागी बनकर ज्ञान, सेवा और भक्ति के द्वारा उनको प्रसन्न कर लो।'

मगनीराम के अन्तःचक्षु खुल गये। वह आज तक किये अत्याचारों का पछतावा करने लगा। उसका मन श्रीहरि की शरण में जाने के लिए व्याकुल हो उठा, उसे रातभर नींद नहीं आई।

प्रातःकाल होते ही स्नानादि से पवित्र होकर वह श्रीहरि के निवास स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ पर पिछली रात के कुछ जूठे बरतन पड़े थे, वह माँजने बैठ गया। उस समय वहाँ से जो संत निकले, उनको उसने प्रणाम किया। बाद में वह श्रीहरि के पास पहुँचा। साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके, वह उनके चरणों में गिर पड़ा और दीनभाव से कहने लगा, 'प्रभु, आप तो सभी अवतारों के अवतारी हैं। मेरे अपराधों की क्षमा कीजिए, मुझे अपनी शरण में स्वीकार कीजिए और अपना आश्रित त्यागी बनाइए।'।

श्रीहरि मुस्कुराते हुए कहने लगे, 'मगनीराम हमारे साधु निर्मानी भाव से रहते हैं। तुम तो बाबाओं के मण्डलधारी अभिमानी हो, ऐसी स्थिति में तुम्हारा और हमारा मेल नहीं जमेगा।'।

'महाराज! आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा। मैंने आज अपना पूरा अभिमान छोड़ दिया है।'।

'अच्छा!' श्रीहरि ने कहा, 'देखो, सबसे पहले तुम्हें अपनी लम्बी दाढ़ी-मूँछ और बड़ी जटा मुंडवानी पड़ेगी। क्योंकि जैसे राजा को अपनी मूँछ बहुत प्यारी होती है, उसी प्रकार बाबाओं को अपनी दाढ़ी तथा जटाएँ प्यारी होती हैं, उसका त्याग कर दो। तुम्हारी उस दाढ़ी-जटा और मूँछ के बालों पर हमारे ये संत पैर रख कर चलेंगे, क्या तुम्हें कुबूल है?'।

'प्रभु! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ?' इतना कहकर मगनीराम ने अपनी दाढ़ी, मूँछ और जटा मुंडवा दी और सारे बाल संतों के रास्ते पर डाल दिये। वह सीधा साधु-दीक्षा लेने के लिए महाराज के पास पहुँचा।

अचानक एक हरिभक्त ने कहा, 'प्रभु! यह जाति का बाबा है, वे लोग आसानी से अहंकार छोड़नेवाले नहीं हैं। आपको फँसाने के लिए उसने यह जाल रचा है।'।

तब महाराज ने उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के इरादे से कहा, 'मगनीराम! तुमने अहंकार छोड़ दिया है, इसका प्रमाण तभी मिल सकता है,

जब तुम इन सारे संतों के जूतों की गठरी अपने सिर पर उठाकर उनकी पाँच प्रदक्षिणा करो। इससे तुम अपने सभी पापों से मुक्त हो जाओगे।’

मगनीराम प्रसन्न हो गया। उसने तुरन्त सभी संतों के जूतों की गठरी अपने सिर पर उठाकर सभी संतों की पाँच प्रदक्षिणा की। यह देखकर उसके शिष्य बोल उठे, ‘यह आप क्या कर रहे हैं? आपकी बुद्धि ठिकाने पर तो है?’

‘मैं पूरे होश में हूँ। आपको याद होगा कि सत्य के लिए हरिश्चन्द्र एक श्वपच के घर बिके थे। मैं तो अपने आत्मा की मुक्ति के लिए, यह सब कर रहा हूँ।’ मगनीराम ने अपने शिष्यों से कहा।

उसने उसी दिन से उपद्रव मचाने से रोक लगा दी और त्यागी होने के लिए महाराज से पुनः पुनः बिनती की।

श्रीहरि ने फिर एकबार चेतावनी देते हुए कहा था: ‘मगनीराम, इसके लिए तुम्हें सांसारिक सुख छोड़ने पड़ेंगे।’

मगनीराम हर शर्त मानने के लिए तैयार हो गया। श्रीहरि ने उसकी मुमुक्षुता देखकर उसे भागवती दीक्षा प्रदान की। उसका नाम रखा गया स्वामी अद्वैतानन्द। परंतु वे हरिभक्तों के समुदाय में ‘देवी वाले मगनीराम’ के नाम से प्रसिद्ध थे।

रामचन्द्र सेठ का निश्चय

मांगरोल में स्वामी रामानन्दजी के आदेशानुसार सदाव्रत का संचालन हो रहा था। श्रीहरि ने उसे पुनः आरम्भ करना चाहा ताकि द्वारिका की यात्रा पर आने-जानेवाले यात्रियों को उसका लाभ मिले। इसलिए उन्होंने आत्माराम बैरागी के स्थान में उसकी अनुमति लेकर सदाव्रत देने का आरम्भ किया। आगे चलकर इस वैरागी ने अनेक परेशानियाँ खड़ी कर दीं। आखिर अन्नक्षेत्र पर ताले लग गए।

श्रीहरि एक दिन मांगरोल में दूधा तलैया में स्नान करने पधारे। साथ में हरिभक्तों के साथ रामचन्द्र सेठ भी थे। श्रीहरि साथ सभी स्वामिनारायण की धुन करते स्नान कर रहे थे। उस समय सेठजी के मन में एक संकल्प उठने लगा कि, ‘यहाँ पर्याप्त पानी है, पर कपड़े धोने के लिए पत्थर नहीं है।

पचास-साठ कदम दूर, एक विशाल शिला दिख रही है। जो वहाँ किसी काम की नहीं है। यदि उस शिला को तालाब के किनारे पर लाया जाए तो महिलाओं की समस्या हल हो सकती है।'

उन्होंने महाराज से यही प्रार्थना की, 'प्रभु, कृष्णावतार में आपने गोवर्धन पर्वत को उठाया था, परंतु अब आप इस शिला को अपनी अंगुली से उठाकर तालाब के किनारे पर रख दें, तो गाँव की हर महिला का कष्ट दूर होगा।'

श्रीहरि ने कहा, 'तुम जाकर उस शिला को हाथ लगाओ। हमारे सम्बन्ध के कारण तुम्हारे जैसे भक्तों के द्वारा भी वह उड़कर यहाँ आ जाएगी।' रामचन्द्र सेठ ने आश्चर्यवत् यह सुना और श्रीहरि के आदेशानुसार उस शिला को छुआ। उसी पल पूरी शिला भूमि से उपर उठने लगी और धीरे-धीरे सेठ के पीछे खिसकती हुई तालाब के किनारे पर अटक गई। यह चमत्कार देखकर सभी के आश्चर्य की सीमा न रही। गाँववालों को इसी कारण बहुत अच्छी सुविधा हो गई।

जब स्नान करके श्रीहरि गाँव में लौटे तब सभा में उन्होंने सेठजी से कहा, 'सेठजी, यदि पत्थर उठाने भर से कोई भगवान बन जाता हो, तो हनुमानजी ने गोवर्धन पर्वत से भी बड़ा गन्धमादन पर्वत उठाया था। लेकिन वे तो भगवान नहीं कहलाए। भगवान का काम तो समाधि लगवाना, भगवान का धाम बताना, जीव के अन्तःकरण का परिवर्तन करके मोक्ष देना, अति दुष्ट दुर्जन को भी दोषों से मुक्त करके भगवान-परायण कर देना यही भगवान के कर्तव्य हैं। अतः कभी मत समझना कि चमत्कार और शक्ति का प्रदर्शन करनेवाला ही भगवान है।'

समाधि प्रकरण

मांगरोल और कालवाणी में श्रीहरि ने कई लोगों को दृष्टि अथवा स्पर्श द्वारा समाधि लगवाई थी। उनकी अपनी छड़ी, पुष्प, माला, वस्त्र अथवा अलंकार के स्पर्श से भी लोगों को समाधि लग जाती थी। मनुष्यों की क्या कहें, वे तो पशु-पक्षियों को भी समाधि लगवा देते थे। कभी-कभी तो श्रीहरि की ध्वनि सुनने या दर्शनमात्र से, उनकी खड़ाऊँ के चमत्कार से

अथवा केवल उनके चिन्तन से भी समाधि लग जाती थी। कभी-कभी तो उनकी कृपा से उनके आश्रित साधु-संत, गृहस्थ, हरिभक्त, सत्संगी भाई या बाई आदि भी दूसरों को समाधि में ले जा सकते थे।

समाधि में कुछ लोग योगक्रियाएँ करते, तो कुछ लोग योग के 84 आसन करते, कुछ लोग यमपुरी की यातना देखते, तो कुछ लोग यमराज की मार खाते। विभिन्न सम्प्रदायों के मुमुक्षुओं को अपने-अपने इष्टदेवों और उनके धामों के दर्शन भी हो जाते थे। समाधि में कुछ मुमुक्षुओं को ऐसे भी दर्शन होते थे कि श्रीहरि की मूर्ति से चौबीसों अवतार प्रकट हो रहे हैं और वे अवतार बाद में महाराज की मूर्ति में समा जाते थे। कुछ लोगों को अक्षरधाम में महाराज के दर्शन होते थे। किसीको समाधि एक घंटे की, दो घंटे की, एक दिन की, दो-चार दिन की, एक महीने, दो महीने और किसीको छः महीने तक की समाधि लग जाती थी। समाधिस्थ लोगों के शरीरों का मुर्दों की तरह



एक दूसरे पर ढेर लगा दिया जाता था। उनमें से किसीका स्वजन किसीको बुलाने आता तो श्रीहरि उसका नाम पुकारकर उसको समाधि से जगाते और वह पूरी चमत्कारी घटना का बयान देने लगता।

लोज में अन्नकूट उत्सव

जूनागढ़ जिले के लोज गाँव के हरिभक्तों ने श्रीहरि से प्रार्थना की, 'हे महाराज! जबसे आप ने धर्मधुरा संभाली, आप लोज नहीं पधारे हैं। कृपया अन्नकूट उत्सव मनाने के लिए आप लोज पधारिए। उनकी भावपूर्ण विनती स्वीकार कर के श्रीहरि लोज पधारे। बड़ी धूमधाम से श्रीहरि ने दीपोत्सव और अन्नकूट महोत्सव का आयोजन किया। उस महोत्सव में दीव बंदर के एक वणिक हरिभक्त आये थे। वे रामानन्द स्वामी के शिष्य थे। उनके मन में विचार आया कि महानता कितनी होगी ?

श्रीहरि ने उसी पल उसके मन की बात पकड़ ली। उन्होंने तुरंत एक पाँच साल के बच्चे को बीच सभा में खड़ा किया और पूछा कि इस सेठ के मन की बात बता दो। बालक तुरन्त सेठ के मन की बात बोलने लगा। सेठ चकित रह गये। उनको महाराज के स्वरूप का निश्चय हो गया। वे दो-चार दिन रहकर अपने गाँव लौटे, लेकिन बेचैन रहने लगे। तीन साल के बाद वे संसार का त्याग करके श्रीहरि की शरण में आ गये। महाराज ने उन्हें परमहंस की दीक्षा दी और उनका नाम रखा, स्वामी प्रभवानन्द।

लोज में हरिभक्तों को अपूर्व आनन्द देकर प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव करने के लिए श्रीहरि दशमी के दिन कालवाणी वापस पधारे।

मुक्तानन्द स्वामी के भ्रम का निवारण

श्रीहरि का अनन्य ऐश्वर्य था, जीव प्राणीमात्र को समाधि लगवाकर विभिन्न दिव्य धामों में भगवान का दर्शन करवाना। उनके दर्शनमात्र से अनन्त भक्तों के नाड़ीप्राण आकृष्ट हो जाते थे। जब इस बात की खबर मुक्तानंद स्वामी ने कच्छ में सुनी, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना अष्टांग योग से कभी समाधि नहीं लग सकती। समाधि के चमत्कार का अनुभव करनेवालों को सुनकर वे मानते थे कि यह तो अपरिपक्व बुद्धि का

परिणाम है। क्योंकि मैं इतने वर्षों से सत्संग में हूँ मैंने समाधि विषयक बात अब तक कभी नहीं सुनी। उन्होंने सोचा कि इस विषय पर श्रीहरि से सीधा परामर्श करना ही आवश्यक होगा। यदि मैं लोगों कि अंधश्रद्धा का स्वीकार कर लूँगा तो सत्संग की बड़ी असेवा होगी। उन्होंने मेघपुर में एकान्त पाकर श्रीहरि से उलहना देना आरंभ किया :

‘महाराज! दियो पाखण्ड मेली, सत्संगमां न थावुं फेली ।

समाधि काई नथी सोयली, मोटा योगीने पण दोयली ॥

ते तो जेने तेने केम थाय, बीजा माने अमे न मनाय ॥

अर्थात् ‘हे महाराज! आपने समाधि के चमत्कारों को दिखाकर इस प्रकार का पाखंड क्यों चला रखा है। आप इसे छोड़ दीजिए। क्योंकि सत्संग में दम्भी नहीं बनना चाहिए। मैं समझता हूँ समाधि लगना आसान नहीं है, बड़े बड़े योगियों के लिए भी यह कठिन सिद्धि है, वह साधारण व्यक्ति को कैसे हो सकती है? लोग भले ही इस बात को मान लें। परंतु हम तो किसी प्रकार समाधि को नहीं मान सकते।’

श्रीहरि ने यह सुनकर कहा, ‘स्वामी, मैं तो सारे भक्त समुदाय को रामानन्द स्वामी अर्थात् ‘स्वामी’ एवं भगवान अर्थात् ‘नारायण’ इस प्रकार स्वामिनारायण का भजन करवाता हूँ, उस समय भक्तों के नाड़ी-प्राण अपने आप जडवत् हो जाते हैं और उन्हें समाधि लग जाती है।’

इतना कहकर उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी के शिष्य संतदास को ध्यानस्थ स्थिति में बिठाया, कुछ ही पलों में उनके नाड़ी-प्राण खिंच गये और उन्हें समाधि लग गई।

श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी से कहा, ‘आप इनकी नाड़ीपरीक्षा ले सकते हैं। यदि वे होश में आए तो आप प्रयास कर सकते हैं।’

मुक्तानन्द स्वामी नाड़ीपरीक्षक थे। उन्होंने बहुत प्रयास किया परंतु संतदासजी की नाड़ी हाथ में नहीं आई। वे शववत् हो गए थे।

कुछ देर बाद जब वे जागे, तब श्रीहरि ने पूछा: ‘संतदासजी! समाधि में आपने जो कुछ देखा उसका वर्णन कीजिए।’

संतदासजी ने कहा, ‘मैं समाधि में अक्षरधाम गया था, वहाँ दिव्य

सिंहासन पर विराजमान श्रीहरि का दर्शन हुआ। मैंने देखा कि शिव, ब्रह्मादि अनन्त देव, ऋषि और सभी अवतार एक पैर पर खड़े रहकर इस प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज की प्रार्थना कर रहे हैं। उस समय रामानन्द स्वामी ने मुझे पूछा कि मुक्तानन्द स्वामी समाधि की बात क्यों नहीं मानते? सत्य कभी असत्य सिद्ध नहीं हो सकता, उनको थोड़े समय में ही सत्य समझ में आ जाएगा।' मुक्तानन्द स्वामी ने यह सब सुना तो सही, परंतु वे संतुष्ट नहीं हुए।

जब श्रीहरि संतों के साथ कालवाणी पधारे तब मुक्तानंद स्वामी भी साथ में थे। वे प्रातःकाल पलाश के बन के निकट शौचक्रिया के लिए गए थे कि लौटते समय उन्हें स्वयं रामानन्द स्वामी का साक्षात् दर्शन हुआ। मुक्तानन्द स्वामी ने हाथ में रखी तुम्बी नीचे रखते हुए बारबार गुरुचरण में दण्डवत् प्रणाम किया। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे सजल नयनों से रामानन्द स्वामी को सारी बातें सुनाने लगे।

रामानन्द स्वामी कहा, 'स्वामी, इतने गहरे शोक में क्यों डूब गए? क्या आपको मेरे वचन याद नहीं हैं कि मैंने कहा था कि मैं तो दुगडुगी बजानेवाला हूँ! खेल का मुख्य अभिनेता तो बाद में आएगा। वही यह वर्णीराज है। मैंने तो रुई की गंजी से एक पूनी की ही कताई की है, सारी गंजी की कताई अभी शेष है। वह काम सहजानंद स्वामी के द्वारा संपन्न होगा। ये ही हम सभी के इष्टदेव हैं।' यह सुनते ही मुक्तानन्द स्वामी के अंतःकरण में भ्रम का अंधेरा दूर हो गया। हृदय में प्रतीति का प्रकाश फैलने लगा। अंतर में आनंद की लहरें हिलोरें मारने लगीं। उनके मन से कीर्तन की पंक्तियाँ सहज ही प्रस्फुटित हो गईं। वे गाने लगे :

भ्रमणा भांगी रे हो हैयानी, वात केने नथी ए कह्यानी ।

वीती होय ते रे हो जाणे, अण समझु मन इर्या आणे ॥

(अर्थात् अब मेरे हृदय से भ्रम मिट गया है, मुझे इतनी बड़ी बात मिल गई है कि किसीको कहना ही व्यर्थ है।)

इन पंक्तियों को गुनगुनाते हुए मुक्तानन्द स्वामी आनंद उल्लास के साथ लौट रहे थे, उनके चेहरे पर पहली प्रसन्नता देखकर पर्वतभाई ने पूछा: 'स्वामी! इतना आनंद क्यों, आपने कुछ पाया है क्या?' मुक्तानन्द स्वामी ने तुरंत रामानन्द स्वामी के दर्शन की घटना कह सुनाई।

स्नानादिक के बाद फूल चुनकर स्वामी ने उनकी पुष्पमाला तैयार की। निवास स्थान पर आकर उन्होंने रामानन्द स्वामी का आसन जो कि कहीं ऊपर की ओर लटका रखा था, नीचे उतरवाया। उनकी पादुकाएँ नीचे रखवाई। श्रीहरि जब स्नानादिक से निवृत्त होकर वहाँ पधारे तब स्वामी ने उनके चरणों में गुरु की चरण पादुकाएँ श्रीहरि के चरणों में पहना दी। श्रीहरि के लाख मना करने पर भी उनको उठाकर रामानन्द स्वामी के आसन पर बिठाया, चन्दन से पूजन करके उनको पुष्पमाला पहनाई तथा शीघ्र आरती का पद गान शुरू किया जो उन्होंने अभी-अभी रचा था, 'जय सद्गुरु स्वामी' यह पद आज भी सत्संग समुदाय में प्रतिदिन साधना के रूप में गाया जाता है।

उन्होंने रामानन्द स्वामी के दर्शन की कथा सभा के बीच खड़े होकर सभी को सुनाई। सभा के समक्ष श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु मुक्तानन्द स्वामी पर अत्यंत प्रसन्न हुए। इस प्रसंग के बाद ऐसा होने लगा कि स्वयं मुक्तानन्द स्वामी के वचन या स्पर्श से लोगों को समाधि लग जाती थी। आज उनके भ्रम का निवारण हो गया, वे महाराज के स्वरूप का ज्ञान दूसरों को देने लगे।

दो स्वरूपों में दर्शन

श्रीहरि ने कालवाणी में एकादशी और कार्तिक पूर्णिमा मनाई। वहाँ आखा गाँव के नारायण दवे और उनके पुत्र नरसिंह दवे पधारे थे। उन्होंने श्रीहरि के चरणों में अपने गाँव पधारने के लिए निमंत्रण दिया। उसी समय पीपलाणा गाँव के नरसिंह मेहता ने भी श्रीहरि को अपने गाँव पधारने की प्रार्थना की। श्रीहरि ने दोनों आमंत्रणों का स्वीकार किया और कहा, 'हम अवश्य आएँगे।' दोनों भक्त अपने-अपने गाँव में इस शुभ समाचार को लेकर पहुँच गए।

श्रीहरि अगतराई में एक दिन रहकर आखा तथा पीपलाणा के लिए निकले। एक दोराहे पर दोनों गाँव के रास्ते अलग-अलग निकलते थे। दोनों गाँवों की भक्त-मंडली श्रीहरि के स्वागत के लिए उपस्थित हो गई थीं। ढोल, मृदंग और शहनाई आदि वाजित्र के साथ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। अबीर-गुलाल के बादल छाने लगे। पुष्पहार से श्रीहरि का स्वागत किया

गया। अंत में दोनों गाँवों की भक्त-मंडलियाँ श्रीहरि के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। आखा की भक्त-मंडली ने विनती की, 'महाराज! गाँव में रसोई तैयार है, आप पहले हमारे गाँव को पावन करें।' उसी समय पीपलाणा की मंडली ने निवेदन किया, 'प्रभु! पहले हमने आमंत्रण दिया था। हमारे यहाँ भी रसोई तैयार है। आप अवश्य हमारे यहाँ पधारिए।'।

ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए, उसका निर्णय करने के लिए श्रीहरि, मुक्तानंद स्वामी तथा मयाराम भट्ट से एकान्त में परामर्श करने लगे। स्वामी तथा भट्टजी ने कहा, 'प्रभु, आप तो अनन्त रूप धारण कर सकते हैं। ब्रह्माजी जब बछड़े और बच्चों को उठा ले गये थे, तब श्रीकृष्ण ने बिल्कुल वैसे ही दूसरे बच्चों और बछड़ों का रूप छः महीने तक धारण किया था। इसलिए आज आपको भी दोनों में से किसी को अप्रसन्न नहीं करना है। दोनों गाँवों के हरिभक्तों की इच्छा आप पूर्ण करें।'।

श्रीहरि ने उस परामर्श का स्वीकार किया और पीपलाणा के हरिभक्तों से कहा, 'आप लोग अपने गाँव जाइए, कुछ देर में हम वहाँ आ रहे हैं।'।

पीपलाणा के हरिभक्त प्रसन्न होकर तुरंत गाँव की ओर लौटे। परंतु श्रीहरि तो उसी समय तीन सौ हरिभक्तों और संतों का संघ लेकर आखा गाँव की ओर चल पड़े।

किसी को मालूम नहीं था कि श्रीहरि योगकला धारण करके दो स्वरूप में उसी वक्त तीन सौ साधुओं तथा विशाल भक्त समुदाय के साथ दोनों मार्ग पर एक साथ जा रहे थे।

उन्होंने आखा और पीपलाणा दोनों गाँवों में एक साथ पड़ाव डाला। एक साथ दोनों गाँवों में भोजन किया, तथा सभी के भावों को हृदयपूर्वक स्वीकार किया। शाम को जब वहाँ के दो-चार हरिभक्त किसी कार्यवश आखा गये, तो देखा कि महाराज तो यहाँ प्रातः समय से विराजमान ही हैं और साथ में संतों-हरिभक्तों का पूरा समुदाय भी दूसरा स्वरूप धारण करके दोनों गाँवों में उपस्थित रहा था।

यह सुनकर आखा के हरिभक्त ओझत नदी के उस पार पीपलाणा जा पहुँचे। कौतूहलवश सुबह से शाम तक दोनों गाँवों के लोग दर्शन करने के लिए आते-जाते रहे। सर्वत्र आश्चर्यकारी वातावरण फैल गया था।

श्रीहरि ने इस प्रकार तीन दिन तक दो स्वरूपों में दर्शन दिये। चौथे दिन महाराज ने लोगों से कहा, 'ओझत नदी के किनारे हम विष्णुयाग करना चाहते हैं। अब हम वहीं रहेंगे।' ऐसा कहकर वे साधु-हरिभक्तों के साथ दोनों गाँवों से निकल पड़े। ओझत नदी के किनारे पर दोनों स्वरूप एक दूसरे में समाकर एक हो गये।

महाराज ने यहाँ छः महीने रहकर भव्य विष्णुयाग किया। प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन करवाया। अनेक लोग सत्संगी बनें। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन उन्होंने विष्णुयाग की पूर्णाहुति की। तत्पश्चात् ओझत के किनारे से चलकर श्रीहरि मेघपुर पधारे।

फकीर को सत्संगी बनाया

मेघपुर में एक फकीर ने श्रीहरि के ऐश्वर्य, प्रताप और समाधि की बातें सुनी थी। उसने सोचा कि 'स्वामिनारायण को लोग अल्लाह खुदा ताराह कहते हैं, परन्तु वे यदि इस गाँव के अनपढ़ कृष्णजी भाट के मुख से कुरान बुलवा दें, तो मैं उनको अल्लाह मानूँ और उनकी बंदगी करूँ।'।

अन्तर्यामी श्रीहरि ने उस फकीर के सामने कृष्णजी भाट को अपने पास बुलाकर खड़ा कर दिया और कहा, 'कुरान बोलो।'।

भाट ने कहा, 'हे महाराज! कुरान किसे कहते हैं?'

श्रीहरि ने कहा, 'कृष्णजी! तुम मूर्ति का ध्यान करके जो मन में आये वह बोलना आरम्भ कर दो और फकीर बाबा, तुम अपने थैले में से कुरान निकालकर भाट की वाणी पुस्तक से मिलाते जाओ, यदि कहीं वह गलती कर बैठे तो आप अवश्य सुधारना।'।

इतना कहते ही श्रीहरि ने भाट की ओर दृष्टि की। वह तो आँखें बन्द करके उसी पल कुरान की आयातें बोलने लगा। फकीर कुरान की पुस्तक अक्षरशः मिलाता रहा। परन्तु एक भी गलती निकाल नहीं पाया।

अंत में आश्चर्यचकित होकर फकीर कहने लगा, 'या अल्लाह! कुरान की आयाते यह कृष्णजी क्या बोलेंगे। महाराज वह तो आप ही बोल रहे थे।'।

इतना कहकर वह श्रीहरि के चरणों के पास ही नमाज पढ़ने लगा। श्रीहरि स्वयं खुदाताला हैं, ऐसी उसको प्रतीति हुई। वह श्रीहरि से नियम ग्रहण करके

कंठी पहनकर सत्संगी हो गया। शराब, मांस, चोरी और व्यभिचार का त्याग करने का नियम धारण करवाया। हाँलाकि अपने रिश्तेदारों से वह भारी परेशान किया गया परंतु वह जीवनभर सत्संगी ही बना रहा।

[3]

सदाव्रत की प्रवृत्ति

मेघपुर में श्रीहरि ने दो महीने रहकर देवशयनी एकादशी का भव्य उत्सव किया। इस गाँव के मुख्य मार्ग से द्वारिका जानेवाले हज्जारों यात्रियों के लिए श्रीहरि ने मेघपुर में सदाव्रत-अन्नक्षेत्र का आरम्भ किया था। माणावदर, सरधार, फणेशी, अगतराई तथा लोज में भी सदाव्रत आरम्भ हो चुके थे। प्रतिदिन सैकड़ों मुमुक्षु, सदाव्रत के लिए आते थे। प्रासादिक अन्न पाकर वे कृतार्थ होते थे। सदाव्रत के लिए आनेवाले लोग अवश्य पूछते थे कि यह सदाव्रत किसकी ओर से दिया जा रहा है? जब उन्हें बताया जाता था कि यह भगवान स्वामिनारायण की ओर से दिया जाता है, तो वे कौतूहलवश श्रीहरि के दर्शन के लिए जाते और उनसे आकृष्ट होकर सत्संगी बन जाते थे। कई साधु, बाबा, बैरागी और श्रीहरि के शिष्य बनकर रह गये। कुछ लोगों को तो श्रीहरि का नाम सुनते ही समाधि लग जाती, और वे अपना पंथ छोड़कर उनके चरणों में त्यागी होकर रह गए।

परंतु कुछ राग द्वेष रखवाले, वैरागी क्रोधित होकर कहने लगे कि इस जीवनमुक्ता के पास जादू का गुटका है। उसके द्वारा वे लोगों को बहकाते हैं, जादूटोना करके वे हमारे भोले-भाले शिष्यों को फँसाकर अपने आश्रित बना लेते हैं, इसलिए जहाँ भी इनके सदाव्रत हों, वे स्थान तोड़ देने चाहिए और अनाज लूट लेना चाहिए। उनके साधुओं की माला, जनेऊ तोड़ देनी चाहिए और पूजा-सामग्री फेंक देनी चाहिए। बाबा-वैरागी न केवल सोचकर बैठे रहे। उन्होंने सदाव्रत में सेवा देनेवाले श्रीहरि के आश्रित साधु-पार्षदों को बहुत पीटा। सदाव्रत के स्थान पर सामान तोड़-फोड़कर भारी ऊधम मचा दिया। श्रीहरि को खबर मिली किन्तु उन्होंने धीरज और दृढ़ता के साथ सदाव्रत जारी रखने के लिए आदेश पत्र लिख दिए। उन्होंने अपने संतों को पत्र में लिखा था कि :

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1860 के प्रसंग दिए गए हैं।

‘यदि आपको कोई मारे, गालियाँ दे, अपमान करे, हमारा स्थान लूट ले, यदि हमें प्रायश्चित के कारण उपवास करना पड़े फिर भी सदाव्रत की सेवा बंध मत करना। सच्चे साधुओं को सहनशील होना चाहिए। अनन्त मुमुक्षुओं का कल्याण करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए हमें क्षमाशील रहना चाहिए, निराश न होकर-धैर्यपूर्वक प्रभु स्मरण करते हुए सेवाकार्य जारी रखें।’ संतों ने श्रीहरि का आदेश शिरोधार्य करके सेवा के क्षेत्र पर ताले नहीं लगाए।

माणवदर में जन्माष्टमी करके श्रीहरि भाड़ेर पधारे। यहाँ राजकुमार वाघजीभाई और पातलभाई के यहाँ कपिला-षष्ठी, दशहरा और अन्नकूट उत्सव किये।

दूध से मीठी छाछ

भाड़ेर एक छोटा सा गाँव है। यहाँ श्रीहरि के शिष्य पातलभाई नामक एक हरिभक्त परिवार के साथ रहते थे। उनके और उनकी पत्नी के हृदय में महाराज के प्रति अपार श्रद्धा का भाव था। वे सोच रहे थे कि श्रीहरि हमारे गाँव में पधारे हैं, परंतु वे तो बड़े-बड़े जमीनदारों के यहाँ ठहरेंगे, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि प्रभु हमारे घर पधारें?

परंतु सर्वज्ञ श्रीहरि से उनका भाव कैसे छुपता? दूसरे ही दिन सूर्योदय के समय श्रीहरि स्वयं पातलभाई के घर आ पहुँचे। छोटी सी झुग्गी में अंधकार फैला हुआ था। बरामदे में भी मामूली सा उजाला था। श्रीहरि अचानक इस घर के बरामदे तक आ पहुँचे और पातलभाई के नाम की पुकार दी। वे तो खुशी के मारे पागल हो उठे। खटिया डालकर उसने महाराज को आसन दिया। उनकी पत्नी आनन-फानन में दूध की बटलोई लेकर बरामदे में आ गई। उसने पात्र में दूध भरकर महाराज के सामने रख दिया। उसे पीते हुए श्रीहरि ने कहने लगे, ‘वास्तव में दूध बहुत मीठा है, क्या इसमें शक्कर डाली है? या बकेन (बाँकड़ी) भैंस का दूध है? लाईए, फिर एकबार पात्र भर दें।’

पातलभाई की पत्नी खुश हो रही थी। उसने कहा, ‘महाराज, यह तो घर की भैंस का दूध है, लीजिए।’ इतना कहती हुई उसने दुबारा पात्र भर

दिया। श्रीहरि ने तीन बार माँगकर दूध पिया। दूध की बटलोई खाली हो गई। अब क्या करें? उस स्त्री ने श्रीहरि के साथ आनेवाले हरिभक्तों के लिए छाछ देने के लिए सोच लिया। वह रसोई में गई, छाछ की बटलोई उठाई और देखा तो उसमें छाछ के स्थान पर दूध दिखाई दिया। वह भारी दुविधा में पड़ गई, 'अरे, मैंने क्या महाराज को दूध की जगह छाछ पिला दी?' उसे बहुत दुःख हुआ, वह पछतावा करने लगी।

रोते-रोते श्रीहरि के पास आई, और क्षमा माँगने लगी: 'महाराज! मैंने आपको भूल से छाछ पिला दी है, मेरा अपराध आप क्षमा कर दीजिए।'

श्रीहरि ने हँसते हुए कहा, 'इसमें दुःखी होने की कोई बात नहीं है। मेरे मन तुम्हारी छाछ भी दूध के बराबर ही थी, तुमने जो अत्यंत प्रेम एवं श्रद्धा से पिलाई थी! हमें तो वह दूध से भी मीठी लगी।' श्रीहरि ने उसका दुःख मिटा दिया। वहाँ से विदा होकर श्रीहरि मोड़ गाँव पधारे। प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव करके अलैया तथा गोंडल होकर श्रीहरि बंधिया पधारे। यहाँ मूलुभाई के घर उनका निवास था। दूसरे दिन सुबह भुज के दीवान सुन्दरजी बढ़ई श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे।

सुन्दरजी बढ़ई की परीक्षा

सुन्दरजी कच्छ के महाराव (राजा) के पुत्र की बारात लेकर निकले थे। गोंडल आने पर उन्हें खबर मिली कि भगवान स्वामिनारायण बंधिया में विराजमान हैं। उन्होंने बारातियों को कुछ समय के लिए गोंडल में रुकने के लिए आदेश दिया, 'आप इसी शहर में रुकिए, मैं बंधिया कुछ काम से जा रहा हूँ, थोड़ी ही देर में लौट आऊँगा।' इतना कहकर सुन्दरजी बढ़ई घोड़े पर सवार होकर मूलुभाई के घर आ पहुँचे। अपनी पगड़ी उतारकर, सिर झुका कर, घुटनों के बल गिरकर उन्होंने श्रीहरि को प्रणाम किया।

श्रीहरि ने पूछा, 'कौन है?'

'महाराज! आपका दास।' सुन्दरजी ने कहा।

श्रीहरि ने उनकी कसौटी लेने के लिए पूछा, 'दास का लक्षण क्या क्या होता है?'

'आज्ञा के अनुसार आचरण करे वही दास।' सुन्दरजीभाई ने कहा।

‘ठीक है तो इसी समय आप सिर-मूँछ मुंडवाकर त्यागी बन जाओ और काशी के लिए प्रस्थान करो।’ श्रीहरि ने आदेश दिया।

सुन्दरजीभाई शूरवीर भक्त थे। उन्होंने तुरंत नाई को बुलवाकर मुंडन करवा दिया। त्यागी वेश धारण करके श्रीहरि के पास आकर दंडवत् प्रणाम किया।

यह देखकर निकट में बैठे हुए डोसाभाई को श्रीहरि ने कहा, ‘डोसाभाई, क्या आपको याद है जब रामानन्द स्वामी ने आपसे एक बार काशी की यात्रा का आदेश दिया था। आप भी इसी समय नंगे पैर, बिना कोई सामान लिए सुन्दरजीभाई के साथ चल निकलो।’ डोसाभाई ने तुरन्त श्रीहरि के चरण छुए और दोनों भक्त साथ-साथ काशी के लिए चल पड़े।

अभी दो कोस ही चले होंगे कि इधर श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी से पूछा, ‘स्वामी, हमने कैसा काम किया ? राज्य के दीवान को साधु बना दिया।’

स्वामी ने कहा, ‘महाराज! अब तो हमें सारे कच्छ प्रदेश में मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। हमारे लिए ठहरने का, निर्विघ्न सत्संग-प्रचार का यह एक ही सहारा था। अब तो हमारे बैठने की डाली ही कट गई।’

श्रीहरि ने चौंककर कहा, ‘अच्छा! ऐसी बात है! तब तो घुड़सवार भेजकर उनको संदेश दो कि दोनों वापस लौट आएँ।’

तुरंत ऐसा ही किया गया। सेवक ने दोनों को मार्ग पर चलते हुए देखा तो निकट जाकर कहा, ‘महाराज ने आप दोनों को वापस लौटने का आदेश दिया है।’

सुन्दरजी और डोसाभाई बंधिया आ पहुँचे। सुन्दरजीभाई ने फिर एकबार घुटने टेककर श्रीहरि के चरण छुए, उन्होंने पूछा, ‘कौन आया?’

‘आपका दास।’ सुन्दरजी ने कहा।

‘दास का लक्षण क्या है?’ श्रीहरि ने वही प्रश्न दोहराया। सुन्दरजी ने भी वहीं उत्तर दोहरा दिया, ‘आज्ञा के अनुसार जो आचरण करे वही दास।’

श्रीहरि ने कहा, ‘बहुत अच्छा, अब साधु के कपड़े उतारकर अपने गृहस्थी कपड़े पहन लो।’

सुन्दरजीभाई ने आदेश का पालन किया। महाराज प्रसन्न हुए और उनकी छाती पर अपने चरणारविन्द के चिह्न दिये। परंतु सुन्दरजी के मन में

अपने भक्तत्व का अहंकार जाग उठा। उन्होंने विदा लेते हुए श्रीहरि से कहा, 'प्रभु, आप ने मेरी ऐसी परीक्षा भले ही ली, परंतु किसी और की मत लेना।' उनके विधान में अहंकार की झलक पाकर श्रीहरि कुछ नहीं बोले। हँसते हुए उन्होंने सुन्दरजी को विदा दी।

रात्रि के समय सुन्दरजीभाई जब गोंडल लौटे तब मुंडन देखकर बाराती लोग सुन्दरजीभाई को पूछने लगे, 'अरे, ऐसे शुभ अवसर पर आपने मुंडन क्यों करवाया? क्या अपशकुन के लिए?'

सुन्दरजीभाई ने कहा, 'बंधिया में मेरे कुलदेवता का स्थान है। लड़के का विवाह निर्विघ्न संपन्न हो, इसलिए तथा मेरा पाप नाम का चचेरा भाई मर गया है, उसके अशौच की निवृत्ति के लिए मैंने मनौती की थी, इसलिए मुंडन करवाया है।'

'तब तो बहुत ही अच्छा।' सबने कहा। इस तरह सबको युक्तिपूर्वक समझाकर सुन्दरजीभाई बारातियों के साथ आगे बढ़े।

मूलजी सेठ की रक्षा

'महाराज! मेरे गाँव पधारिये।' मेमका गाँव के मूलजी सेठ ने श्रीहरि से प्रार्थना की। परंतु उपस्थित हरिभक्त बोल उठे, 'प्रभु! आप मेमका मत जाइए। वहाँ ये मूलजी सेठ, हंसराज सुथार, श्यामो अगोलो और श्यामो कांसागरो इन चार को छोड़कर शेष सारा गाँव आपका द्वेष करता है। वहाँ के लोग आपको बिना कारण परेशान करेंगे।'

श्रीहरि ने मूलजी सेठ का सद्भाव और भक्ति देखकर कहा, 'सेठ, आप जाकर तैयारी करें, हम आते हैं।'

श्रीहरि विचरण करते हुए कारियाणी होकर मेमका पधारे। मूलजी सेठ ने पूरे भक्तिभाव के साथ श्रीहरि का अपूर्व स्वागत किया। यहाँ श्रीहरि ने तीन दिन तक निवास किया। मूलजी सेठ तथा अन्य हरिभक्तों ने श्रीहरि तथा संतों की अच्छी तरह सेवा की। विदा के समय चारों हरिभक्त एक कोस तक श्रीहरि को विदा करने के लिए गये।

अलग होते समय श्रीहरि ने कहा, 'सेठ! आप चारों हरिभक्त यथा शीघ्र इस गाँव को छोड़कर कहीं और चले जाना। अपनी सारी सम्पत्ति

लेकर, घर, जमीन आदि बेचकर बीस दिन के भीतर यहाँ से चले जाना। मेरे पाँव छूकर यह प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरी बात मानोगे।' चारों हरिभक्तों ने महाराज के आदेश से उनके पाँव छूकर यह प्रतिज्ञा की।

हंसराजभाई खोलड़ियाद गए, अगोलो और कांसागरो चाणपर गाँव में चले गये। पन्द्रह दिन में मूलजी सेठ ने भी घर-जमीन बेचकर लीमली गाँव में निवास कर दिया। इक्कीसवें दिन गाँव में बाबाजी गायकवाड़ी सेना लेकर वहाँ पहुँचा। वढ़वाण राज्य का गाँव समझकर उसने सारे गाँव पर कहर बरपा दिया। लूट चलाकर कई घरों को खाक में मिला दिया। श्रीहरि ने अन्तर्यामी रूप से उन चारों हरिभक्तों की अपार रक्षा की।

रघुनाथदास सत्संग से विमुख

श्रीहरि विचरण करते हुए बोचासण, वरताल, जेतलपुर होते हुए अहमदाबाद पधारे। यहाँ नारायणगिरि गुसाँई के मठ में उनका निवास था। यहाँ एकान्त स्थान में श्रीहरि भी प्रसन्न थे। अहमदाबाद के कुछ हरिभक्तों ने आकर रघुनाथदास के कृत्यों का वर्णन किया, जो कि रामदास स्वामी ने प्रत्यक्ष देखे थे। उन्होंने बताया कि रघुनाथदास ने कई लोगों के मन में सत्संग विरुद्ध ज़हर भर दिया है। अपना पक्ष बलवान बनाने के लिए ही उसने छलकपट का सहारा लिया है। ऐसी बहुत सारी शिकायतें सुनने पर भी श्रीहरि ने सोचा कि रघुनाथदास को शांतिपूर्वक समझाने पर वह जरूर शांत हो जाएगा।

एक दिन की बात है। वह अपने शिष्यों के साथ श्रीहरि के पास आ पहुँचा। श्रीहरि ने उसे एकान्त में बुलाकर गद्दी-तकिए के आसन पर बिठाया। बड़े आदर और प्रेम से बातचीत का प्रारंभ किया।

फिर कहा, 'आप तो रामानन्द स्वामी के पुराने शिष्य हो, ज्ञानी और समझदार भी हो। इसीलिए आपको रामानन्द स्वामी के आदेशानुसार ही आचरण करना चाहिए। आप सारी झंझटे क्यों नहीं छोड़ देते? आप सत्संग में अग्रणी बनकर मुक्तानन्द स्वामी की तरह संतमण्डल के साथ देशभर में घूम सकते हो। सबको सत्संग महिमा कहो। प्रत्येक हरिभक्त को प्रसन्न करो। यदि आपको महन्ताई चाहिए तो हम तुम्हें महंत पद पर नियुक्त करने के लिए भी तैयार हैं। चाहो तो तुम अहमदाबाद के स्थायी

महन्त बन सकते हो।’

परंतु रघुनाथदास समाधान के लिए तनिक भी तैयार न था। वह तेवर बदल कर बोला, ‘कल के आये हुए तुम, हमें उपदेश देने वाले कौन होते हो? तुम यदि अपना हित चाहते हो तो हमारी आज्ञा में रहो।’ इतना कहकर वह चिल्लाकर बहुत कुछ उल्टी-सीधी बकने लगा।

कुछ ही पलों में ‘जीवनमुक्ता कहाँ हैं, कहाँ है?’ चिल्लाती हुई द्वेषी, वैरागियों की एक टोली मठ में घुस गई, जो श्रीहरि को मारने के लिए आई थी। डंडा, चिमटा, भाला, त्रिशूल धारण करके आए हुए वैरागी सीधे श्रीहरि के कमरे में जा पहुँचे। श्रीहरि ने पलभर में परिस्थिति भाप ली। उन्होंने रामदासजी को संकेत किया। दोनों तुरंत उसी पल खड़े हो गये और दूसरे दरवाजे से बाहर निकलकर देखते ही देखते मठ से अदृश्य हो गये।

रघुनाथदास क्रोधित होकर मुँह फुलाए गद्दी-तकिए के सहारे बैठा रहा। उसे देखकर वैरागी मुखिया ने समझा कि यही जीवनमुक्ता है। उसने चिल्लाकर आदेश दिया, ‘ये रहा जीवनमुक्ता! मार डालो इसे।’

यह सुनते ही वैरागी रघुनाथदास पर टूट पड़े। जिसके हाथ में जो था उसीसे मार रहा था। सभी ने मिलकर रघुनाथदास की जमकर पिटाई की। उसके शिष्य भी वैरागियों की झपट से नहीं बचे।

दूसरे दिन श्रीहरि ने बड़े-बड़े संतों और हरिभक्तों की इच्छानुसार रघुनाथदास को सत्संग से विमुख करने की घोषणा की। अब सारा उपद्रव शान्त हो गया। रघुनाथदास के लिए लिखे गए आदेश पत्र में श्रीहरि ने लिखवाया था कि जो कोई उस कुसंग फैलानेवाले का संग करेगा, उसका भक्ति-भाव अवश्य खंडित होगा, अतः उस विमुख से दूर रहने में ही आपकी भलाई है।

इस प्रकार अहमदाबाद में सत्संग सानुकूल वातावरण का निर्माण करके श्रीहरि भुज की ओर पधारे।

लालजी बढ़ई को दीक्षा दी

श्रीहरि अहमदाबाद से हळवद होकर भादरा पधारे। एक दिन संध्या के समय वशराम बढ़ई अपने खेत में खुदाई कर रहे थे। उन्होंने देखा कि खेत

की मेढ़ पर चींटियों ने मिट्टी का छत्ता बना लिया था। जहाँ लाखों चींटियाँ इधर-उधर घूम रही थी। यह देखकर वशरामभाई ने सोचा कि, 'अहो, आज जब धरती पर साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण तथा उनका ब्रह्मधाम प्रत्यक्ष बिराजमान है परंतु इन क्षुद्र जीवों को उनका संपर्क कैसे होगा। और इन जीवों का कल्याण कैसे होगा? यदि मेरे पास सामर्थ्य होता तो अभी इन चींटियों को वैकुण्ठ में भेज देता।' वे ऐसा सोच ही रहे थे कि हज़ारों दिव्य विमान उनके सामने वहाँ उतरने लगे। सभी चींटियाँ शरीर छोड़कर दिव्यदेह धारण करके वैकुण्ठ में जाती दिखाई देने लगी।

वशराम भाई आश्चर्यवत् देखते रहे। उन्होंने उसी दिन यह बात श्रीहरि को बताई, 'महाराज, चींटियों का ऐसा कौन-सा बड़ा भाग्य होगा कि उन्हें वैकुण्ठ की प्राप्ति हुई?'

श्रीहरि ने कहा, 'इसमें कोई नई बात नहीं है। अक्षर तथा पुरुषोत्तम के प्रकट स्वरूपों का यह प्रताप है। आज तो तुमने यदि यह संकल्प किया होता कि चींटियाँ अक्षरधाम में जाएँ, तो वे अक्षरधाम में भी चली जातीं। ऐसा अक्षर एवं पुरुषोत्तम के प्रकट स्वरूपों का बल है। अरे! तुम ने संकल्प किया होता तो सारे ब्रह्मांड के जीवों का भी कल्याण हो जाता।'।

आज हरिभक्तों के साथ मूलजी शर्मा भी श्रीहरि के दर्शन के लिए आये थे। उन्होंने श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम किया। तब किसीने पहचान कराते हुए कहा, 'प्रभु! ये मूलजी नये सत्संगी हैं।'।

तब श्रीहरि ने कहा, 'ऐसा तो आप समझते हैं परंतु ये तो अनादि काल से सत्संगी हैं, हमारे रहने का अक्षरधाम है। ये तीनों अवस्थाओं में हमारी मूर्ति का अखण्ड दर्शन करते हैं।' श्रीहरि की इस दिव्यवाणी को समझने के लिए उस समय एक भी हरिभक्त समर्थ नहीं था।

भादरा में वसंतपंचमी का उत्सव धूमधाम से मनाकर श्रीहरि शेखपाट पधारे। वहाँ लालजी बढ़ई के घर उनका निवास था।

एक दिन श्रीहरि ने लालजी को कहा, 'हम कच्छ जाना चाहते हैं। साथ चलनेवाला तुम्हारे जैसा कोई मार्ग का जानकार मिलेगा?'।

लालजी बढ़ई ने कहा, 'महाराज! यदि मैं ही आपके साथ चलूँ तो?' श्रीहरि ने तुरंत संमति दी।

लालजी पानी, पैसे और खाने की कुछ चीजें लेकर तैयार हो गए। दोनों कच्छ की ओर चल दिए। मार्ग में एक भिक्षुक मिला। श्रीहरि ने तमाम खाद्य सामग्री उसे दिलवा दी। फिर एक प्यासा आदमी मिला। प्रभु ने लालजी के पास जो पानी था, उस प्यासे को पिला दिया। आगे चलकर कुछ चोर मिले। श्रीहरि ने लालजी के पास कच्छी सिक्के थे, सभी चोरों को दिलवा दिए। अब लालजी के पास कुछ भी नहीं बचा। न पानी, न पैसा, न भोजन। आगे जब लालजी को प्यास लगी तब श्रीहरि ने रण में समुद्र के खारे पानी से मीठा जल पिला दिया और जब दोनों आधोई गाँव की सीमा तक पहुँचे, तब लालजी को आदेश देते हुए श्रीहरि ने कहा आप 'हमारे लिए भिक्षा ले आईए' परंतु यह तो लालजीभाई की ससुराल थी। उनको भिक्षा के लिए जाने में कठिनाई महसूस हो रही थी। परंतु श्रीहरि ने उनका गृहस्थी वेष उतरवाकर उसी पल भागवती दीक्षा दे दी और नाम बदलकर स्वामी निष्कुलानन्दजी रखा। श्रीहरि के लिए उन्होंने अपने ससुर के घर जाकर भिक्षा की आहलेक जगाई। इस प्रकार किसी न किसी निमित्त श्रीहरि, मुक्तों और मुमुक्षुओं को अपने आध्यात्मिक अभियान में जोड़ रहे थे।

[4] कारियाणी और गढ़डा में पधरावनी

सरधार में श्रीहरि ने जन्माष्टमी, दशहरा तथा अन्नकूटोत्सव किये।

संवत् 1861 (सन् 1894) के कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन श्रीहरि प्रथम बार कारियाणी पधारे। यहाँ मांचा भक्त के भाई वस्ता खाचर के घर श्रीहरि का निवास था। माचा भक्त रामानन्द स्वामी के शिष्य थे। श्रीहरि ने देखा कि इस गाँव में लोग पानी के कारण तरस रहे हैं। उन्होंने निश्चय किया कि गाँव में तालाब और कुएँ का निर्माण कार्य प्रारंभ हो। उन्होंने तुरंत यह कार्य का प्रारंभ कर दिया। संतों-हरिभक्तों के विशाल समुदाय को गाँव के बाहर एक विशाल तालाब के निर्माण कार्य में लगा दिए। वीरदास भगत के पुत्र की वरयात्रा में शामिल होकर उन्होंने घर-घर संपर्क करके लोगों को इस सेवाकार्य में शामिल किया। सामाजिक सेवा के क्षेत्र में यह उनका प्रथम कदम था।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1861 के प्रसंग दिये गये हैं।

गढ़डा के ठाकुर साहब एभल खाचर परिवार के साथ कारियाणी पधारे थे। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक श्रीहरि से निवेदन किया कि प्रभु! आप हमारे यहाँ गढ़पुर पधारने की कृपा करें। श्रीहरि ने उनका निमंत्रण स्वीकार करते हुए सं. 1861 (सन् 1805) माघ शुक्ला एकादशी के दिन गढ़पुर के लिए प्रस्थान किया। यह उनका प्रथम आगमन था। परंतु तब से लेकर श्रीहरि ने गढ़पुर को ही अपना प्रधान निवासस्थान बना लिया।

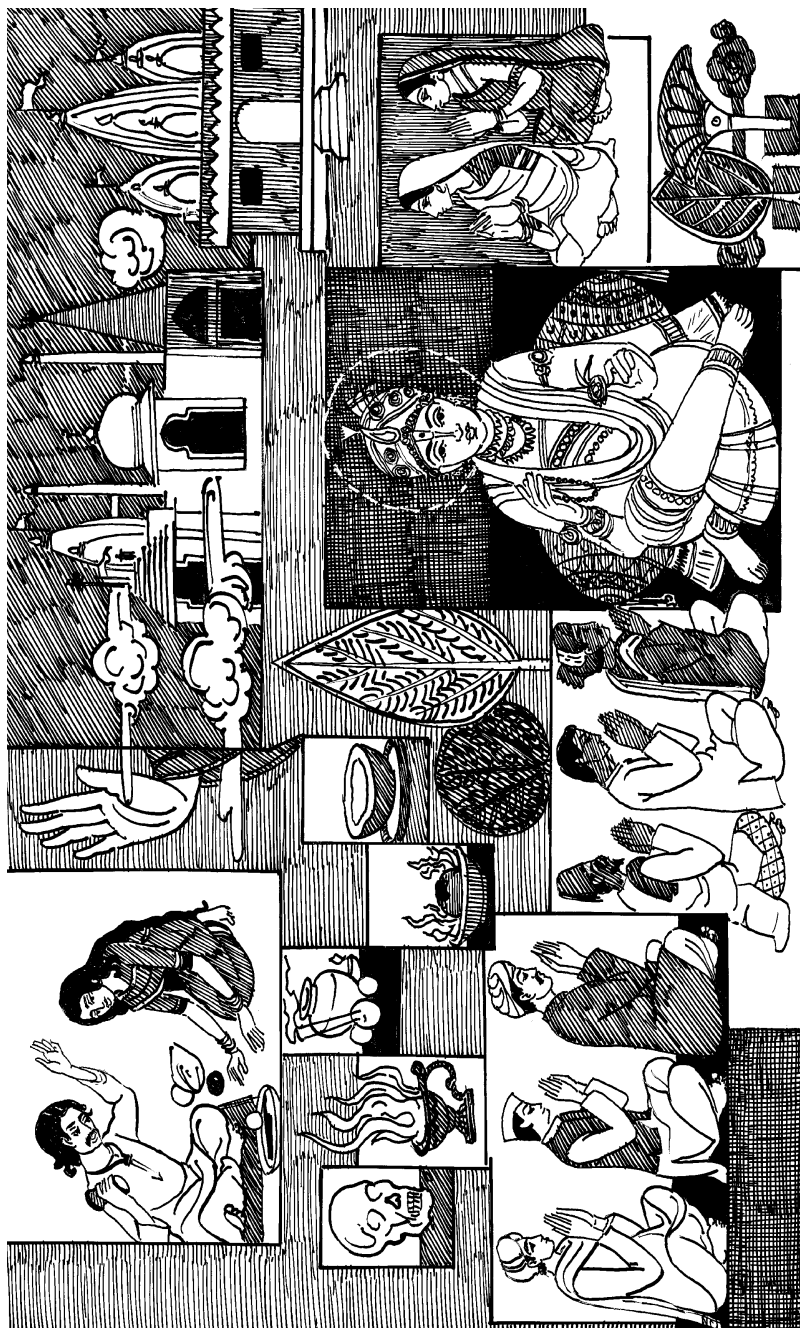
वे कहा करते थे कि, 'गढ़पुर मेरा है, और मैं गढ़पुर का हूँ।' एभल खाचर और परिवार भी श्रीहरि के साथ भक्तिपूर्ण समर्पण से जुड़ा हुआ था। उन्होंने कहा था कि, 'हे महाराज, आप हमारे जीवनप्राण हैं। आप कभी हमें छोड़कर कहीं मत जाना।' ऐसा शरणागत भाव देखकर प्रभुने प्रसन्न होकर उनकी छाती पर अपने चरणारविन्द स्थापित किये..।

गढ़पुर में वे प्रारंभिक दिनों में एभल खाचर के भाई जीवाखाचर के दरबार भुवन में रहे थे, जहाँ पुष्पदोल एवं रामनवमी का उत्सव भी किया था।

[5]

कल्पित भय एवं वहम से मुक्ति

वह कल्पित एवं मलिन देव-देवियों की उपासना का युग था। लोग धूर्त बाबा-वैरागी और ओझे-फकीरों की नागफाँस में फँसे हुए थे। अंधश्रद्धा के कारण और मलिन देवी-देवता के खौफ़ से लोग वहम, शुकुन-अपशुकुन तथा भय के वातावरण में जी रहे थे। बीमारी के समय चिकित्सा के बदले झाड़फूंक करवाना, जंतर-मंतर और मूठ देने के प्रयोगों में प्रतीति रखना आदि निर्बल मानसिकतावाली प्रजा की मानो जीवनशैली बनी चुकी थी। इसी बहाने ओझे और फ़कीर, लोगों के पैसे लूटकर मौज उड़ाते थे। श्रीहरि ने ऐसी असह्य परिस्थिति को समाप्त करने का निश्चय किया। वे अपने आश्रित लोगों में नीति, धर्म एवं भगवान की शरणागति का बल संचारित करने लगे। देवी देवताओं के कल्पित भय और जंतर-मंतर एवं झाड़फूंक का भरोसा मिटाने के लिए उन्होंने स्वयं एक ऐसा अभियान चलाया कि प्रजा में स्वतः जागृति आने लगी। उन्होंने सभी सत्संगियों को एक पत्र लिखा, जो इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1862 के प्रसंग दिए गए हैं।



इस प्रकार से था :

‘अनिर्देश से (अक्षरधाम से) लिखावित स्वामी श्री सहजानन्द स्वामी महाराज के सभी बाई-भाई को नारायण स्मरण। विशेष लिखना यह है कि मनुष्य देह में जीवात्मा को अपने प्रारब्ध के अनुसार सुख और दुःख मिलता है तथा जन्म एवं मरण होता है। जीव के प्रारब्ध कर्म का उल्लंघन करके रुद्र, भैरव, भवानी आदि देवी-देवता भी जीव को सुख अथवा दुःख, जन्म अथवा मरण दिलाने में समर्थ नहीं हैं।

‘अतः प्रारब्ध कर्म और काल को मिथ्या करने, मुर्दे को जिलाने और जिन्दा व्यक्ति को मारने में केवल परमेश्वर नारायण ही समर्थ हैं। सिवा उनके अन्य किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है। हम सब भगवान के भक्त हैं, शूरी हैं। इसलिए हरिभक्तों को मन में किसी प्रकार का भय नहीं रखना चाहिए।

‘यदि कोई व्यक्ति जंतर-मंतर और डोरे-धागे से जीवित रह सकता, तो पृथ्वी पर कोई व्यक्ति तो अमर दिखाई देता! परंतु आज तक ऐसा कोई दिखाई नहीं देता।

तंत्र विद्या के द्वारा कोई व्यक्ति अपने विरोधियों को मार डालने में समर्थ होता, तो राजा-महाराजाओं के तो अनेक विरोधी हैं, वे जीवित ही न रह पाते। और यदि जंतर-मंतर से कार्य-सिद्धि हो सकती तो ये राजा-महाराजा लाखों रुपए खर्च करके अनेक शस्त्र क्यों एकत्रित करते हैं? तथा बड़ी बड़ी सेनाएँ क्यों रखते हैं? एक अच्छे-खासे मंत्र-शास्त्री को रख लेते, जो मंत्र-तंत्र की शक्ति के द्वारा शत्रुओं का सफाया कर देते!

‘लेकिन ऐसा न कहीं सुना गया है, न कहीं देखा गया है। परब्रह्म भगवान पुरुषोत्तम ही समर्थ हैं, उनकी शरण में रहकर, निर्भय होकर नारायण का भजन करना।’

इस प्रकार श्रीहरि ने परमेश्वर के आश्रय का, विशुद्ध धार्मिक जीवन जीने का उपदेश जारी रखा। उनकी शरण में आनेवाले लोग निर्भीक बनने लगे। इसीलिए भगवान स्वामिनारायण के आश्रित सत्संगी काल-कर्म, ओझा-फक्रीर, भैरव-भवानी, कल्पित देवी-देवता, वीर-पीर, डुग्गी-यति, डोरा-धागा, शकुन-अपशकुन आदि किसी भी वहम या अंधश्रद्धा के कारण कभी डरते नहीं। उनको सर्वोपरि भगवान की प्राप्ति का गौरव रहता है।

श्रावणी अमावस के दिन श्रीहरि कच्छ के धमड़का गाँव में हीरजीभाई के घर पधारे। यहाँ प्रबोधिनी एकादशी के बाद उन्होंने पुराणी प्रागजी दवे द्वारा दो महीने तक भागवत की कथा करवाई। गाँव-गाँव विचरण करके हरिभक्तों को अपने स्वरूप का निश्चय करवाया।

फिर उत्तर गुजरात के दंढाव्य प्रदेश में आकर अड़ालज होकर सिद्धपुर पधारे। यहाँ तीन दिन तक उत्सव किया। तथा ब्रह्मभोज से ब्राह्मणों को तृप्त किया। अब उनका मुकाम गढ़पुर में था।

वासुदेवनारायण की प्रतिष्ठा

एभल खाचर की पुत्रियाँ जीवुबा और लाडूबा को श्रीहरि ने कहा था कि मैं संत-समाज के साथ अब यहीं रहूँगा। इन दोनों भक्तिमती बहनों ने भी यह सुनकर नियम ले लिया था कि प्रतिदिन श्रीहरि को भोजन देने के बाद ही वे भोजन करेंगी।

परंतु एक दिन श्रीहरि विचरण के लिए जाने को तैयार हुए। तब पांचुबा, जीवुबा, लाडूबा और नानबाई ने कहा, 'प्रभु! आपने तो यहाँ निरंतर रहने का वचन दिया था, अब आप जाने की क्यों कहते हैं?'

श्रीहरि ने कहा, 'विचरण में तो जाना पड़ेगा परंतु मैं आप लोगों से कभी अलग नहीं होऊँगा।' इतना कहकर उन्होंने एक सुंदर प्रतिमा का दरबारभुवन में स्थापन करने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीहरि की इच्छा से एक मुक्तपुरुष दो श्याम मूर्तियाँ लेकर दरबार भुवन में बेचने के लिए आ पहुँचा। जब लोग मूर्तियाँ देख रहे थे तब मुक्तपुरुष ने कहा कि मैं घेला नदी में स्नान करके आता हूँ। तब तक सौदा तय कर लें। इस प्रकार स्नान के बहाने मुक्त पुरुष वहाँ से अदृश्य हो गये और वापस कभी नहीं लौटे।

श्रीहरि ने कहा, 'इन्हें हमारी ही मूर्तियाँ समझें। हम उन्हें 'वासुदेवनारायण' कहेंगे और उनके द्वारा हम यहीं विराजमान होंगे।'

इतना कहकर श्रीहरि ने उत्तर की ओर के दरवाजे वाले कमरे में संवत् 1862 (सन् 1806) फाल्गुन कृष्ण द्वितीया-शुक्रवार को बड़ा उत्सव करके शिवराम भट्ट नामक विद्वान द्वारा विधिविधान करवाकर उन

मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। तथा मूर्ति की महिमा कहते हुए सभी को आदेश दिया कि 'इस मूर्ति में मेरा अखंड निवास है। इसमें रहकर मैं तुम्हारे द्वारा समर्पित सभी सेवा-पदार्थ ग्रहण करूँगा। जब भी मेरी उपस्थिति न हो, आप इस मूर्ति की पूजा करते रहें।' बेचर भट्ट को श्रीहरि ने इस मूर्ति की पूजा का उत्तरदायित्व सौंपा।

अब जीवुबा एवं लाडुबा के लिए श्रीहरि को रोकने के लिए कोई निमित्त नहीं रहा।

अच्छे पदार्थों का त्याग

एक दिन काठियों ने गढ़पुर में श्रीहरि को एक सर्वोत्तम घोड़ा भेंट किया। वे कुछ दिन तक उसका उपयोग करते रहे। एक दिन कुछ काठियों ने कहा: 'महाराज! यह तो रोज़ा घोड़ा है, सारे सौराष्ट्र में इसकी बराबरी का घोड़ा मिलना कठिन है।'

श्रीहरि ने कहा, 'तभी इसे सर्वोत्तम कहा जाता है!' उन्होंने यह बात ध्यान में रख ली। संध्या के समय वे घोड़े पर सवार होकर स्नान के लिए नदी पर गये। वहाँ जलक्रीड़ा का अद्भुत आनन्द उठाया। स्नान के बाद वस्त्र बदल गए थे कि उनकी दृष्टि एक भिक्षुक ब्राह्मण पर पड़ी। उसको अपने व्यावहारिक प्रसंग के लिए धन की आवश्यकता थी। अन्तर्यामी श्रीहरि ने उसका दुःख भाँप लिया। वे घोड़े की लगाम पकड़कर उसके पास गये और चुपचाप घोड़ा उसके हाथ में अर्पण करके बोल उठे, 'श्री कृष्णार्पण।'

काठी दरबारों के हृदय में यह देखते ही हाहाकार होने लगा। निःश्वास पर निःस्वास निकालने लगे, 'अरे महाराज, ऐसा क्यों किया?'

श्रीहरि ने कहा, 'अत्यंत रमणीय पदार्थ जीव का बन्धनकर्ता है, हम उत्तम पदार्थ रखनेवालों में नहीं है।'

अश्वप्रिय काठियों को बहुत दुःख हुआ, उत्तम अश्व उनके लिए पुत्र से भी अधिक प्रिय होता है। सभी दो दिन तक उदास रहे। परंतु आखिर उनको जीवनमंत्र मिल गया कि त्याग ही सुख का स्रोत है।

श्रीहरि गढ़डा से जेतलपुर, बोचासण, वरताल होते हुए बुधेज पधारे। यहाँ भी पानी की समस्या देखकर उन्होंने विशाल 'हरितालाब' खुदवाकर

पूर्तकर्म का प्रारंभ किया।

[6]

मूलुखाचर की व्यसनमुक्ति

स्वामिनारायण सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा एक उज्ज्वल संप्रदाय के रूप में होती जा रही थी। साधुओं और सत्संगियों के आचरण का समाज में अद्भुत समादर था। उन्होंने लोगों को प्रेम से वशीभूत करके जीवन में जमे हुए दुर्गुण, दुराचार एवं दुर्व्यसनों से निकालकर एक नये वातावरण में रख दिया था। कर्तव्यों को छोड़े बिना निर्भय होकर वे निर्व्यसनी होते जा रहे थे।

खंभाळा गाँव के गरासिया जाति के मूलुखाचर, श्रीहरि के दर्शन के लिए आये थे। श्रीहरि ने जब उनको सत्संगी होने के लिए कहा, तो मूलु खाचर ने कहा कि, 'महाराज! मुझे अफ़ीम और हुक्के का व्यसन है, यह दोनों व्यसन छूट नहीं सकते।'

श्रीहरि ने उनको प्रेरणा देते हुए कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है, जो हम नहीं कर सकते। आप व्यसन मुक्त होने का प्रयत्न करते रहना, फिर भी यदि व्यसन नहीं छूटेगा तो कोई बात नहीं। आप वर्तमान धारण करके सत्संगी तो बनो। कम से कम पाँच वर्तमान-अर्थात् पाँच नियमों का पालन करते रहना।'

मूलुखाचर की हिम्मत जाग उठी, वे तुरन्त वर्तमान धारण करवाकर सत्संगी हो गए।

मूलुखाचर जब तक गढ़डा में रहे, कथा समाप्त होने के बाद वे हुक्का गुड़गुड़ाते और अफ़ीम का स्वाद भी लिया करते। एक दिन श्रीहरि ने कहा, 'मूलुखाचर! हम संघ लेकर वरताल उत्सव में चलते हैं। आप अवश्य आना। आपको गुजरात का आतिथ्य क्या है, मालूम हो जाएगा।'

वे तुरन्त सहमत हुए। संघ एक के बाद दूसरे गाँवों से गुजरने लगा। बीच-बीच में विश्रान्ति के लिए किसी गाँव की चौपाल में अथवा रहावन पर भोजन आदि भी होता रहता। उसी समय मूलु खाचर समय निकालकर हुक्के के दम लगा देते।

सारा गाँव संघ को देखने आता तब हुक्केवाले मूलुखाचर को देखकर इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1863 के प्रसंग दिये गये हैं।

टीका करते कि संघ के सारे लोग तो स्वामिनारायण के हैं, परन्तु यह हुक्का गुड़गुड़ाने वाला स्वामिनारायणी नहीं लगता। बारबार ऐसी टिप्पणी सुनकर मूलुखाचर बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने एक दिन गुस्से में आकर हुक्का इतने जोर से पटक दिया कि वह चूर-चूर हो गया। वे बोल उठे, 'आज से हुक्का हराम' उसी दिन से उन्होंने हुक्के का व्यसन छोड़ दिया।

फिर भी तम्बाकू और अफीम को तो नहीं छोड़ पाए। सारा संघ वरताल पहुँचा। वहाँ के हरिभक्तों ने सारे संघ को एकसाथ ठहरने की जगह दी। मूलुखाचर वहीं कहीं जाकर तम्बाकू एवं अफीम का सेवन कर लेते। यह बात गुप्त नहीं रह पाई। सभी सत्संगियों को पता चल गया। महाराज ने गुजरात और सौराष्ट्र के सारे सत्संगियों का परस्पर परिचय करवाया। उस समय सभी एक-दूसरे के गले मिलने लगे। लेकिन सभी ने मूलु खाचर को दूर रखते हुए कह दिया कि, यह तम्बाकू और अफीम खानेवाला व्यक्ति सत्संगी नहीं हो सकता। वे मूलुखाचर से गले नहीं मिले। मूलुखाचर को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उसी समय निश्चय किया और तम्बाकू और अफीम भी छोड़ दिया।

जब श्रीहरि को इस बात का पता चला तो उन्हें बुलाकर पूछने लगे, 'दरबार, किसके उपदेश से आप व्यसनमुक्त हुए?'

उन्होंने कहा, 'महाराज! गाँववालों के टोकने से मैंने हुक्का छोड़ दिया और सत्संगियों के टोकने से मैंने तम्बाकू-अफीम छोड़ दी।'

पुनः वे आभारवश कहने लगे, 'प्रभु! इस उत्सव में लाकर आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है, व्यसनों की गुलामी से मुझे मुक्त कराके आपने मेरा जीवन धन्य कर दिया है।'

भट्टजी की उलझन मिटाई

श्रीहरि ने जन्माष्टमी का उत्सव अगतराई में करने का निश्चय किया। अगतराई में पर्वतभाई के घर उनका निवास था। पर्वतभाई ने उत्सव के लिए अपना अन्नभंडार खोल दिया था। श्रीहरि ने भी काठियों को गुड़ चावल के साथ धारावत् घी परोसकर प्रसन्न कर दिया। पर्वतभाई श्रीहरि की यह लीला देखकर खुशी से नाच उठे थे। काठी भक्तों को श्रीहरि ने पर्वतभाई की

महिमा परोक्ष रूप से समझा दी। जन्माष्टमी के पश्चात् कुछ दिन ठहर कर श्रीहरि ने गढ़डा लौटने का निश्चय किया।

एक दिन वे भोजनादि से निवृत्त होकर बैठे थे कि माणावदर गाँव के मयाराम भट्ट श्रीहरि को वंदन करने के लिए आ पहुँचे। 'भट्टजी! गढ़डा चलिए, आपको वहाँ अन्नकूट उत्सव का लाभ देंगे।' श्रीहरि ने कहा, भट्टजी कुछ असमंजस में पड़ गये।

'क्या सोच रहे हो, भूदेव?' श्रीहरि ने पूछ लिया।

भट्टजी ने कहा, 'प्रभु, बात यह है कि इस वर्ष बाजरे की फ़सल बहुत अच्छी हुई है। कटाई का समय हो गया है। यदि मैं गढ़डा चलूँ तो सम्भव है कि वापस लौटने पर एकाध दाना भी न मिले।'

'अब समझ में आया। परंतु भट्टजी कटाई के लिए हम मदद करें तो?'

'तब तो अवश्य चलूँगा। प्रभु, आपके साथ अन्नकूट मनाने का मन किसे नहीं होगा?'

महाराज ने तुरन्त पर्वतभाई द्वारा सारे हरिभक्तों के घरों से दंतिये मंगवाई, दोपहर होते ही पचास-साठ हरिभक्तों का संघ लेकर वे भट्टजी के खेत पर पहुँच गये। संतों और हरिभक्तों के साथ स्वयं श्रीहरि भी फ़सल काटने लग गये। सूर्यास्त के पहले ही कटाई संपूर्ण हो गई। गठरिया बाँधकर, बैलगाडी में डालकर सारा बाजरा भट्टजी के घर डलवा दिया। दूसरे दिन सुबह भट्टजी भी महाराज के साथ गढ़डा रवाना हो गये।

बालहत्या बन्द करवाई

अज्ञान, अंधश्रद्धा और आर्थिक कठिनाइयों के कारण उस समय में कुछ कुरीतियाँ प्रचलित हो गई थीं। श्रीहरि ने उन कुरीतियों को दूर करने का संकल्प किया। राजपूत, काठी और गिरासदार जातियों में कन्या के पैदा होते ही दूध में मुँह डुबोकर मार डालने की कुप्रथा थी। इस कुप्रथा का एक कारण यह था कि कन्या के विवाह में विशेष खर्च हो जाता था। उनको दहेज बहुत देना पड़ता था। श्रीहरि ने अपने आश्रित काठी एवं राजपूत हरिभक्तों में यह कुप्रथा बन्द करवाई। इससे पूरे क्षत्रिय समाज में भारी खलबली मच गई।



श्रीहरि बंधिया में विराजमान थे। कुछ काठी-राजपूत उनके दर्शन के लिए आये। उनके मन में कुछ प्रश्न थे। वर्तमान सामाजिक प्रवाह के विरुद्ध श्रीहरि ने जिस कुप्रथा को बंद करवाया था, उसके विषय में कुछ परामर्श के लिए वे उपस्थित हुए थे।

उनको उपदेश देते हुए श्रीहरि ने कहा, 'कन्या को इस प्रकार मार डालने से तीन प्रकार की हत्या का पाप लगता है। स्वजन की हत्या का पाप, बालहत्या का पाप और स्त्री हत्या का पाप। आपको ऐसे कुकृत्य न करना चाहिए। ऐसे महापाप से बचकर भगवान से डरते रहो।'

परंतु उन लोगों ने कहा, 'प्रभु! क्या करें, लड़की के विवाह में बहुत खर्च होता है, जो हमारी शक्ति से बाहर है। हम इतने पैसे कहाँ से लाएँ? लड़कियों के पैदा होते ही मारते हैं, यह हमारी मजबूरी है।'

श्रीहरि ने कहा, 'मैं आपको वचन देता हूँ कि कन्याओं के विवाह के लिए आप लोगों को जितने धन की आवश्यकता पड़ेगी, उतना धन हम इन सत्संगियों से एकत्र करके आप लोगों को देंगे। परंतु इस कुप्रथा को तो आपको मिटाना ही पड़ेगा। क्योंकि यह तो बहुत घृणित पाप है।'

श्रीहरि के आश्वासन के सामने क्षत्रियों के कोई तर्क टिक नहीं पाए। एक राजपूत ने लोकलाज का प्रश्न उठाते हुए कहा कि 'हमारी जाति में युवा लड़के व्यसनी एवं दुराचारी होते हैं, यदि कोई पैसा भी देता है तो भी हम अपनी कन्या को ऐसे-वैसे के साथ विवाह करके अपने मान-सन्मान का नीलाम नहीं करना चाहते।'

श्रीहरि ने पलंग पर हाथ मारते हुए सत्तावाही स्वर में भविष्यवाणी करते हुए कहा, 'जब हम तुम्हारा इतना दायित्व ले रहे हैं, तो क्या तुम्हारी कन्याओं के लिए अच्छे चरित्रवान लड़के हम निर्माण नहीं करेंगे? भगवान पर भरोसा रखो तो वे तुम्हें सम्भाल लेंगे। अगर हमारा यह आदेश नहीं मानोगे तो याद रखो, तुम्हारी लड़कियाँ जंगलियों के साथ ब्याही जाएँगी। अब ऐसा राज्य (अंग्रेजों का) आ रहा है, जो कानून और सत्ता के द्वारा तुम्हारा लूटपाट का धन्धा बन्द करवा देगा और वे सारी कुप्रथाओं को समाप्त कर देगा। उस समय पराधीन होकर जबरदस्ती से यह सब छोड़ना पड़ेगा। हाथ में माला लेने का समय आयेगा। तब तुम्हारी एक न चलेगी। मैं

फिर से कहता हूँ, मेरी आज्ञा मानकर मेरी प्रसन्नता प्राप्त करो। माला लेकर भगवान का भजन करो, वे तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे।'

क्षत्रियों के अन्तःचक्षु खुल गये। श्रीहरि की बात पर उन्हें विश्वास हुआ। आज्ञापालन का उन्होंने वचन दिया। हुआ भी ऐसा ही, अंग्रेजी सत्ता सूरत से गुजरात और सौराष्ट्र की ओर फैलकर धीरे-धीरे सर्वत्र छा गई।

सतीप्रथा का अन्त

उस युग में सती-प्रथा प्रचलित थी। बंगाल, बिहार की ओर यह प्रथा जोरों पर थी। गुजरात के सौराष्ट्र प्रभाग में काठी, गरासिया और राजपूत जातियों में सती-प्रथा का प्रचलन था। श्रीहरि ने प्रथम उन्हें प्रेमपूर्वक वश में किया बाद में उन्होंने उनके सामाजिक जीवन में प्रवेश किया। इस प्रकार वे लोककल्याण के लिए एक एक कदम बढ़ाते गये।

अबला स्त्रियों पर बलपूर्वक लादी गई इस त्रासदायक कुप्रथा के सामने श्रीहरि ने क्रांति जगाई।

उन्होंने सतीप्रथा का केवल खण्डन ही नहीं किया, वरन् अपने आश्रित क्षत्रियों में से यह कुप्रथा बिल्कुल समाप्त कर दी। उन्होंने यह क्रांति बलप्रयोग अथवा धमकी से नहीं की। अपितु प्रेम, समझौता और शुद्ध तर्क के द्वारा की थी। लोगों को उन्होंने इस कुप्रथा के विरुद्ध शास्त्रीय प्रमाण देकर जाग्रत किया।

श्रीहरि उपदेश देते हुए कहते कि 'पति के मृत्यु के बाद स्त्रियों को सती होने के लिए मजबूर करना अत्यंत ही घृणित प्रथा है। स्त्रियों को भी इससे आत्महत्या का पाप लगता है। हमारा अभिप्राय यही है कि तीर्थ की महिमा समझकर, पति के प्रति मोहांध होकर अथवा सामाजिक लज्जा के कारण सती होकर 'आत्महत्या' नहीं करना चाहिए। पुरुषों को भी हमारा आदेश है कि वे किसी भी स्त्री को सती होने के लिए प्रेरित न करें और न तो उनको सती होने के लिए मजबूर करें। क्योंकि वह पाप स्त्रीहत्या के बराबर है। समझदार एवं प्रबुद्ध स्त्रियों को तो अपने पति की मृत्यु के बाद बिना हताश हुए परमेश्वर के ही प्रतिभाव से सेवा करनी चाहिए। एक परमेश्वर के प्रति पतिव्रता के समान अविचल टेक रखते हुए अपने भाई-

पुत्र-पिता अथवा श्वसुर की आज्ञा में रहकर प्रभु भक्ति करते रहना। क्योंकि सती होने से मोक्ष तो नहीं मिलता बल्कि आत्महत्या के कारण जीवात्मा की अधोगति होती है। इसलिए दुर्लभ मानव शरीर की प्राप्ति हुई है तो मोक्ष सिद्धि प्राप्त करना यहीं हमारा उपदेश है।’

इस कुप्रथा के साथ-साथ उन्होंने विधवा स्त्रियों को ‘रांड’ कहने की आदत भी बंद करवाई। भक्तिमय जीवन बितानेवाली विधवा स्त्रियों को ‘सांख्ययोगी स्त्रियाँ’ कहकर उन्होंने उनका सामाजिक सम्मान बढ़ाया। मुक्तानन्द स्वामी को ‘सतीगीता’ नामक ग्रंथ रचने का आदेश देकर महाराज ने सती शब्द का सच्चा अर्थ नये स्वरूप में समाज के सामने रखा।

परमहंस दीक्षा

महाराज ने धोराजी में फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। रामानन्द स्वामी के देहोत्सर्ग के बाद श्रीहरि हमेशा श्वेत वस्त्र, भगवा उत्तरीय और टोपी पहनते थे। धर्मधुरा धारण करने पर भी उन्होंने मूल्यवान वस्त्र-अलंकार धारण नहीं किया था। परन्तु धोराजी में पूर्णिमा के दिन सूरत के प्रेमी हरिभक्तों ने अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रीहरि को प्रथम बार जरी के वस्त्र, सुरवाल, आभूषण आदि अर्पण किया और मुकुट धारण करवाया, सुशोभित झूले में झुलाया और श्रीहरि ने भी ब्राह्मणों को भोजन तथा दान से तृप्त किया।

वहाँ से श्रीहरि जूनागढ पधारे। यहाँ हरिनवमी-चैत्र शुक्ला नवमी का उत्सव मनाया तथा कालवाणी में भीम एकादशी का उत्सव किया।

विचरण के लिए गाँव-गाँव घूमते हुए संतवृंद कालवाणी आ चुके थे। श्रीहरि ने सभी संतों से विचरण की खबर पूछी। संतों ने श्रीहरि के समक्ष अपनी दुःखद दास्तानें सुनाई कि सदाव्रत के स्थान पर वैरागी लोग किस प्रकार लूटपाट करते हैं और मार-पीट करके कैसा कहर बरपाते हैं। उन्होंने कहा, ‘महाराज! संन्यासी-वैरागियों ने हमें हर गाँव में गालियाँ दी। हमें लूट लिया, जनेऊ एवं माला तोड़ डाली, पूजा-सामग्री को नष्ट की, आदि प्रभु, हम ये बातें तो सह सकते हैं, परन्तु जब वे अपनी चेलियों को हमसे हमारे पीछे भगाकर हमारा ब्रह्मचर्य भंग करवाने के लिए ऊधम मचाते हैं। यह

हमसे सहन नहीं होता।' संतों के कष्ट सुनकर श्रीहरि बहुत दुःखी हुए।

संतों को गाली, अपमान, तिरस्कार और मारपीट का दुःख नहीं था, लेकिन स्त्रियों के द्वारा उपस्थित होनेवाली हरकतों से वे अत्यंत परेशान थे। बाबा लोग जान-बूझकर संतों के पीछे अपनी चेलियाँ दौड़ाते। वे संतों का स्पर्श करके, उनकी सामग्री नष्ट करवाते यह सब सुनकर श्रीहरि कहने लगे, 'अब मैं आप सभी को ऐसा परिवेश धारण करने की आज्ञा करता हूँ, जिससे किसी के लिए आपकी पहचान होना आसान नहीं होगा।'

इस प्रकार भीम एकादशी की रात को श्रीहरि ने एक साथ पाँच सौ संतों को शिखासूत्र का त्याग करवाकर संन्यास-धर्म की परमहंस दीक्षा दे दी। मानसीपूजा का आदेश दिया। अलफ़ी पहनाकर साधुओं को आदेश दिया कि कंठी, माला, पूजा तथा तिलक आदि बाह्य चिह्न समाप्त करें। और संसार में अलक्ष्यरूप से विचरण करें।

केवल 26 वर्ष के युवा धर्मस्थापक में ऐसा कौन-सा आकर्षण था कि जिसके कारण बड़े-बड़े संत जो कि बरसों से वर्णाश्रम धर्मानुसार साधु के रूप में रहते थे, वे शिखासूत्र का त्याग करके परमहंस संन्यासी बन गये! विश्व के धार्मिक इतिहास में यह बिलकुल अनोखा और अद्वितीय प्रसंग था। इस विलक्षण परिवर्तन के बाद भी किसी साधु ने विरोध नहीं किया। हर कोई श्रीहरि के आदेशों को ब्रह्मवाक्य समझकर श्रीहरि के आदेश का अनुसरण कर रहे थे। यही घटना श्रीहरि के दिव्य व्यक्तित्व की सूचक बन गई।

श्रीहरि ने इसके उपरांत भी आदेश देते हुए 114 आज्ञाओं का अनुसरण करवाया। देखिए, यहाँ कुछ विशिष्ट आज्ञाओं का सिलसिला: 'लाल वस्त्र (स्त्री का) देखने में आये तो उपवास करना', 'पाँव फैलाकर सोना नहीं', 'ध्यान करते हुए सर्प या बिच्छू काटे फिर भी स्थिर रहना', 'सर्दी के दिनों में भी मटके के ठंडे पानी से नहाना' - इत्यादि कठिन आज्ञाओं के प्रकरण चलाये। फिर भी सभी परमहंस पूर्ण तत्परता के साथ खुशी से उन आदेशों का पालन करते रहे।

[7]

मूलजी भक्त की महिमा

श्रीहरि भादरा पधारे थे। एक दिन उन्होंने गाँव के वरिष्ठ सत्संगी

वशरामभाई से पूछा, 'आज हमारे भोजन की बारी किसके घर है?'

वशरामभाई ने कहा, 'महाराज, आज तो मूलजी शर्मा के घर भोजन है।'

'ठीक है, चलो हम मूलजी के यहाँ जाएँ।' श्रीहरि ने कहा। जब वे मूलजी भक्त के घर पधारे तब मूलजी खेत पर गये थे। उनकी माता साकरबा ने आसन बिछाकर श्रीहरि को बिठाया। वशरामभाई, डोसाभाई, रतनाभाई आदि हरिभक्त श्रीहरि के समक्ष सभा के रूप में बैठ गये। अचानक श्रीहरि ने साकरबा से पूछा, 'माँ, तुम्हारे मूलजी हमें कभी याद करते हैं कि नहीं?'

'अरे महाराज, उसकी तो बात ही क्या कहूँ। वह तो घूमते-फिरते रात-दिन आपका ही स्मरण किया करता है। एक पलभर भी आपको नहीं भूलता। जिस दिन आपको यज्ञोपवीत दिया गया था, तब उसने मुझसे कहा था कि माँ आज यज्ञोपवीत के गीत गाओ। जब आप घर का त्याग करके वन-विचरण के लिए निकले, तब भी उसने मुझसे कहा था कि आज अक्षरधाम के स्वामी गृहत्याग करके वन में जाने के लिए निकले हैं। इस तरह बचपन से ही मेरा मूलजी आपको याद किया करता है।' माँ ने कहा।

यह सुनकर श्रीहरि कहने लगे, 'ये मूलजी तो हमारे निवास का अक्षरधाम है, वे अनादि अक्षरब्रह्म हैं। साकरबा! यह तो गर्भ में थे तब, उससे पहले और आज भी हमारी मूर्ति अखंड देखते थे और देखते हैं। हमारा और उनका स्नेह अनादिकाल से है। हम भी जन्म से ही मूलजी को निरंतर याद करते हैं, उनका नाता हमारे साथ शाश्वतरूप में है और हमारा नाता उनके साथ निरंतर है।

दस अवतार, चार व्यूह, चौबीस मूर्ति और ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश एक-एक ब्रह्माण्ड में निवास करते हैं। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डों को मूलजी ने अपने एक-एक रोम में धारण किया है। वे तो मूल माया, मूल पुरुष आदि से परे हैं। वे तुम्हारे घर पुत्ररूप में प्रकट हुए हैं।

मूलजी तो अनादि अक्षरब्रह्म हैं। अधो-ऊर्ध्व, और प्रमाणरहित हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। मूलजी के सम्बन्ध से जो जीव शुद्ध ब्रह्मरूप हो जाता है, वह आत्यन्तिक मुक्ति को पाता है।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1864 के प्रसंग दिये गये हैं।

धामरूप मूलजी निर्गुण और गुणातीत हैं, ज्योतिरूप हैं, हमारी मूर्ति और अनन्त मुक्तों को धारण किये हुए हैं, फिर भी हमारे निकट अखंड हमारी सेवा में मूर्तिमान स्वरूप में सदा रहते हैं। मूलजी कर्ता होते हुए भी अकर्ता, यानी सबसे अलिप्त हैं। आप सब अक्षर की यथार्थ महिमा को समझोगे और प्रकट अक्षरब्रह्म के साथ एकरूप बनोगे तब हमारी महिमा समझ पाओगे। जो अक्षररूप होगा उसीको अक्षर से परे पुरुषोत्तम की यथार्थ महिमा समझ में आ जाएगी।’

ऐसी महिमा सुनकर साकरबा ने कहा, ‘महाराज! मेरी तो स्त्री की देह है, इसलिए मैं अधिक कुछ नहीं समझ पाती, किन्तु आप जैसा कहते हैं वैसा ही है।’

तभी मूलजी भक्त आ गये। महाराज भोजन के लिए बिराजमान हुए। उन्होंने मूलजी के हाथों में प्रसाद देकर उन्हें धन्य किया।

भादरा में श्रीहरि ने एक मास तक निवास किया। हरिभक्तों को समझाया कि अपने धामस्वरूप अक्षरब्रह्म ये मूलजी शर्मा हैं। तत्पश्चात् कार्तिक शुक्ला तृतीया के दिन वे विचरण करते हुए कच्छ प्रभाग में पधारे।

अट्टारह को दीक्षा

श्रीहरि को सुन्दरजी सुथार के अहंभाव युक्त शब्द याद थे। महाराज ने उनका गर्व भंजन करने के लिए एक अनन्य घटना का सृजन किया।

भादरा से निकलने से पूर्व उन्होंने सुराखाचर, अलैया खाचर, अमरो पटगर... आदि अट्टारह सेठ-साहुकार और दरबारों के नाम पर एक सुंदर आदेश पत्र लिखा कि ‘आप लोग इस पत्र को पढ़कर, तत्काल घर का त्याग करके, जेतलपुर जाइए। वहाँ रामदास स्वामी से दीक्षा पाकर, काशी काशी की ओर प्रस्थान करें। वहाँ ठहरकर कुछ महिनों के बाद हमें भुज आकर मिलना।’ पत्रवाहक सभी के घर श्रीहरि का आदेश लेकर निकल पड़ा। सभी भक्त महाराज का आदेश सुनते ही घरबार छोड़कर निकल पड़े। जब वे रामदास स्वामी के पास आये। उसी दिन श्रीहरि ने रामदास स्वामी को स्वप्न में दर्शन दिया कि इन नये परमहंसों का वृंद लेकर आप सीधे भुज पधारे।

श्रीहरि भुज पधारे कि कुछ ही दिनों में नये परमहंसों का वृंद रामदास

स्वामी के साथ भुज आ पहुँचा। श्रीहरि स्वयं दंडवत् करते हुए उनका सत्कार करने के लिए पधारे। फिर सुन्दरजी सुतार से सभी का परिचय देते हुए कहने लगे, 'इनमें से प्रत्येक पाँच, पच्चीस या पचास गाँव के स्वामी हैं। केवल हमारा एक पत्र पढ़ते ही झोलिया पक्षी⁵ की तरह सबकुछ छोड़कर साधु बनकर आये हैं।'

उन परमहंसों को देखकर सुन्दरजी सुतार के नेत्रों में पानी आ गया। उनका अहंकार गल गया। उन्होंने बंधिया में श्रीहरि से कहे शब्दों के लिए क्षमायाचना की। किन्तु महाराज ने अपना इरादा बदल दिया और सभी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी। किन्तु कडु गाँव के कल्याणभाई वापस नहीं लौटे। वे तो अपना नाम पत्र में न होने पर भी, 'आदि' शब्द में अपना समावेश मानकर साधु बन गये थे, ऐसे 'अद्भुतानन्द स्वामी' ने साधु रहना ही पसंद किया। महाराज ने भुज-कच्छ में विचरण किया। माण्डवी में महाराज ने खैय्या खत्री के प्रश्नों के उत्तर देकर, खैय्या खत्री को जीतकर अपना आश्रित बनाया।

हिंसामय यज्ञ का खंडन

भुज में जगजीवन मेहता नाम का ब्राह्मण, राजा देवाजी राव के आठ दिवानों में से एक था। वह माताजी का भक्त था। उसने हिंसामय शतचण्डी यज्ञ का आयोजन किया। उसमें पाखंडी तांत्रिकों के द्वारा 'देवी को प्रसन्न करने' के उद्देश्य से वह भेड़-बकरों का वध करना चाहता था। मंत्रोच्चार एवं आहुति दे रहे तांत्रिकों के सिर पर रक्त की तरह कुकुंम फैला हुआ था। बकरों को उन्हें गले में हार पहनाकर बलिदान के लिए तैयार किये गये थे।

जब श्रीहरि को इन लोगों को हिंसक परंपरा की खबर मिली। वे निरीह प्राणीओं पर होनेवाले अत्याचार की कल्पना से कापने लगे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि ऐसे हिंसक यज्ञों के कारण वैदिक यज्ञ और वेदकथित के सिद्धान्तों का ह्रास हो रहा है। वेदों के सत्यनिष्ठ रहस्यार्थ समझाने के

5. ऐसे कबूतर, जो आकाश में उड़ते समय जमीन पर खड़े अपने मालिक का इशारा पाकर पूर्ण विश्वास से अपने पंख हिलाना बंद कर गिर पड़ते हैं और मालिक उनको झोली में ले लेता है, जमीन पर गिरने नहीं देता।

लिए तथा जगत में अहिंसामय यज्ञों की परंपरा का पुनः स्थापन करने के लिए श्रीहरि जगजीवन द्वारा हो रहे यज्ञ-मण्डप में पधारे। श्रीहरि ने साधु और ब्राह्मणों के लक्षणों की एवं धर्म की बातें की। तत्पश्चात् वेद-मंत्रों के आधार पर उन्होंने अहिंसामय यज्ञों का अत्यंत तर्क एवं शास्त्रसंगत तरीके से प्रतिपादन किया।

उन्होंने कहा, 'अजेन यजेत्।' का अर्थ आप ऐसा करते हैं कि 'बकरो' की बलि देकर यज्ञ करना' परंतु इसका अर्थ ऐसा नहीं है। 'अज' का अर्थ है कुछ साल पुराना एवं कभी उग नहीं पाए ऐसे धान की आहुति देना। ऐसे धान से यज्ञ में आहुति देनी चाहिए। तथा सुपात्र ब्राह्मण के द्वारा सात्विक हुत द्रव्यों से यज्ञ करना चाहिए। यही वेदों का सनातन सिद्धान्त है। यज्ञ में प्राणी की हिंसा करने से कोई देवी-देवता प्रसन्न नहीं होते। शास्त्रों के आधार पर श्रीहरि ने ऐसा बहुत उपदेश दिया। जगजीवन ने बहुत से तर्क किये। किन्तु उसका तर्क महाराज की शास्त्रोक्त बात के आगे नहीं टिक सका। शास्त्रार्थ में महाराज की विजय हुई। अहिंसामय यज्ञ सच माने गये।

किन्तु आसुरी बुद्धिवाला जगजीवन माना नहीं। इस कारण महाराज वहाँ से चले गये।

ब्रह्मचारी को साथ बैठाया

महाराज कच्छ में विचरण कर रहे थे। वांढिया गाँव की ओर जाते हुए मार्ग में कुछ चोरों से भेंट हो गई। महाराज ने ब्रह्मचारी से कहा, 'हमारे साथ जो भोजन है, सभी इनको दे दो' चोरों ने पैसे के लिए दोनों की तलाशी ली परंतु उनको कुछ भी नहीं मिला, इसलिए वे भोजन लेकर चलते बने। कुछ देर के बाद महाराज ने कहा, 'ब्रह्मचारीजी, मुझे भूख लगी है। अब खाली पेट तो नहीं चल पाऊँगा। कुछ सुखड़ी वगैरह है या नहीं ?'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'आपही ने तो सब कुच चोरों को दिलवा दिया अब मेरे पास कुछ नहीं है।'

महाराज ने कहा, 'तब तो भूखे पेट कैसे चला जाएगा?' महाराज मार्ग पर ही खड़े रह गये।

उसी समय एक कुनबी पटेल खाली बैलगाड़ी लेकर आ पहुँचा।

ब्रह्मचारी ने उसे समझाकर कहा, 'हमारे गुरु को बिठाओगे?' उसने तुरंत सेवा के लिए हामी भर दी। श्रीहरि ने ब्रह्मचारी से भी अपने साथ गाड़ी में बैठने के लिए निमंत्रित किया। किन्तु सेवकधर्म का पालन करनेवाले ब्रह्मचारी गाड़ी में नहीं बैठे। उन्होंने पीछे-पीछे चलना ही पसंद किया। परंतु गाड़ी जल्दी से चलने के कारण ब्रह्मचारी बहुत पीछे रह जाते थे। कुछ देर के लिए महाराज ने अचानक गाड़ी में इतना वजन बढ़ा दिया कि बैल एक इंच भी आगे नहीं चल पाए। पटेल ने बैल हाँकने के लिए भारी पुरुषार्थ किया पर गाड़ी का बैल आगे नहीं बढ़ पाए।

महाराज ने मज़ाक करते हुए कहा, 'पटेल, यह जो पीछे दाढ़ीवाला साधु (ब्रह्मचारी) चला आ रहा है, वह बहुत जादू-टोने वाला है। उसीने हमारी गाड़ी खड़ी कर दी है। इसलिए तुम उसे गाड़ी में बिठाओगे तभी तुम्हारी गाड़ी चल पाएगी। यदि वह मना कर दे तो उसे बलपूर्वक कलाई थाम कर गाड़ी पर बिठा देना।'

पटेल ने ऐसा ही किया, तुरंत गाड़ी चल पड़ी। वांढिया गाँव में धर्मशाला के सामने महाराज गाड़ी से उतर गये। पटेल के घर पधारे और सुखड़ी का भोजन स्वीकार किया। भक्तों को कष्टों से उबारने के लिए वे अपने ऐश्वर्य का उपयोग इस प्रकार किया करते थे। जिसमें मज़ाक तो रहता ही था, प्रायः उनकी करुणा झलकती रहती थी।

स्वयं पालन करके फिर पालन करवाया

श्रीहरि अपने परमहंसों को जो भी आज्ञा देते, उसके अनुसार पहले स्वयं ही आचरण करते। शिक्षा देने के लिए उनका यह तरीका था कि स्वयं बरतते, फिर दूसरों को बरतने का आदेश देते और अपने व्यवहार द्वारा सबको शिक्षा देते थे।

'तेरा' गाँव में महाराज ने परमहंसों को आज्ञा दी, 'आज से सब परमहंस भिक्षा में पकाया हुआ अन्न ही लें। रोटी, खिचड़ी इत्यादि जो भी मिला हो, एकत्र करके, एक कपड़े में मिलाकर, कपड़े सहित पानी में डालकर, उसे हिलाकर निचोड़कर ऐसे अन्न के गोले बनाना। जब वहाँ कुत्तों को सूँघने लायक न रहे ऐसा स्वादविहीन एक-एक गोला आप सब

परमहंस खा लेना'

यह सुनकर कुछ परमहंसों के मन में विचार आने लगा कि हर किसी के हाथ का पकाया हुआ अन्न खाने से हम धर्मच्युत तो नहीं हो जाएँगे? गोविन्द स्वामी तो इस तरह पकाए हुए अन्न की भिक्षा माँगने के लिए तैयार ही नहीं थे। वे तो इस आदेश का मन ही मन विरोध कर रहे थे। जब कि महाराज सोच रहे थे कि परमहंस-दीक्षा लेने के पश्चात् वर्ण या आश्रम का मान नहीं रहना चाहिए।

आखिर श्रीहरि स्वयं कुछ परमहंसों के साथ भिक्षा माँगने के लिए पधारे। दोपहर के तक जो भी पका हुआ अन्न मिला, श्रीहरि उसे एक झोली में लेकर परमहंसों के साथ कुएँ पर पधारे। उस झोली को तीन बार अच्छी तरह पानी में झकझोर दी। तत्पश्चात् अत्यंत बेस्वाद भोजन का एक गोला सबसे पहले स्वयं खाया और सभीको खाने के लिए दिया। गोविन्द स्वामी यह देखकर अवाक रह गये। अपने इष्टदेव को पहल करते देखकर सबका अहंकार पिघल गया। सभीने महाराज की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया। इस तरह परमहंसों की तपस्या के लिए उन्होंने एक नया प्रकरण प्रारंभ किया।

साधुओं की कठिन परीक्षा

श्रीहरि ने कुछ संतों को मुक्तानन्द स्वामी के साथ गुजरात की ओर सत्संग प्रवर्तन के लिए भेजा। वे अहमदाबाद आ पहुँचे। वहाँ दरियाखान के गुंबद के नीचे उनका निवास था। शहर में भिक्षा के लिए जाते, तब उन्हें द्वेषियों के द्वेष का सामना करना पड़ता। वे उनकी झोली में मरे हुए चूहे, छिपकली, प्याज, लहसुन और घर का कूड़ा भी डाल देते। संतों को मिली हुई भिक्षा फेंक देनी पड़ती और उपवास करने पड़ते। कई बार एक पाव या उससे भी कम भिक्षा प्रत्येक के भाग में आती। भिक्षान्न को साफ करके सभी संत पानी डुबोकर, गोला बनाकर साधु खा लेते। एक बार साधुओं की भिक्षा में कुछ सड़ा हुआ बासी भोजन मिला। संतों के शरीर पर इसका विपरीत असर हुआ। उनके पैरों में चीरे पड़ गये और तलवे में छाले उभर आये....।

ठीक उसी समय भुज में महाराज के पैरों में भी छाले उभर आये?

शिष्यों के साथ श्रीहरि का कैसा एकात्मभाव ?

करीब डेढ़ सौ संतों की एक मंडली जामनगर गई थी। सभी संत शहर के बाहर तालाब के किनारे ठहरे थे। उन्हें भिक्षा में ज्वार, बाजरी, मकाई का आटा, चावल की किनकी तथा कोदरी मिला करती थी। प्रत्येक परमहंस उपरोक्त विधिपूर्वक उसे निःस्वाद करके एक-एक गोला खा लेता। कभी-कभी आधा पाव तो कभी एक ही ग्रास अन्न का खाने को मिलता था। संतों ने अपनी कठिनाई की बात हरिभक्तों के द्वारा महाराज को कहलाई।

कुछ दिनों के बाद महाराज ने उत्तर भेजा, 'कुछ समय पहले एक सद्गुरु की झोपड़ी पर गाँव का एक आदमी प्रतिदिन एक सेर चावल दे जाता था। उसीका भोजन करके वे दिनभर साधना किया करते थे। इतने में एक मुमुक्षु उनका शिष्य बनने के लिए आया। गुरु ने कहा, 'मुझे तो नित्य एक सेर चावल मिलते हैं, जिसका भात बनाकर खा लेता हूँ। इसमें कठिनाई से मेरा पेट भरता है। तो मैं तेरे लिए क्या प्रबंध कर सकता हूँ?'

मुमुक्षु ने कहा, 'गुरुजी, मेरी चिन्ता न करें, आप चावल का मांड निकालते हैं, मैं उसे पीकर रह लूँगा।' और वह गुरु की सेवा में रह गया।

कुछ समय के बाद दूसरा मुमुक्षु आ पहुँचा, उसने वहाँ शिष्य बनकर रहने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने स्वयं और शिष्य दोनों के निर्वाह के विषय में बता दिया। परंतु उसने कहा, 'गुरुजी, चिन्ता न करें। आप चावल पकाने से पहले उन्हें धोते हैं, उस धोवन को पीकर मैं आपकी सेवा में रह लूँगा।' वह भी गुरु की सेवा में धोवन पीकर रह गया।

एक दिन तीसरा मुमुक्षु आया। उसने भी वहीं रहने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने अपने दोनों शिष्यों के निर्वाह के विषय में सब कुछ बता दिया तब उसने कहा, 'गुरुदेव! आप भोजन के पश्चात् हाथ धोते हैं। वह झूठा पानी और नीचे गिरे हुए झूठे अन्न के दाने खाकर मैं आपकी सेवा में रहूँगा। आप मेरी चिन्ता न करें, मुझे तो सत्संग करना है।' इस तरह तीनों सद्गुरु के साथ रहने लगे। इन शिष्यों की तुलना में तुम्हारा दुःख कुछ भी नहीं है। अतः धैर्य होगा, तो आप को दुःख मालूम नहीं होगा और भगवान का भजन हो पाएगा।'

ऐसा अद्भुत प्रेरणापत्र पढ़कर सभी संत उत्साहित हो गये। वे अपना दुःख भूलकर कठिन साधना के लिए नई शक्ति से कटिबद्ध हो गए। तेलंग प्रदेश से आने वाले एक साधु तो तालाब में सब्जी धोने के लिए आने वाले काछी व्यर्थ के पत्ते छोड़ जाते, उसे खाकर रहते थे। कितने ही साधु हरी काई खाकर रहते, इसी तरह चार-पाँच दिन बीत गये।

पाँचवें दिन अचानक जामनगर के राजा उधर से निकले। थोड़ी दूर से उन्होंने साधुओं के कृश शरीरों को देखा। उनका हृदय दया से पसीजने लगा। उन्होंने कुछ नौकरों द्वारा जाना कि ये स्वामिनारायण के साधु हैं। और भिक्षा के अभाव में उनके शरीर अत्यंत दुर्बल हो गए हैं। राजा ने संतों से कहलवाया, 'साधुओं से कहो कि हमारे महल में आकर रहें। सब सीधा और सामान हमारे महल से आयेगा। आप वहीं रहकर आनंदपूर्वक भजन-साधना करें।'।

मण्डल के मुख्य संत स्वामी स्वरूपानंदजी थे। उन्होंने कहा, 'जहाँ हमारा सत्कार होगा वहाँ हम नहीं रह सकते। हमें राजसी ठाट शोभा नहीं देता। इसलिए हम महल में तो नहीं ठरेगे।'।

तब राजा ने कहा, 'क्या यह राज्य के स्वामी का अपमान है?'

स्वामी ने कहा, 'हम अपमान करना नहीं चाहते, किन्तु हम अपने इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण का दिया हुआ नियम नहीं तोड़ सकते। यदि कदाचित् आपको अपमान महसूस हो तो हम आपके आदेश से इस स्थल को छोड़कर जा सकते हैं। हम तो किसी और गाँव में जाकर भजन करेंगे।'।

यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गया। उनके मन में संतों के प्रति आदर बढ़ गया। पश्चात् राजा ने अलग-अलग दुकानों में और घरों में अपनी ओर से सीधा रखवा कर संतों के लिए गाँव में अच्छी भिक्षा का प्रबंध करवा दिया। केवल दो दिन गुजरे थे कि स्वामीने संतों से कहा, 'आप जानते हे कि जहाँ नित्य अच्छी सामग्री मिले, वहाँ रहने का आदेश नहीं है। अच्छा पदार्थ साधु के लिए बंधनकारी है, अतः चलो।' तीसरे दिन साधुओं की मण्डली वहाँ से चल निकली।

एक बार महाराज ने आदेश दिया कि 'आपको प्रतिदिन पाँच मुमुक्षुओं से सत्संग की बातें करके, वर्तमान धारण कराना और उन्हें सत्संगी बनाकर ही

भोजन करना। इस आदेश के अनुसार सभी संत एक एक मुमुक्षु के पीछे सदाचार के नियम देने के लिए पुरुषार्थ करने लगे। वे हल चलाने वाले किसानों के साथ खेत के इस सिरे से उस सिरे तक चलते चले जाते, उन्हें बातें कहते रहते। कभी कभी लुहार, सुनार, राज मिस्त्री, दर्जी अथवा दूर-दराज जंगलों में रहने वाले वनवासियों की झुगियों तक वे विचरण जारी रखते। इतना कष्ट करने पर भी कई बार पूरे पाँच सत्संगी नहीं हो पाते। साधुओं को उपवास करने पड़ते। महाराज को इस बात का पता चला। उन्होंने करुणा करके कहा कि शाम तक यदि मुमुक्षुओं को सत्संगी बनाने के प्रयत्न के बाद भी आप निष्फल रहो तो सूर्यास्त के पश्चात् पांच वृक्षों को वर्तमान धारण करवा कर जल ले सकते हैं।

गाजर मेरी बैरन

कच्छ के विचरण के बाद श्रीहरि अलैयाखाचर के गाँव झिंझावदर आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने परमहंसों को नया आदेश दिया, 'भोजन के पहले सभी को ध्यान करना चाहिए। जब पात्र में सब कुछ परोस दिया जाये, तब तब आँखें बंद करके पात्र में हाथ डालना। जिस सामग्री पर आपका प्रथम हाथ पड़े, उस सामग्री के सिवा और कुछ भी नहीं खाना।'

दोपहर के भोजन का समय हुआ। सभी को सबकुछ परोस दिया गया था आँख बंद करके बैठे हुए संतों-भक्तों की ओर देखकर महाराज ने 'जय' बुलवाई। सुराखाचर का हाथ गाजर के तीखे अचार में पड़ा। अत्याधिक नमक और मिर्च का बना गाजर का टुकड़ा मुँह में रखते ही सुराखाचर को हिचकियाँ आने लगीं। आँखों से पानी बहने लगा। शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। सुराखाचर ने पानी तो पिया पर बिना कुछ खाये भूख नहीं मिटी थी। वे श्रीहरि को सुनाने के लिए उच्च स्वर से गाने लगे, 'व्हाला, गारजडां मारां वैरी रे...' महाराज सुराखाचर की होशियारी पर हँस पड़े।

उन्होंने कहा, 'क्यों, कैसा सुख मिला?'

सुराखाचर ने कहा, 'महाराज! मेरे इस सुख में तो सबको भागीदार होना चाहिए।' अब उन्होंने दया करके सुराखाचर को खीर खाने की आज्ञा दी।

पठान को निश्चय

जूनागढ़ की सेना में नौकरी करनेवाला एक पठान झिझावदर की सीमा से जा रहा था। अचानक उसके अंतःकरण में शान्ति की अनुभूति होने लगी, मन के अनिष्ट संकल्प शान्त हो गये, उसे चारों ओर तेजपुंज दिखाई देने लगा। यह ऐसा तीव्र अनुभव था कि वह सोचने लगा कि मुझे ऐसी अनुभूति न तो मक्का-मदीना की हजयात्रा में हुआ था, मैं तो मस्जिद में नमाज पढ़ते हुए कभी ऐसा अनुभव हुआ है। वह इस अनुभूति का कारण ढूँढ़ने के लिए गाँव की ओर खींचा जा रहा था।

उसने एक प्रभावशाली पुरुष को देखा, तो पूछ लिया, 'भाईजान, इस गाँव में कोई औलिया-फकीर रहते हैं क्या?'

वह पुरुष और कोई नहीं, परन्तु गाँव के ठाकुर अलैया खाचर थे। श्रीहरि के परम भक्त अलैया ने कहा, 'चलिए मेरे साथ मैं आपको उन ओलिये का दीदार करा दूँ।' वे पठान को लेकर गाँव के चौपाल की ओर चले। दूर से रामजी मन्दिर के बाबा को दिखाया। हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बाबा को देखकर पठान के मन को अंश भर सांत्वना नहीं मिली। अलैया खाचर मुस्कुराने लगे कि पठान को असलियत पहचानने में कोई तकलीफ नहीं होगी। वे उन्हें लेकर श्रीहरि के पास आ पहुँचे।

जैसे ही श्रीहरि का दर्शन हुआ पठान ने घुटने टेक दिये। झुककर श्रीहरि के समक्ष कुरान के कलमा पढ़ने लगा। आजान पुकारकर उसी समय नमाज अदा की। श्रीहरि कृपा-दृष्टि बरसाते हुए उसकी ओर देख रहे थे। उसे समाधि लग गई, जिसमें उसे अस्सी हज़ार पयगम्बरों के दर्शन हुए। श्रीहरि को खुदाताला मानकर वह लगातार स्तुति करने लगा, 'या अल्लाह, मुझे आपकी खिदमत में रखने की मेहरबानी करें।' श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद देकर कहा, 'तुम इस घटना को निरन्तर स्मरण में रखना। हम तेरा कल्याण अवश्य करेंगे। तेरे अन्त समय पर हम तुझे अपने धाम में ले जाएँगे।' पठान बार-बार नमस्कार करते हुए वहाँ से बिदा हुआ।

महाराज वहाँ से कारियाणी की ओर चल दिए।

[8]

गूँगे के मुख से वेद-पाठ

सन् 1805 (संवत् 1861) से श्रीहरि जब भी कारियाणी पधारते, अपने संतों-भक्तों को प्रेरणा देकर उस जलहीन प्रदेश में तालाब, कुण्ड, तथा बावड़ी आदि खुदवाने का पूर्वकर्म करवाते। पूरे चार साल तक गाँववासियों के लिए यह काम चलता रहा। सन् 1809 (संवत् 1865) में काम पूरा होते ही श्रीहरि ने कारियाणी गाँव में भाद्रपद व आश्विन, दो महीनों तक महारुद्र तथा विष्णुयाग का भव्य आयोजन किया। चालीस दिन तक आयोजित हुए यज्ञों की पूर्णाहुति आश्विन कृष्ण त्रयोदशी को की। इस अवसर पर हजारों ब्राह्मणों को भोजन करवाया, दक्षिणा दी तथा उपस्थित संतों और हरिभक्तों को ज्ञान और प्रेरणा से तृप्त किया।

अब उन्होंने सत्संग के प्रचार के लिए गुजरात के खेड़ा जिले को लक्ष्य बनाया। विचरण करते हुए वे वरताल होकर उमरेठ पधारे। वहाँ जागनाथ महादेव के स्थान पर उनका निवास था। गाँव के सारे ब्राह्मण उत्सुक्तावश श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। उनको खबर मिली थी कि स्वामी सहजानंदजी को लोग भगवान मानते हैं। इस विषय पर उन्होंने श्रीहरि की परीक्षा करने का निश्चय किया। वे चरण छूकर कहने लगे, 'महाराज, हम तो महादेव शिवजी के उपासक हैं और शंकराचार्यजी के शिष्य हैं, आदि शंकराचार्यजी ने अपने समय में एक भैंसे के मुख से वेदपाठ करवाया था। यदि आप ऐसा कर दिखाएँ तो हम मानेंगे कि आप स्वयं भगवान हैं।'

श्रीहरि स्मित करते हुए कहने लगे, 'विप्रवर्य, आपको ज्ञात होगा कि पशु के मुख से मनुष्य की वाणी नहीं निकल सकती। किन्तु कोई जड़, मूर्ख तथा गूँगे ब्राह्मण को आप ले आईए। आप उसके मुख से वेदों की ऋचाएँ सुन पाएँगे।' ब्राह्मणों ने तुरंत एक आजन्म गूँगा, अनपढ़ और जड़ ब्राह्मणपुत्र हरिशंकर को ढूँढ़ निकाला। जब उसे लेकर महाराज के पास आए और महाराज ने उस पर दृष्टि डाली कि वह स्पष्ट उच्चार के साथ सुन्दर और समवेत स्वर में वेदों के मंत्रों का उद्घोष करने लगा। सभी उपस्थित ब्राह्मण आश्चर्यमुग्ध हो गए। उन्होंने श्रीहरि का आश्रय ग्रहण किया।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1865 के प्रसंग दिये गये हैं।

इतने सारे ब्राह्मण समाज को एक साथ वर्तमान धारण करवाने की भी एक समस्या पैदा हो गई। प्रतिदिन ब्राह्मणों की भीड़ बढ़ती जाती थी। अब श्रीहरि ने एक नया उपाय सोचा। वे सेवकों के पास बड़ा जलपात्र तैयार रखवाते और सारे गाँव के घर-घर जाकर आंगन में पानी छिड़कते और कहते, 'जिसके घर इस पानी के छींटे पड़ गए, उस घर के सभी व्यक्तियों को वर्तमान मिल गया है।' इस प्रकार उमरेठ में सत्संगवृद्धि करके श्रीहरि वरताल पधारे।

संस्कृत पढ़ने की आज्ञा

श्रीहरि के परमहंस वृंद में अनेक कवि थे, जो मर्मस्पर्शी काव्यग्रंथों की रचना करते थे। कई शिल्प स्थापत्य में निपुण थे तो कई लोक व्यवहार में आदर्श की स्थापना करनेवाले थे। परंतु संस्कृत के विद्वानों की कमी स्पष्टरूप से दिखाई देती थी।

वरिष्ठ संत स्वामी आत्मानंदजी महाराज की आज्ञा से विचरण कर रहे थे। वे कम शिक्षित होने पर भी आचरण और साधुता में वे उत्तम महापुरुष थे। भगवान की आज्ञा के पालन में हमेशा तत्पर होने के कारण लोग उन्हें 'वचन की मूर्ति' कहते थे।

विचरण करते हुए वे जामनगर पहुँचे। वहाँ नगरजनों को उपदेश देना प्रारम्भ किया। उस समय जामनगर को 'छोटी काशी' कहा जाता था। वहाँ संस्कृत के अनेक विद्वान ब्राह्मण स्वामी आत्मानंदजी का नाम सुनकर उनके साथ शास्त्र-चर्चा करने के लिए आ पहुँचे।

उन्होंने स्वामी से पूछा, 'आपका स्वरूप क्या है?'

आत्मानन्द स्वामी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'गुरु का वचन।'

पण्डित लोग समझे कि यह संत हमारे प्रश्न को ठीक तरह समझ नहीं पाए। उन्होंने टोकते हुए अपना प्रश्न दोहराया और 'हम पूछते हैं कि आपका स्वरूप क्या है?' आत्मानन्द स्वामी ने वही उत्तर दिया, 'समस्त शास्त्रों का साररूप गुरु का वचन ही मेरा स्वरूप है।'

विद्वानों ने यह सुनकर उनका उपहास उड़ाया और अपमान करते हुए आपस में कहने लगे, 'यह प्रजा को क्या उपदेश देगा? यह तो मूर्ख और जड़ लगता है।'

जब जेतलपुर में यज्ञोत्सव के लिए पधारे श्रीहरि को इस घटना का पता चला तो उन्होंने निर्णय ले लिया कि छोटे-बड़े अपने सभी संतों को प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के विद्वान बनाकर विद्वत्त वर्ग को सत्संग की महिमा से अवगत कराना अनिवार्य है। उन्होंने 51 वर्षीय मुक्तानन्द स्वामी को भी संस्कृत-अध्ययन की आज्ञा दी। स्वामी नित्यानन्दजी, स्वामी गोपालानन्दजी स्वामी शुकानन्दजी, स्वामी शतानन्दजी, स्वामी भगवदानन्दजी, स्वामी वासुदेवानन्दजी, स्वामी निष्कामानन्द ब्रह्मचारी आदि संतों तथा सद्गुरुओं को संस्कृत में प्रवीणता प्राप्त करने की प्रेरणा दी। विशेष अध्ययन के लिए उन्होंने कुछ साधुओं को सूरत भेजा। संस्कृत में विद्वान होकर लौटनेवाले संतों का सम्मान करना श्रीहरि कभी नहीं चूकते। उनको प्रोत्साहित करते, उनके अध्ययन की छानबीन करते और आवश्यक वस्तु प्रसादी के रूप में देकर उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते।

उनके ऐसे प्रोत्साहन के फलस्वरूप गीता, उपनिषदों, वेदान्तसूत्रों, श्रीमद्भागवत, शांडिल्य सूत्र आदि ग्रंथों पर परमहंसों द्वारा मौलिक भाष्यों की रचना हुई। सत्संगिजीवन, हरिवाक्यसुधासिन्धुः, सत्संगिभूषण, हरिलीलाकल्पतरुः, श्रीहरिदिग्विजयः जैसे महान संस्कृत ग्रंथों की रचना हुई।

भारतीय भक्ति सम्प्रदायों में संगीत का स्थान अनन्य है। श्रीहरि ने अच्छे संगीतज्ञों की कमी दूर करने के लिए परमहंसों को शास्त्रीय संगीत में विशारद करने का निर्णय किया। कई परमहंस अच्छे गायक एवं अच्छे कवि थे। परंतु शास्त्रीय संगीत में पारंगत होने के लिए उन्होंने प्रेमानन्द स्वामी, मुक्तानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी, भूमानन्द स्वामी, देवानन्द स्वामी आदि को न केवल संगीत सीखने की आज्ञा की, अपितु संगीत की शास्त्रीय परंपरा में पारंगत होने के लिए भी आदेश दिया। गायन उपरान्त सितार, सरोद, सारंगी, तबला आदि वाद्ययंत्रों में परमहंस प्रवीण होने लगे। आज सम्प्रदाय में विविध रागरागिनियों में तैयार किये गये हज़ारों पद विद्यमान हैं। तथा उनके द्वारा सुर, राग, ताल और लय के समन्वय से सुसज्जित ऐसे हज़ारों भक्तिगीत आज भी उपलब्ध हैं। महाराज के संगीततज्ञ परमहंस अपने समय के उत्तम गायक एवं सम्मान्य कवि माने जाते थे।

जेतलपुर में हिंसामुक्त यज्ञ

उन दिनों यज्ञों में हिंसा की परंपरा अपने चरम पर थी। श्रीहरि ने अहिंसक यज्ञ के द्वारा गुजरात में एक महान क्रांति का अभियान चलाया था। जेतलपुर में अठारह दिन तक महारुद्र का प्रारंभ वे मकरसंक्रांति के आठ दिन पहले प्रारंभ कर रहे थे। इस यज्ञोत्सव में उनकी महेच्छा थी कि ब्राह्मणों की चौरासी⁶ (ब्रह्मभोज) करके करीब एक लाख ब्राह्मणों को निमंत्रित करना। इस ब्रह्मभोज में पाँच सौ मन घी, सौ बैलगाड़ियाँ भरकर गुड़ तथा बड़े सैंकड़ों मन आटे का उपयोग किया जानेवाला था। श्रीहरि ने प्रत्येक घर में गेहूँ पीसने के लिए सामूहिक सेवा यज्ञ का आयोजन किया। घर-घर से महिलाएँ गेहूँ पीसकर आटे का ढेर लगाने लगीं।

इस अवसर पर शास्त्रार्थ द्वारा उन्होंने हिंसामुक्त यज्ञ का प्रतिपादन किया तथा वेदमंत्रों के विपरीत अर्थों को दूर करके उनके सत्यार्थ को प्रकाशित किया। पवित्र एवं विद्वान ब्राह्मणों के द्वारा अठारह दिनों का महारुद्र सफलतापूर्वक संपन्न हुआ, यह देखकर द्वेषी ब्राह्मणों के दिल दहलने लगे। उन्होंने यज्ञ में विघ्न डालने का उपक्रम तीव्रतापूर्वक जारी किया। घी के कई कूंडे तालाब में प्रवाहित कर दिये, लड्डू का प्रसाद तालाब में फेंक दिया। परंतु यह कार्य स्वयं भगवान का था, इसलिए किसी द्वेषी की एक न चली। उत्सव पूर्ण सफलता से संपन्न हुआ। श्रीहरि ने उपस्थित ब्राह्मणों को स्वर्ण दक्षिणा दीं।

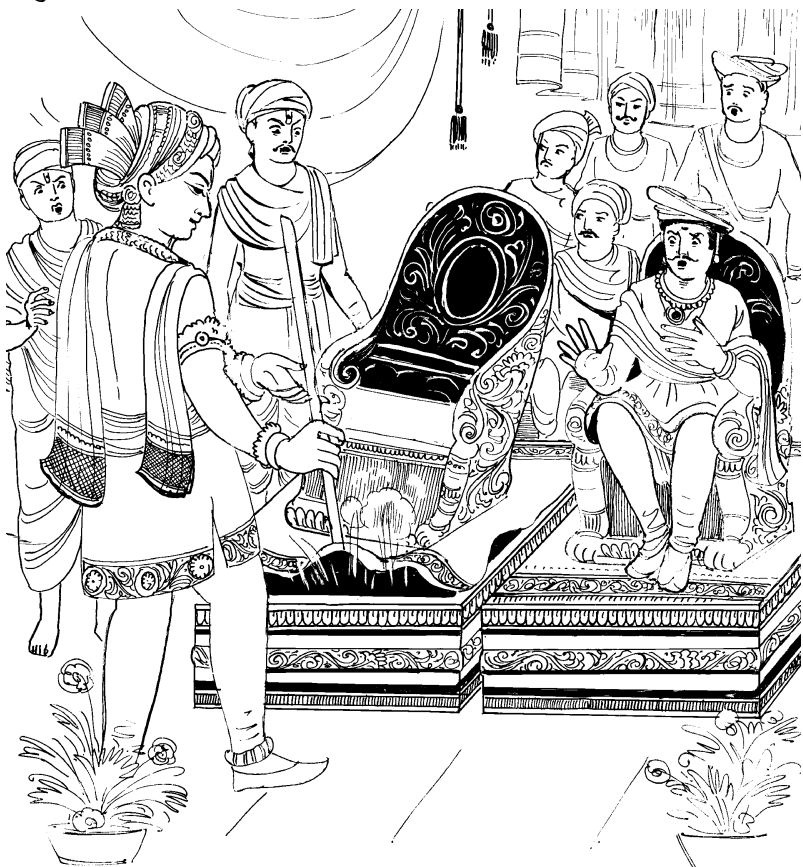
द्वेषी ब्राह्मण एवं विरुद्ध मतपंथी लोग निराश हुए। महाराज यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद अहमदाबाद पधारे।

यहाँ का मराठा सूबेदार सेलुकर कच्चे कान का था। द्वेषी ब्राह्मणों, तथा विरोधी मतपंथियों ने उसके पिता की मृत्यु को माध्यम बनाकर सूबेदार को बहुत बहकाया, 'देखिए जी, सहजानन्दजी तो शूद्र जाति के हैं, उनको यज्ञ का अधिकार कैसा? जिस यज्ञ में पशु-बलि नहीं दी जाती, उस यज्ञ की अधिष्ठात्री देवी हमेशा कोपायमान होती हैं। सहजानंदजी ने ऐसा अवैदिक यज्ञ जानबूझ कर किया है, ताकि आपके पिता की असमय

6. ब्राह्मणों की सभी उपजाति के

मृत्यु हो। यदि ऐसा अधर्म चलने देंगे तो आपकी पेशवाई का सर्वनाश हो जाएगा।' सेलुकर यह सुनते ही आगबबूला हो गया। उसने श्रीहरि की हत्या का षड्यंत्र रचा। भद्र के किले में उसने श्रीहरि को अकेले उपस्थित होने के लिए निमंत्रित किया। एक विशाल टंकी के उपर खपाचियाँ बाँधकर उसने छोटा-सा सिंहासन तैयार रखवाया। किन्तु टंकी में कड़कड़ाता गर्म तेल भरकर उस तरह रखा गया कि किसी को भी षड्यंत्र का अंदाजा न लगे।

श्रीहरि भद्र के किले में पधारे तब सिपाहियों ने संतों को महल के बहार ही ठहरने का आदेश दे दिया। केवल श्रीहरि को ही भीतर जाने की अनुमति दी, लेकिन दण्डी स्वामी देवानन्दजी तो उसकी एक भी



माननेवालों में नहीं थे। वे उसे धक्का लगाकर श्रीहरि के साथ भीतर जा पहुँचे।

अन्तर्यामी श्रीहरि के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं था। सूबेदार ने दिखावटी प्रेमादर के साथ श्रीहरि को उस नकली सिंहासन पर बिराजमान होने के लिए बिनती की। किन्तु महाराज ने उसे नकारते हुए कहा, 'सूबेदार, हम तो त्यागी हैं, ऐसे राज-सिंहासन पर बैठना हमारे लिए उचित नहीं है। ऐसा आसन तो आपको ही शोभा देगा।' इतना कहकर श्रीहरि ने अपनी छड़ी को उस सिंहासन के नीचे रखकर जोर से दबा दी। पल-दो पल में तो सिंहासन टेढ़ा होकर गद्दी-तकिये के साथ उबलते तेल की टंकी में जा गिरा। तेल की गर्म बूंदे बाहर की ओर छिटकने लगीं। सूबेदार के कपट का भरे दरबार में पर्दाफाश हो गया।

स्वामी देवानन्दजी ऐसा धोखा देखकर क्रोध के मारे कापने लगे। वे जैसे ही शाप देने के लिए तैयार हुए कि महाराज ने उन्हें रोककर बड़े शांतभाव से कहा, 'हमें दंड देने का अधिकार नहीं है। भगवान ऐसा अन्याय सहन नहीं करेंगे।'

सूबेदार निष्फल क्रोध से लाल-पीला होने लगा। मिथ्या अभिमान से उसकी वाणी में खोखलापन झलक रहा था फिर भी वह तुनककर बोला, 'अभी, इसी समय आप इड़रिया दरवाजे से शहर से बाहर निकल जायें, इस शहर में दुबारा कभी मत आना।'

श्रीहरि ने स्मित के साथ पूछ लिया, 'हमें कब तक नहीं आना है।'

'जब तक हमारा-पेशवा का राज्य है।' विवेकभ्रष्ट सूबेदार ने गर्जना की और बहुत कम समय में सन् 1816 (संवत् 1874) में गुजरात में पेशवाई समाप्त हुई। अहमदाबाद पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

माणकी का सवार

गाँव-गाँव विचरण करने के लिए श्रीहरि के पास अच्छी घोड़ी होनी चाहिए। ऐसा सोचकर कुछ काठी हरिभक्त ऐसा अनुपम अश्व खोजने की तैयारी कर रहे थे। कुछ दिनों में महाराज के सुनने में आया था कि मीणापर गाँव में माणकी नाम से एक उत्तम नस्ल की एक बछेड़ी है। घोड़ों की जाति



में माणकी श्रेष्ठ जाति कहलाती है। महाराज ने सुराखाचर से पूछा, 'क्या आप मीणापुर के दरबार से परिचित है?'

उन्होंने कहा, 'जी, महाराज! मैं भेंसजाल गाँव के कायाजी के साथ उनके अच्छे सम्बंध हैं।'

'तब तो हमें भेंसजाल जाना है।'

श्रीहरि सुराखाचर को साथ लेकर भेंसजाल पधारे। उस गाँव के बाहर एक हनुमानजी के मन्दिर में उन्होंने निवास किया। एक लड़के के द्वारा कायाजी को कहलवाया कि आप से मिलने के लिए भगवान स्वामिनारायण अपने भक्त ठाकोर सुराखाचर को लेकर आपके गाँव की सीमा पर पधारे हैं और आपको बुला रहे हैं। संदेश सुनते ही कायाजी दोनों को निमंत्रित करने के लिए घोड़ी पर सवार होकर गाँव की सीमा पर आ पहुँचे। श्रीहरि के दर्शन से ही उनके हाथों में रहा हुक्का छूट गया। श्रीहरि का चरणस्पर्श करके उन्होंने कहा: 'प्रभु! दरबार भुवन में पधारिए।' श्रीहरि ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया और सुराखाचर ने अपने आगमन का हेतु भी दिखा दिया, 'कायाजी, आपकी रियासत के गाँव मीणापर में आपके सजन मनुभा के पास माणकी की बछेड़ी है, वह हम श्रीहरि के लिए लेना चाहते हैं। पर मनुभा वैसे ही हमारी बात नहीं मानेंगे। अतः आपको उन्हें कहना पड़ेगा।' कायाजी इस बात पर तुरंत सहयोगी हुए। उन्होंने मीणापर गाँव में संदेश भिजवाया।

परंतु स्वामिनारायण भगवान कायाजी के साथ माणकी को लेने के लिए आ रहे हैं, ऐसी खबर मिलते ही वे दरबारों के साथ गाँव छोड़कर कहीं निकल चुके।

जब श्रीहरि मीणापर पधारे तब कोई पुरुष घर पर नहीं मिला। पूछताछ करने पर महिलाओं ने कहा कि 'सभी पुरुष दूसरे गाँव गये हैं, किन्तु आपको उनका काम क्या था?'

कायाजी ने श्रीहरि का परिचय देकर कहा, 'ये हमारे भगवान हैं। इनके लिए हम माणकी घोड़ी लेने के लिए आए हैं।'

'अरे, इतनी सी बात में आदमी लोगों का क्या काम है? वह तो मैं ही दे दूँगी।' मनुभा की पत्नी ने कहा, फिर अपनी दस वर्षीय बेटी से कहा: 'बेटी, जाकर माणकी की बछेड़ी ले आ।' वह बछेड़ी को ले आई और

माणकी की डोर महाराज के हाथ में थमा दी।

‘एक थाली लाईए।’ जब थाली आ गई, महाराज ने उसमें 60 रूपये रखवाए। और उस छोटी-सी बालिका से पूछने लगे, ‘बेटी! तुम्हारा नाम क्या है?’ ‘मोंघीबा।’ उसने कहा। महाराज ने कहा, ‘तुम्हें बहुत मोंघा (महंगा) सुख मिलेगा। तुम तो महारानी बनोगी।’⁷ महाराज उसे आशीर्वाद देकर माणकी बछेड़ी⁸ के साथ भेंसजाल लौट आये। वहाँ से जासका होते हुए करमड़ एवं जेतलपुर पधारे।

7. श्रीहरि के आशीर्वाद से मोंघीबा का विवाह गोंडल नरेश संग्रामसिंहजी के साथ हुआ, वे महारानी बनीं। गोंडल में उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी के अग्निसंस्कार के स्थल पर अक्षर देहरी का निर्माण करवाया जो आज भी उनकी सेवा की गाथा कह रही है। कायाजी दरबार की पाँचवी पीढ़ी में हुए हरुभा बापु से यह इतिहास प्राप्त हुआ है। इसलिए उपरोक्त घटना अन्य किंवदंती से परे एक ऐतिहासिक सत्य है।

8. माणकी घोड़ी के विषय में दूसरा उल्लेख यह है कि एक गाँव में भीम पंड्या रहते थे। श्रीहरि ने अपने चरणों में सोलह चिह्न दिखाकर उनके भाई को सत्संगी बनाया था। उन्होंने मीणापर गाँव के गरासिया मनुभा को दो हजार रुपए सूद पर उधार दिए थे। वे वायदे करने पर भी पैसे नहीं दे पाते थे। समय बीत रहा था। सूद के साथ अब तीन हजार रुपए लेने थे। भीम पंड्या ने एकबार मन ही मन सोचा कि मुझे मेरे रूपये वैसे तो नहीं मिलेंगे परंतु यदि मिल जाएँ तो मैं श्रीहरि के चरणों में अर्पण कर दूँगा। ऐसा संकल्प लेकर वे मीणापर जा पहुँचे। परंतु मनुभा ने कहा, ‘मैं इस समय रुपए नहीं दे सकता।’

अब भीम पंड्या ने कहा, ‘ऐसे वादे अब नहीं चलनेवाले। मेरा धैर्य खत्म हो चूका है। आज मैं बिना पैसे के नहीं लौटूँगा। यदि रुपए न हों, तो सामने बंधी हुई घोड़ी मुझे दे दो। मैं मानूँगा कि मुझे मेरे पैसे मिल चुके हैं। मनुभा ने अनिच्छा होते हुए भी घोड़ी दे दी, और लिखवा दिया कि मुझे मेरे पैसे मिल चुके हैं। भीम पंड्या पैदल ही घोड़ी को लेकर लोया की ओर चल दिये, वहाँ महाराज बिराजमान थे। श्रीहरि ने पंड्याजी के साथ माणकी को देखा तो कहने लगे, ‘सुराखाचर देखो, हमारा गरुड़ आ रहा है।’

गरुड़ के अवतार समान माणकी घोड़ी को देखकर वे भी बहुत प्रसन्न हुए? पंड्याजी ने कहा, ‘प्रभु, यह घोड़ी मैं आपके चरणों में कृष्णार्पण कर रहा हूँ। जो आपकी दया के सिवा मिलनेवाली नहीं थी। आप इसे स्वीकार करें।’

श्रीहरि ने फिर एकबार सुराखाचर की ओर देखते हुए कहा, ‘यह हमारा गरुड़, यह हमारी माणकी। महाराज ने घोड़ी की रास हाथ ली और तब से उनके शीघ्रवेगी विचरण का आरंभ हुआ।

लोलंगर का उपद्रव

श्रीहरि पाँच-सौ काठी हरिभक्तों और तीन सौ संतों का संघ लेकर सौराष्ट्र से गुजरात की ओर निकले। मार्ग में खोखरा महेमदाबाद में लोलंगर बाबा का स्थान था। वह वैरागी कमर पर लोहे की जंजीर बाँधकर घूमता रहता था। इसलिए लोग उसे 'लोहलंगर' के नाम से बुलाते थे। उसके चेलों ने संतों को देखा कि ये सब निःशस्त्र हैं, तो उसके एक हजार चेले श्रीहरि के संतों पर वार करने के लिए टूट पड़े।

निरुपाय होकर संतों की रक्षा के लिए श्रीहरि ने शूरवीर काठी हरिभक्तों को भेजा। पार्षद भगुजी ने एक ही वार में उन बाबाओं के मुखिया को मार दिया। जैसे ही काठियों ने मामला सम्भाला सभी वैरागी भाग खड़े



हुए। काठियों की शस्त्रविद्या के सामने कोई नहीं टिक पाए। चार मुखिए मार दिए गये, बाकी सब जान बचाकर भाग निकले। श्रीहरि ने घायल संतों के इलाज के लिए उन्हें सूरत भेज दिया तथा स्वयं कुछ संतों-हरिभक्तों के साथ गाँव वहेलाल पधारे।

जगजीवन का अन्त

जैसे गुजरात में अहिंसक यज्ञों का प्रस्थापन करके श्रीहरि ने हिंसा पर रोक लगाई। वैसा ही प्रचार कच्छ की भूमि पर करने के लिए वे सन् 1804 से सन् 1812 तक (संवत् 1860 से संवत् 1868 तक) अनेकबार कच्छ पधारे थे।

कच्छ में वांढिया, आधोई, भचाउ, मानकूवा, मेघपुर, अंजार आदि गाँवों को पावन करके भुज के दीवान सुन्दरजी सुतार के घर पधारे। विचरण में घाव होने के कारण श्रीहरि के दायें चरण का अँगूठा पक चुका था। पूरे पैर पर सूजन दिख रही थी। अत्यधिक पीड़ा के कारण वे पहली मंजिल से नीचे नहीं आते थे। परंतु श्रीहरि के आगमन की खबर भुज के दूसरे दीवान और श्रीहरि के द्वेषी जगजीवन मेहता को हो गई थी। उसे मालूम हुआ कि सुन्दरजी भी बीमार है तो वह कुशल पूछने के लिए उनके घर आ पहुँचा।

जब से श्रीहरि ने उसके हिंसक यज्ञ को रोककर द्वेषी ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था, तब से जगजीवन श्रीहरि के प्रति द्वेष की अग्नि में जल रहा था। अवसर पाकर वह महाराज की निन्दा करने से नहीं चूकता था। श्रीहरि के अपमान के लिए उसने अपने बैल का नाम सहजानन्द रखा था। परंतु उसकी पत्नी प्रभावती श्रीहरि की परम शिष्या थी। जगजीवन उस कारण भी प्रतिशोध की ज्वाला में जलता रहता था।

उसने आकर सुन्दरजी के हालचाल पूछे, फिर तुरंत पूछा, 'आजकल सहजानन्द कहाँ है?' सुन्दरजी संकोच के कारण बोल नहीं सकते थे कि अचानक श्रीहरि सीढ़ियाँ उतरकर जगजीवन के सामने आ पहुँचे। 'यहीं हूँ मैं।' जगजीवन इस अप्रत्याशित घटना से अवाक् रह गया। फिर स्वयं को संभालते हुए कटाक्ष किया, 'ओह, तो सहजानंद, लोग कहते हैं, तुम परमेश्वर हो? क्या यह सच है? क्या तुम ही राधा और लक्ष्मी के पति हो?'

‘जी हाँ, मैं ही सच्चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम हूँ।’ श्रीहरि का स्वर अत्यंत वेधक था। उन्होंने आगे कहा, ‘मैं ही राधा और लक्ष्मी का पति हूँ। शास्त्रों में जहाँ-जहाँ भगवान की महिमा गाई गई है, सर्वत्र मेरी ही महिमा का विस्तार हुआ है।’ महाराज का उत्तर सुनकर जगजीवन तिलमिलाने लगा। क्रोध के मारे उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाया। वहाँ पैर पटकता हुआ घर के बाहर निकल गया।

जब भूज में श्रीहरि कुछ दिनों के लिए गंगाराम मल्ल के घर निवास कर रहे थे, तब मौका देखकर जगजीवन ने श्रीहरि का कत्ल करने के लिए कुछ आरबों की एक टुकड़ी मल्ल के घर भेज दी। परंतु उसने दीवान तथा मुख्य सेनाध्यक्ष फतेहमहमद की संमति नहीं ली थी। उस ओर आरब सैनिक गंगाराम के घर पर पहुँचे, तब वे अपने साथियों के साथ श्रीहरि की रक्षा के लिए आखिरी जंग खेलने को तैयार बैठे थे, परंतु महाराज ने उन्हें रोककर कहा, ‘गंगाराम, जगजीवन के उकसाने में मत आना। कुछ अनिष्ट हो सकता है। हमने तुम्हारे भाई जो फतेहमहमद के मित्र हैं, उसे फतेहमहमद को बुलाने के लिए भेजे हैं। कुछ देर के लिए आपको कुछ भी नहीं करना है।’ जब फतेहमहमद को पूरी बात का पता चला, वह क्रोधित होकर बोल उठा, ‘मैं स्वामिनारायण को पहचानता हूँ। उनकी आँखों में मैंने खुदाई नूर देखा है। जगजीवन किसके हुक्म से यह सब कर रहा है? उसकी यह मजाल कि मुझसे बिना पूछे सैनिकों को एक गृहस्थ के घर भेज रहा है?’ उसने अपने आदमियों को भेजकर सैनिकों को वापस बुला लिया।

समय की तराह बदलने लगी। जगजीवन अपने ही करतूतों के कारण राजनीतिक कलह का बुरी तरह शिकार हुआ। एक दिन भरी बाज़ार में उसकी निर्मम हत्या हो गई। उसके दुष्कृत्यों ने उसे करुण अंजाम तक पहुँचा दिया। भगवान के द्रोह का फल हमेशा भुगतना पड़ता है।

[9]

सबका कल्याण करना है

संध्या के समय पाँच-सात संत तथा हरिभक्तों के साथ श्रीहरि घेला नदी में स्नान करने जा रहे थे। मार्ग में एक कुनबी किसान अपनी धुन में इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1866 के प्रसंग दिए गए हैं।

खेत की ओर बड़ी शीघ्रता से जा रहा था। अचानक उसका कंधा महाराज के कंधे से टकरा गया। वह तो बिना सोचे या क्षमा-याचना किये आगे चलता बना, परन्तु महाराज के पीछे-पीछे मूलजी ब्रह्मचारी आ रहे थे। उन्होंने उस किसान को रोका और पूछा, 'अरे! तुम अंधे हो क्या? देखते नहीं? हमारे भगवान से कितना जोर से टकराये!'

'अरे! महाराज,' कुनबी किसान ने कहा, 'मान लो मैं अंधा ही हूँ, पर क्या तुम्हारे भगवान भी अंधे हैं? उन्होंने मुझे क्यों नहीं देखा? रामावतार में हमें छोड़ दिया, कृष्णावतार में हमको निकालकर अलग कर दिया। अरे, उन बन्दरों और ग्वालों तक का कल्याण किया, परन्तु हम लोगों को तो वे एकदम भूल ही गये!' महाराज यह संवाद सुनकर मुस्कुराने लगे। उन्होंने सोच लिया कि यह बेचारा क्या जानेगा? क्योंकि इस बार तो हमें किसी को नहीं छोड़ना है, सभी का उद्धार करना, हमारा एक ही लक्ष्य है।

महाराज ने कुनबी, काठी, दर्जी, बढ़ई, लोहार, मेमार, मोची, बाघरी, हरिजन, भंगी, तेली, कसेरा, सुनार, माली, सिलावट आदि अनेक प्रकार के निम्नस्तरीय तथा उपेक्षित लोगों का उद्धार किया। वास्तव में वे जाति-पाँति का भेद-भाव के बिना गाँव-गाँव जाकर हर प्रकार के लोगों में पवित्र संस्कारों का सिंचन करने लगे। उन लोगों का जीवन विशुद्ध, निर्व्यसनी, निर्भय, नीतिपूर्ण, पवित्र एवं चरित्रवान बनाने के लिए श्रीहरि स्वयं उनका सम्पर्क करने लगे। कीचड़ से कमल की तरह उन्होंने उत्तम भक्त तैयार किये। उनके उत्तम भक्तों में खोजा, वोरा, पठान, मुसलमान तथा पारसी जाति के लोग भी शामिल हुए थे। जो भी उनके आश्रित हो गए, उनके जीवन उन्होंने शुद्ध और पवित्र कर दिए।

एकबार गढ़पुर में श्रीहरि अक्षर ओरडी में पलंग पर बिराजमान थे कि उन्होंने मूलजी सेठ को देखकर पूछा, 'सेठजी, आप कितना गणित जानते हो?'

'महाराज! व्यवहार में जितना आवश्यक है, उतना तो जानता ही हूँ।'

'तो आप कहाँ तक गिनती कर सकते हो?'

'महाराज!' मूलजी सेठ ने कहा, 'एक के आगे सत्रह शून्य लगाए जाएँ, वहाँ तक की गिनती तो मैं गिन सकता हूँ।'

‘तो सुनिए,’ महाराज ने कहा, ‘हमें तो इससे भी अधिक, अनन्त जीवों का कल्याण करना है। हमारे साधु अथवा हमारे हरिभक्त के सम्पर्क में आनेवालों का, उसका पानी पीनेवाले या उनको पिलानेवालों का, उसको भोजन देनेवाले या उनसे भोजन प्राप्त करनेवाले, सभी का कल्याण करना है, उन सबको इस सत्संग में पुनर्जन्म दिलाकर उनका आत्यन्तिक कल्याण करना है।’

श्रीहरि की ऐसी सर्वजनहिताय भावना और वाणी देखकर सारे साधु एवं हरिभक्त आश्चर्यचकित रह गये। इससे महाराज का इस पृथ्वी पर प्रकट होने का हेतु सब अपने आप समझ गये।

डभाण का यज्ञ

गुजरात के खेड़ा जिले तक अंग्रेजों का शासन प्रारंभ हो गया था। श्रीहरि की मर्जी जानकर संतों ने अंग्रेज अधिकारियों से मिलकर इस जिले के डभाण गाँव में महान यज्ञोत्सव का आयोजन किया। अंग्रेज अधिकारियों ने इस उत्सव के लिए न केवल अनुमति दी, परंतु पूरी सहायता भी प्रदान की।

अठारह दिन का यज्ञोत्सव संवत् 1867 के पौष महीने में आयोजित हुआ। हज़ारों ब्राह्मणों को निमंत्रित करके श्रीहरि ने नागरिकों में एकता की भावना बढ़ाने का अनन्य प्रयास किया। परंतु द्वेषी ब्राह्मण इस उत्सव में भी विघ्न डालने पर तुले थे। घी के घड़े तालाब में उंडेलकर वे कोहराम मचाने लगे कि विधि और रसोई के लिए घी नहीं रहा है। श्रीहरि उनके इरादों को परखकर चारों ओर काठी हरिभक्तों पर का पहरा लगवा दिया। कोठार, यज्ञमण्डप आदि स्थानों पर देखभाल के लिए सत्संगी ब्राह्मणों की नियुक्ति कर दी। घी के खाली पड़े पात्रों के सामने दृष्टि करके आदेश दिया कि, ‘इन घड़ों से घी निकालते रहना। घी की कमी कभी नहीं पड़ेगी।’ सत्संगी ब्राह्मण आवश्यकता के अनुसार घी निकालते ही जा रहे थे, लेकिन घी घटने का नाम नहीं लेता था। सभी चकित होकर श्रीहरि की अपार महिमा समझने लगते।

उन दिनों चारों ओर श्रीहरि की माणकी घोड़ी की चर्चा सुनाई दे रही थी। इस तेजस्वी और शीघ्रवेगी घोड़ी के विषय में घातकी लुटेरा जोबन पगी

को मालूम हुआ तो उसने सोचा कि स्वामिनारायण की घोड़ी क्यों न चुरा ली जाए? वह तीन दिन-तीन रात तक अश्वशाला की ओर जांच पड़ताल और प्रयास करता रहा। परंतु प्रतिदिन एक ओर श्रीहरि को गहरी नींद में सोये हुए देखता तो दूसरी ओर अश्वशाला के प्रत्येक घोड़े के पास घोड़े की सेवा करते हुए देखता। जब भीतर में पश्चात्ताप भरकर उसने श्रीहरि के समक्ष शरणागति स्वीकार की तब पूरे गुजरात प्रदेश में आश्चर्य पूर्ण तहलका मच गया। लुटेरा जोबन अब हाथ में बंदूक-भाले अथवा तलवार के बदले माला घूमने लगा।

इस यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर श्रीहरि ने भादरा गाँव में अवतार धारण करनेवाले अक्षरधाम मूलजी शर्मा को दीक्षा दी। वे आज स्वामी गुणातीतानन्द बने। इस प्रसंग पर श्रीहरि ने कहा था, 'ये महान संत हमारे निवास के लिए अक्षरधाम अर्थात् अनादि मूल अक्षरब्रह्म हैं। वे हमारी मूर्ति को निरंतर देखते हैं और हमारे उत्तम भक्त हैं।' दीक्षा-उत्सव के बाद वैजा रावल ने श्रीहरि के समक्ष राग-रागिनियों में अनेक भक्तिपद प्रस्तुत किए।

तत्पश्चात् अश्व पर सवार होकर श्रीहरि स्वर्णरसित वस्त्राभूषण धारण करके शोभायात्रा पर निकले।

संत कवि निष्कुलानन्दजी उक्त अवसर पर पद्य रचते हुए गाया कि :

वर निर्गुण रे, थया ब्रह्मरूप, आवे छे अनुप, सुरमुनि भूप

शोभे लाल सुरवाल जरी जामा शाल, कण्ठे मोतीमाल, भरेला भवानी रे लोल...

‘हम पर दया रखिएगा’

अब श्रीहरि का विचरण कच्छ-भुज की ओर प्रारंभ हुआ। पुष्पदोलोत्सव में पूरे गुजरात से हजारों भक्त श्रीहरि के सत्संग के लिए उमड़ पड़े। कुछ दिन महाराज के पास रहकर बिदा लेते हुए उन्होंने महाराज की पूजा की। फिर आशीर्वाद मांगते हुए कहा, 'महाराज, हम पर दया रखिएगा।' महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उसी बात को दोहराया, 'आप लोग भी मुझ पर दया रखिएगा।'

सभी हरिभक्त बिना कुछ समझे श्रीहरि के चरण छूकर घर की ओर रवाना हुए। अचानक उनके मन में बिजली की भाँति एक विचार कौंधा।

‘महाराज ने हमें ऐसा क्यों कहा कि ‘आप लोग भी हम पर दया रखना?’ सभी एक-दूसरे को इस विषय पर पूछने लगे, परंतु कोई इस बात का रहस्य नहीं जान पाए। आखिर वे गाँव की सीमा से श्रीहरि के पास वापस लौटे और चरण छूकर पूछने लगे, ‘प्रभु, आपने हमें दया रखने के लिए कहा वह तो बिलकुल ही उल्टी गंगा है। आप ऐसा क्यों कहने लगे?’

स्मित करते हुए श्रीहरि कहने लगे, ‘सुनिए, साढ़े तीन हाथ की तुम्हारी देह में छोटी-सी जगह में हृदयाकाश है। वहाँ मैं साक्षी रूप से रहता हूँ। आप सभी अपना हृदय स्वच्छ रखना और सावधान रहना कि वहाँ संसार की गंदगी का प्रवेश न हो। मैं तुम्हारे भीतर रहकर तुम्हारी सभी क्रियाओं की निगरानी रखता हूँ। इसलिए विशुद्ध आचरण करना। यदि आपका हृदय शुद्ध होगा तो मैं वहाँ बड़े आनंदपूर्वक रह पाऊँगा। इसलिए आप अच्छे संकल्प, अच्छी वाणी, और अच्छा आचरण करने की दया हमेशा मुझ पर करते रहना।’ हरिभक्तों को आज नई शिक्षा प्राप्त हुई। तेजस्वी को इशारा काफी है। उन्होंने श्रीहरि को विश्वास दिलाया कि, वे आचार, उच्चार और विचार विशुद्ध रखेंगे और उनकी आज्ञानुसार चलेंगे। महाराज उन पर प्रसन्न हुए। वे महाराज के चरण छूकर, उनकी आज्ञा के अनुसार ही व्यवहार करने की दृढ़ता बाँधकर घर की ओर रवाना हुए।

वास्तव में वे कम शब्दों में भी महान प्रेरणा देकर हरिभक्तों के आचार एवं व्यवहार को परिशुद्ध करते थे।

कृपासाध्य श्रीजीमहाराज

अंजार के हरभमजी सुतार कुछ हरिभक्तों के साथ 28 कोस चलकर महाराज के पास आए थे। महाराज के चरण छूकर उन्होंने जय स्वामिनारायण कहा। परंतु महाराज ने उनकी ओर देखा तक नहीं! वे अपना मुँह दूसरी ओर फेरकर बैठ गए। जय स्वामिनारायण तक नहीं कहा तथा हमेशा की आदत के अनुसार उनके कुशल समाचार भी नहीं पूछे। हरिभक्तों ने सोचा, ‘हम इतनी दूर से कई कठिनाइयाँ झेलकर, पन्द्रह दिन पैदल चलकर किसी तरह यहाँ पहुँचे और महाराज ने हमारे कुशल समाचार तक नहीं पूछे! उल्टा अपना मुँह भी फेर लिया, कारण क्या हो सकता है?’

हरिभक्तों ने पूछा, 'महाराज! हम लोगों पर दया कीजिए, हमारे कष्टों की ओर तो देखिए।'

महाराज ने कहा, 'आप सोचते हो कि आपने कष्ट उठाये? वास्तव में प्रकृति-पुरुष और अष्ट आवरणों से परे हमारा धाम है, वहाँ से एक लाख मन लोहे का गोला गिराने पर वह यहाँ आते हुए वायु के झोंकों से घिसता-पिसता एक रजकण के बराबर भी नहीं रहेगा। इतनी दूरी से हम करुणा करके केवल आप लोगों के कल्याण के लिए इस धरती पर आये हैं, यहाँ तुम्हारी तरह रहते हैं, तुम्हारी सेवा को स्वीकार करते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने हजारों, लाखों वर्ष तपश्चर्या की, फिर भी हम उनको दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। परंतु आप लोगों को दृष्टिगोचर हो रहे हैं, यह क्या हमारी कम कृपा है?' यह सुनकर सभी अपनी सारे कष्ट भूल गये और भूल समझकर श्रीहरि की क्षमा-याचना करने लगे।

तत्पश्चात् सभा में महाराज ने कहा, 'तुम्हारे कौन-से ऐसे साधन हैं कि हम प्रसन्न हो जाएँ और तुम्हारे साथ इस धरती पर रहें? इस समय तो हम केवल कृपा करके ही इस पृथ्वी पर पधारे हैं। पहले कई अवतार हो चुके हैं, उन्होंने अपने सम्पर्क में आनेवाले मुमुक्षु जीवों का ही कल्याण किया है। जबकि हम आज दैवी या आसुरी, मुमुक्षु या सामान्य सभी जीवों का बिना भेद किए कल्याण कर रहे हैं। हम किसी जीव अथवा किसीके स्वभाव की ओर नहीं देखते। केवल कृपा करके हम समानभाव से दर्शन, स्पर्शन, प्रसाद, बातचीत, मिलन आदि के द्वारा अनन्त सुख दे रहे हैं। इस प्रकार हम तो कृपा-साध्य हैं। इसलिए परब्रह्म प्रकट होने पर साधनों तथा क्रियाओं का बल लेना उचित नहीं है।'

सभी श्रीहरि की वाणी का रहस्य समझ गये। उन्होंने कहा, 'महाराज! आपकी बात ठीक है। इस समय तो आपने अपरंपार करुणा की है। आपके अपरिमित प्रताप का हमें अनुभव है। हमें सर्वोपरि प्राप्ति हुई है, अतः आपको प्रसन्न करने के सिवा हमारा कोई लक्ष्य नहीं है। हे महाराज! हम तो अल्पज्ञ हैं, आप हमारी भूलों की ओर न देखें, हम लोग किसी भी प्रकार से आपको प्रसन्न रख सकें, ऐसी बुद्धि एवं ऐसा बल दीजिए।'

समदर्शी

श्रीहरि की समदर्शिता हर किसी के दिल को छू जाती थी। न वे ऊँच-नीच का भेद रखते थे, न धनवान-गरीब का। उनके लिए जैसी सगराम वाघरी की झोपड़ी थी, उसी प्रकार भावनगर या वड़ोदरा के महाराजाओं के महल थे। एकबार वे लोया गाँव में सभा में विराजमान थे। कथावार्ता के समय जाति से हरिजन गंगाबाई सत्संग के लिए आ पहुँची। महाराज की महिमा सुनकर उसने चुड़ा गाँव से पैदल चलकर यहाँ आने का कष्ट उठाया था।

इस सभा में चूड़ा गाँव की ही दो-तीन उच्च कुल की स्त्रियाँ कथा सुन रही थीं। जैसे ही गंगाबाई उनके निकट बैठने लगी कि वे नाक-मुँह सिकोड़कर उठने लगीं, श्रीहरि यह सब देख रहे थे। उन्होंने तुरंत कहा, 'आप गंगा को पास में बैठने क्यों नहीं देते?' परंतु वे स्त्रियाँ आपस में बड़बड़ाने लगीं। उन्होंने अपना मुँह फेर लिया। तब महाराज ने सुराखाचर की पत्नी से पूछा, 'आप लोगों की घुड़साल में या चरनी में जब कोई पशु मर जाता है, तब उसे उठाने के लिए कौन आता है?'

'वहाँ तो हरिजन ही आते हैं, महाराज।' उन्होंने कहा।

'तो घुड़साल, चरनी या घर में पशुओं के मर जाने पर आप जिनके घर आने पर मुँह नहीं बिगाड़ते तो यहाँ आप मुँह क्यों बिगाड़ती हैं? आप नहीं जानते परंतु मैं जानता हूँ कि गंगा तो मुमुक्षु जीव है। पूर्वजन्म में यह नागर ब्राह्मण थी, इसे अपनी उच्च जाति का बड़ा अभिमान था। वह नीच जाति के किसी भक्त का भी आदर नहीं करती थी। उसका तिरस्कार करती थी, इसलिए वह इस जन्म में हरिजन के घर पैदा हुई है। आप लोग भी यदि ऐसा भेदभाव रखोगे, तो अगले जन्म में आप वैसे ही निम्नवर्ग में पैदा होगी और इस सत्य को हमेशा के लिए लक्ष्य में रखें कि वर्णाश्रम का अभिमान रखनेवाले कभी साधुता के गुण सिद्ध नहीं कर सकते। इसलिए वर्णाश्रम का अभिमान कभी नहीं करना चाहिए।'

[10]

धर्म भक्ति के दर्शन

चातुर्मास के दिन थे। गढ़पुर में वासुदेवनारायण के मंदिर तथा

दादाखाचर के कमरे के बीच एक दीवार थी। बीच में एक द्वार था, वहाँ बैठकर श्रीहरि कथावार्ता का लाभ देते थे। वासुदेवनारायण के मंदिर में स्त्रियाँ बैठती थीं और दूसरे कमरे में संत-हरिभक्त।

एक दिन महाराज के आसन से प्रकाश पुंज निकला तथा पुरुषों की सभा में वह शीतल तेज फैल गया। पुरुषों को अन्तरिक्ष में खड़े धर्मदेव की मूर्ति दिखाई दी और स्त्रियों की सभा की ओर लाल शीतल तेज फैलता हुआ दिखाई दिया। उनको अन्तरिक्ष में भक्तिदेवी की मूर्ति के दर्शन हुए। बाद में सारा तेज श्रीहरि में समा गया। सभी को बहुत आश्चर्य हुआ।

श्रीहरि कहने लगे, 'आप जानते हैं कि मेरा स्वभाव यही था कि मैं चार घंटे से ज्यादा किसी एक स्थल पर रुकता नहीं था। परंतु आपकी भक्ति ने मुझे वश किया है। इसलिए आप लोगों को हमारे माता-पिता भक्ति और धर्म की मूर्तियों के दर्शन हुए। अब तो वे भी हमारे साथ यहीं निवास करेंगे।'

उसी दिन एक दूसरी घटना आकार ले रही थी कि हसनभाई कोठारी लाठी गाँव में कुछ काम के लिए गए हुए थे। वहाँ उन्हें एक शिल्पी मिला, जो बैलगाड़ियों में छब्बीस मूर्तियाँ भरकर कहीं जा रहा था। उन मूर्तियों को देखकर हसनभाई ने उससे कहा, 'आप हमारे साथ गढ़पुर चलें, यदि हमारे इष्टदेव को आपकी ये मूर्तियाँ पसन्द आ गईं, तो हम रख लेंगे।' शिल्पी तुरंत संमत हुआ। महाराज ने मूल्य देकर मूर्तियाँ खरीद ली। उनमें से दो मूर्तियाँ धर्म और भक्ति के असली स्वरूप से बिल्कुल मिलती-जुलती थीं।

श्रीहरि ने दो कमरों के बीच का द्वार बंद करवाकर वहाँ संवत् 1856 (सन् 1800) की श्रावण कृष्णा अष्टमी के दिन धर्म और भक्ति की मूर्तियों की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की।

शोभाराम की आँखें गईं

उन दिनों विरोधियों की द्वेष-बुद्धि शान्त नहीं हुई थी। वे महाराज तथा संतों के विषय में अफवाहें फैलाते रहते। कुछ लोग कहते कि हम शास्त्रों के प्रमाण देकर सिद्ध कर सकते हैं कि स्वामिनारायण भगवान नहीं हैं। तो कुछ लोग कहते कि स्वामिनारायण सम्प्रदाय वैदिक सम्प्रदाय नहीं है। परंतु इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1867 के प्रसंग दिये गये हैं।

उनके तर्क परमहंसों के तर्कों के सामने टिकते नहीं थे। फिर भी कुछ द्वेषी अपना द्वेष भूलना ही नहीं चाहते थे।

ऐसा एक ब्राह्मण गुजरात के छोटे से शहर वीसनगर में रहता था। उसका नाम था, शोभाराम। वह था तो विद्वान, पर महाराज एवं सम्प्रदाय का द्रोही था। एक दिन वह कुछ साथियों के साथ अपने घर में बैठकर सम्प्रदाय की निन्दा कर रहा था। एक सत्संगी बलदेवभाई उसी समय वहाँ से गुजरे, उनके कानों पर निन्दा के शब्द पड़ गए, तो उन्होंने कहा। 'शोभाराम! तुम मानो या न मानो परंतु इस धरती पर आज यदि कोई भगवान है, तो वे हैं भगवान स्वामिनारायण! उनका ऐश्वर्य और सामर्थ्य अपार है, उनकी कृपा से लोगों को समाधि लग जाती हैं, घर-घर चमत्कार दिखाते हैं और हिन्दू धर्म की शुद्ध परंपरा संचालित कर रहे हैं। इसलिए कृपया उनका द्रोह छोड़कर आप उनके आश्रित हो जाओ। वे तुम्हारा मोक्ष करा देंगे।'

लेकिन शोभाराम अपनी विद्वत्ता के अहंकार में चिल्लाने लगा कि, 'इतना द्रोह करने पर भी देखो मैं अच्छा खासा मस्त मजा में घूम रहा हूँ। यदि वे सच्चे भगवान हैं तो मुझे अंधा करके दिखाएँ।'

बलदेवभाई ने कहा, 'शोभाराम! यह क्या माँग रहे हो? भगवान तो सत्यसंकल्प हैं, जानबूझकर उनसे अपना अंधापन क्यों माँग रहे हो? क्या कोई अच्छी वस्तु नहीं माँग सकते? या फिर तुम्हारी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है?'

शोभाराम और क्रोधित होकर चीखने लगा कि 'हाँ हाँ, भ्रष्ट-बुद्धि ही सही, मैं छाती ठोक कर माँग रहा हूँ, यदि तुम्हारे स्वामिनारायण भगवान हैं तो मुझे एक सप्ताह के भीतर अंधा कर दें।'

और परिणाम वही हुआ जो वह चाहता था! चार ही दिनों में वह अचानक अंधा हो गया।

श्रीहरि विचरण करते हुए वीसनगर पधारे। किसी सत्संगी ने बताया कि शोभाराम नाम का ब्राह्मण अपनी भ्रष्ट-बुद्धि के कारण अंध हो गया है। करुणामूर्ति महाराज के हृदय में दया आई। महाराज ने कहा, 'अरे! मेरे कारण ही वह अंधा हो गया? चलो, हम स्वयं जाकर उसको दर्शन दें, उसे क्षमा कर दें और उसको दृष्टि भी प्रदान करें। शोभाराम को जाकर कहो कि

महाराज तुम्हारे घर आ रहे हैं।’

परंतु ‘विनाशकाले विपरीतबुद्धिः’ कहावत के अनुसार शोभाराम की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। उसने हरिभक्तों को तुनककर कह दिया कि ‘मैं स्वामिनारायण से कभी नहीं मिलूँगा।’ उसने श्रीहरि को रोकने के लिए अपने घर के दरवाजे पर दो सिपाही खड़े कर दिये। श्रीहरि को अन्दर जाने से दरवानों ने मना कर दिया, श्रीहरि को बिना आशीर्वाद दिए लौट आना पड़ा। शोभाराम ने अपना शेष जीवन अनन्त अंधकार में बिता दिया। वह न केवल आँखों से वंचित रहा परंतु भगवत् साक्षात्कार से भी वंचित रहा।

मूलजी सेठ की पत्नी को दृष्टि का दान

श्रीहरि गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के लीमली गाँव में पधारे थे। यहाँ मूलजी सेठ ने अपने घर श्रीहरि को निमंत्रित किया। वे संत-हरिभक्तों के साथ उनके घर पधारे। आँगन में सेठ ने श्रीहरि का बड़े सद्भाव से सत्कार किया। श्रीहरि उनके कुशल समाचार पूछ रहे थे, तभी एक स्त्री हाथ से दीवार टटोलती, दीवार का सहारा लेती हुई सेठजी के घर में जा रही थी। सभाजन तो श्रीहरि की ओर देख रहे थे, किन्तु श्रीहरि कि दृष्टि कुछ स्त्री की ओर गई। उन्होंने मूलजी सेठ से पूछा, ‘मूलजी सेठ, वह आपके घर में कौन स्त्री जा रही है? लगता है शायद वह देख नहीं सकती। इसीलिए बेचारी परेशान हो रही है।’ मूलजी सेठ ने संकोच के साथ कहा, ‘महाराज! यह मेरी पत्नी है और उसकी आँखों की रोशनी कई सालों से बुझ चुकी है।’

‘स्त्री के लिए तो अंधापन बड़ा शापरूप है।’ श्रीहरि ने कहा, ‘चक्षुहीन जीवन का कष्ट कम नहीं होता। स्त्री को तो घरकाम करने में, चूल्हा जलाने में, जीवजन्तुओं से बचने में कितनी कठिनाई होती होगी! बिना किसी की सहायता अंध स्त्री कुछ नहीं कर सकती।’

‘वह तो है महाराज,’ मूलजी सेठ ने कहा, ‘परंतु क्या करें? प्रारब्ध में लिखा कोई बदल नहीं सकता। इस दुनिया में कई अंधजन ऐसा ही पराधीन जीवन बिताते होंगे। अंधे होने पर भी कामकाज तो रोका नहीं जा सकता!’

श्रीहरि का हृदय करुणा से भर उठा, उन्होंने कहा, ‘परंतु आपकी पत्नी की आँखें होतीं, तो बहुत अच्छा होता।’

मूलजी सेठ ने कहा, 'वह तो है महाराज।'

श्रीहरि ने मन ही मन कुछ संकल्प किया कि अचानक घर के भीतर से मूलजी सेठ की पत्नी ने आदमी को भेजकर सेठजी को घर में बुलवाया। अत्यंत उत्तेजित स्वर में अपने पति से कहने लगी, 'अजी सुनते हो, मैं सब कुछ देख रही हूँ। महाराज की कृपा तो देखिए!' इतना कहकर वह श्रीहरि के स्वरूप एवं वस्त्र-आभूषण का वर्णन करने लगी। सेठजी आश्चर्यमुग्ध होकर बार-बार श्रीहरि का आभार मानने लगे।

वे अत्यंत उत्साहपूर्वक श्रीहरि के पास आ पहुँचे। श्रीहरि के चरणों में बार-बार दंडवत् प्रणाम करते हुए कहने लगे, 'आपने बड़ी कृपा की है, महाराज! मेरी पत्नी अब आपकी कृपा से देखने लगी है। उसको आपने सुखी कर दिया। वह हरपल आपके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए तरसती थी। आपने आज उसका संकल्प परिपूर्ण कर दिया। वास्तव में आप सत्य-संकल्प हैं।'

सेठजी परिवारजनों ने श्रीहरि तथा संतों की बहुत सेवा की। सेठजी समय होने पर सर्वस्व समर्पित करके हमेशा के लिए सेवा में जुड़ गए।

[11]

जीवाखाचर की परीक्षा

श्रावण मास की समाप्ति तक पूरा सौराष्ट्र वर्षा की धाराओं की प्रतीक्षा करता रहा था। परंतु सर्वत्र अकाल की स्थिति दिखाई दे रही थी। पशुओं के लिए घासचारे का प्रबंध करना भी मुश्किल हो रहा था। लोगों ने महाराज से विनती की 'हे प्रभु! बिना बरसात के प्राणीमात्र परेशान हैं, कृपा करके इन्द्र को बरसात के लिए आदेश देने की कृपा करें।'

श्रीहरि चौक में पलंग बिराजमान होकर संतों-भक्तों से नारायण जप करवाने लगे। कुछ समय गुजरते ही छोटी-छोटी काली बदरियों से आकाश छा गया। इन्द्र ऐसी स्थिति देखकर क्रोध से जलने लगा। उसको तो इस वर्ष भी बरसना नहीं था परंतु अब शुरू किया तो मानो ऐसा मूसलाधार पानी बरसाया कि गाँव के मिट्टी से बने हुए घर स्वयं ही ढहने लगे।

महाराज जीवाखाचर के राजभवन में बिराजमान थे। उन्होंने जीवाखाचर से कहा, 'हमने आपको पहले से ही चेतावनी दी थी कि आप मुझे अपने घर इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1868 के प्रसंग दिये गये हैं।

मत ले चलो। फिर भी आप हमें ले आये। किन्तु अब क्या करेंगे? यह घर तो गिर रहा है, मुझे बताओ कि हमारी अन्य व्यवस्था कहाँ होगी?’

‘महाराज! नई ड्योढ़ी में नया और पक्का घर बनवाया है, वहीं आप चलिए।’ जीवाखाचर ने कहा।

जैसे ही श्रीहरि इस घर में उपस्थित हुए कि उन्होंने भक्तों की परीक्षा करने की इच्छा से कहा, ‘दरबार, हमें जोरों की भूख लगी है, गरम-गरम भोजन खिलाओ।’ परंतु दरबार ने देखा कि उस घर के चूल्हे, गोहरे, लकड़ी सब कुछ भीग गया था। उन्होंने तुरंत अपने अनाज की खाली कोठियाँ तुड़वाकर नये चूल्हे बनवाएँ, मूल्यवान चंदन के पलंग को काटकर लकड़ियाँ निकालीं, चूल्हा जलाया गया और ठीक समय पर महाराज को गरम गरम रसोई समर्पित की।

वह रात मानो प्रलय की रात थी। गाँव का हर घर इन्द्र के इस ताण्डव को देखकर कोहराम मचाने लगा, ‘बचाओ, कोई बचाओ, मेरा घर गिर रहा है। मेरे घर का छप्पर नीचे दब गया है, जल्दी कोई आकर मेरे बच्चों और पशुओं को बचा लो।’ परंतु उसकी चीख मेघ की गर्जना में न जाने कहाँ बह गई। जब पूरा गाँव चिंतातुर होते हुए भी निद्राहीन था, तो श्रीहरि ड्योढ़ी खोलकर आवाज की दिशा की ओर दौड़ पड़े। लाखा पटेल और देवा पटेल के घर का टूटता हुआ छप्पर अपने कंधे पर रख लिया, उस किसान के बच्चे और पशु रक्षा करके सभी को मौत के मुँह से बचा लिया।

प्रातःकाल होने तक सारा गाँव कमर तक पानी में डूब चुका था।

श्रीहरि स्नान के लिए बिराजमान हुए। सेवक मुकुन्द वर्णी ने श्रीहरि के कंधे पर लगी चोट का निशान देखा। वे चिंतित होकर पूछने लगे, ‘अरे, यह क्या? प्रभु आपको यह चोट कैसे लगी?’ श्रीहरि ने कुछ आग्रह के बाद आधी रात की घटी घटना कह सुनाई। श्रीहरि की करुणा देखकर उपस्थित सभी गद्गद हो गए। बरसात बंद होने से पानी भी कम हो चुका था। श्रीहरि ने कहा, ‘हमारे संतों ने कल से अब तक भोजन में कुछ नहीं खाया। हम इस गाँव के सद्भाव को देखना चाहते हैं, इसलिए सभी को आदेश है कि सभी संत घर-घर जाकर अपनी झोली फैलाएँगे और उस भिक्षान्न से अपनी उदरपूर्ति करेंगे।’

हालाँकि जीवाखाचर ने बहुत मना की परंतु श्रीहरि स्वयं भिक्षा माँगने के लिए पधारे। गाँव के ठाकुर जीवाखाचर ने भी श्रीहरि का साथ दिया। वे भी भिक्षा की झोली का दूसरा सिरा पकड़कर 'नारायण हरे, सच्चिदानंद प्रभु' की अलख लगाते हुए गाँव की गलियों में निकल पड़े। विभिन्न पकवानों से झोली भर गई। श्रीहरि ने गाँव की चौपाल पर सारे संतों को एकत्र करके सबके हाथों में ही परोसना प्रारंभ कर दिया। आज वह स्थान संतों की अपरिग्रह वृत्ति की स्मृति करा रहा है।

पवित्र वाणी का नियम

दूसरे दिन श्रीहरि गाँव के संनिष्ठ भक्तराज राठोड धाधल के घर पधारे। उनकी पत्नी राणबाई दही बिलोकर थाक के कारण विश्राम ले रही थी। बार-बार आराम और बार-बार काम करती हुई इस स्त्री को देखकर महाराज ने पूछा, 'तुम ऐसा क्यों करती हो?'

राणबाई ने कहा, 'महाराज, आप देख रहे हैं कि मैं अकेली हूँ, बिलोने में आमने-सामने दो व्यक्ति हों, तो जल्दी से और बिना थाक के हो जाता है।'

'अच्छा!' महाराज ने कहा और वे स्वयं खड़े होकर राणबाई के सामने बिलोना खींचने लगे। कुछ ही देर में मक्खन ऊपर आ गया। राणबाई ने श्रीहरि को मिसरी मिलाकर मक्खन दिया और कहा: 'लीजिए महाराज! यह आपकी सेवा का हिस्सा।' श्रीहरि ने प्रसन्न मन से इस भक्तिमती महिला का भाव स्वीकार किया।

जीवाखाचर के दरबार में संत-हरिभक्तों की सभा हो रही थी। अचानक एक दिगम्बर जोगी सिर पर जटा और हाथ में त्रिशूल लेकर आ पहुँचा। उसके शान्त, पर उग्रता से संतप्त चेहरे को देखकर सुरा खाचर के मुँह से निकल गया, 'गधा कहीं का! नंगा घूम रहा है!' बाबा सहज मौन रहकर श्रीहरि के चरणस्पर्श करके वहाँ से चुपचाप चले गये।

श्रीहरि ने डपटकर कहा, 'सुराखाचर! आपने उस वैरागी को अपशब्द क्यों कहा?'

'महाराज! यह तो हमारी काठियों की ठेठ भाषा की प्रसादी है। निन्दा हो

या स्तुति, हम तो गधे-गधी से ही आरम्भ करते हैं। हम काठी लोग इस शब्द को सीख लें तो समझते हैं कि सबकुछ सीख लिया।' सुराखाचर ने कहा।

महाराज उनको सीख देते हुए कहने लगे, 'आपको मालूम नहीं कि वे कोई साधारण वैरागी नहीं थे। साक्षात् शिवजी थे। जो ऐसे रूप में हमारे दर्शन के लिए पधारे थे। आप अनजान में भी अपराध कर बैठे। आज से नियम लो, कोई सत्संगी निन्द्य वाणी, अपशब्द या गाली नहीं बोलेगा। जिस मुँह से हम भगवान का नाम लेते हैं, उस मुँह से कुत्सित वचन बोलना शोभा नहीं देता। तुमने अपने मुँह में पूँछ के साथ गधी रख ली! इसलिए तुम प्रायश्चित्त में इक्यावन माला फेरना।' सुराखाचर चरण वन्दना करके श्रीहरि की क्षमा-याचना करने लगे। सभी ने पवित्र वाणी बोलने का नियम लिया।

सुरा खाचर वैरागी के चरणों में भी वंदना करना चाहते थे, परंतु वे कहीं नहीं मिले। जब उनकी दृष्टि आकाश की ओर गई, वे आकाश में अदृश्य होते हुए दिखाई दिये।

अकाल की भविष्य वाणी

गुजरात के बड़ौदा जिले को कानम प्रदेश कहते हैं। श्रीहरि वहाँ विचरण करके वरताल, डडूसर, आंतरोली, वड़नगर, विसनगर, ऊँझा, डांगरवा और अड़ालज होकर जेतलपुर पधारे। अहमदाबाद के कुछ हरिभक्तों ने यहाँ आकर श्रीहरि से निवेदन किया, 'हे प्रभु! अब आप अहमदाबाद आकर हमारे घर पावन कीजिए।'

श्रीहरि ने कहा, 'आप सभी ने कुछ वर्षों तक धीरज रखी है, अब कुछ और समय धैर्य रखना है। क्योंकि अहमदाबाद का सूबेदार अब भी हमारा द्वेष कर रहा है। हमारे आगमन से वहाँ कुछ उपद्रव खड़ा हो जाए, वह ठीक नहीं है। कुछ समय के बाद अनुकूलता होते ही आप सभी की सारी शुभ इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी।' इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर श्रीहरि वरताल पधारे।

वे विचरण में जहाँ भी गये, हरिभक्तों को आने वाले अकाल के विषय में भविष्यवाणी करते, और चेतावनी देते हुए कहते, 'दो साल तक गुजारा

हो सके इतना अन्न संग्रह अवश्य कर लेना, अनाज की बरबादी मत करना। धन के अभाव में उधार लेकर भी अन्न खरीदकर संग्रह कर लेना। क्योंकि आने वाला समय बड़ा भयंकर एवं विषम होगा। ऐसे अकाल में धीरज रखकर भगवान का भजन एवं स्मरण करते रहना, हमारा आशीर्वाद है कि हरिभक्तों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।'

वरताल में कुछ समय रहकर वे लींबासी, भेंसजाल होकर लोया, नागड़का पधारे। नागड़का में सुराखाचर के दरबार में श्रीहरि ने भव्य वसंतोत्सव का आयोजन किया। यहाँ भी अकाल की भविष्यवाणी करके हरिभक्तों को स्व-सुरक्षा के विषय में जागृत किया तत्पश्चात् नागड़का में नादरिया महादेव के दर्शन के लिए पधारे। वहाँ रुद्राक्ष की माला तोड़कर एक मनका श्रीहरि ने अपने गले में बाँधा और सभी संत, ब्रह्मचारी एवं हरिभक्तों के गले में एक एक मनका बंधवाकर उन्होंने कहा, 'महादेवजी रुद्र देवता हैं, वे भयंकर अकाल का संचार करेंगे। तब यह मनका हरिभक्तों के योगक्षेम का वहन करेगा, ताकि शिवजी प्रसन्न हों और हरिभक्तों को विशेष कष्ट न हो।'

मोक्ष की विद्या

स्वामी नित्यानन्दजी की संस्कृत शिक्षा सम्पन्न हुई थी। वे नागड़का गाँव में श्रीहरि के पास आशीर्वाद लेने के लिए पहुँचे। महाराज ने उनसे श्रीमद् भागवत की कथा करवाई।

श्रीहरि का अभिप्राय था कि जो विद्या मोक्ष में उपयोगी हो, वही विद्या उपयोगी है - 'सा विद्या या विमुक्तये।' उन्होंने संतों को संस्कृत अध्ययन की आज्ञा अवश्य थी, परन्तु वे पण्डिताई की अपेक्षा साधुता एवं विशुद्ध आचरण को ही विशेष महत्त्व देते थे। महाराज ने एक बार सत्संग के प्रचारार्थ गुणातीतानंद स्वामी को बुरहानपुर जाने की आज्ञा दी।

तब किसी ने कहा, 'महाराज! वहाँ तो पढ़े-लिखे साधु को ही भोजना चाहिए, ये तो उतने पढ़े-लिखे नहीं हैं। कहीं प्रश्नोत्तर के समय ये घबड़ा न जाएँ।'

श्रीहरि उनको कहने लगे: 'आप इन्हें पहचानते नहीं, भले ही वे पढ़े-

लिखे न हों लेकिन उनका आचरण शुद्ध है, वे साधुता में प्रथम क्रम पर हैं, वे स्त्री-धन से आकृष्ट होनेवाले नहीं हैं, उनका तो आचरण ही बातें करेगा। उनकी साधुता ही पण्डिताई को शान्त कर देगी।'

स्वामी नृसिंहानन्दजी प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर महाराज के पास दिये के उजाले में बैठकर ग्रंथपठन किया करते थे, परन्तु अचानक उनकी वृत्ति श्रीहरि के स्वरूप में एकाग्र हो जाती थी। पुस्तक का पन्ना उनके हाथ में ज्यों का त्यों स्थिर रह जाता था। ऐसी स्थिति देखकर कई बार महाराज उन्हें उलाहना देते थे और कभी थपकी मार कर उन्हें सावधान भी करते थे। एक बार वे भागवत का पन्ना पढ़ रहे थे कि उनकी चित्तवृत्ति महाराज में तल्लीन हो गई। वे होश गँवा बैठे और उनके हाथ में भागवत का जो पृष्ठ था, वह लौ से जल गया।

श्रीहरि ने उनको उलाहना देते हुए कहा, 'ढोंगी हो गये हो क्या?' नृसिंहानन्दजी रो पड़े और कहने लगे, 'महाराज! ढोंग करना मैं जानता बस, केवल आपकी मूर्ति के सामने देखते ही मेरी चित्तवृत्ति स्थिर हो जाती है। पढ़ाई का होश ही नहीं रहता। कहिए मैं क्या करूँ?' यह सुनकर महाराज प्रसन्न होकर कहने लगे, 'अब आप पढ़ाई बंद कर दें, अब आप सबकुछ पढ़ चुके, पढ़कर या लिख कर जो कुछ सिद्ध किया जाता है, वह आप सिद्ध कर चुके हो।'

श्रीहरि का यह दृढ़ आग्रह था कि विद्या का सम्पादन हमेशा मोक्ष की साधना बने!

एक दिन श्रीहरि ने दीनानाथ भट्ट से पूछा: 'आपको कितने श्लोक कंठस्थ हैं?'

'महाराज! मैंने कई शास्त्रों का अध्ययन किया है, इसके उपरांत मुझे पुरा श्रीमद् भागवत कंठस्थ है!'

'ओ हो हो!! तब तो आप ही कहिए कि आपने भागवत से मोक्ष का साधनरूप कौनसा श्लोक प्राप्त किया है?' महाराज ने पूछा।

'नहीं, महाराज! ऐसा विचार तो मैंने कभी नहीं किया।' भट्टजी बोले। महाराज ने पुनः पूछा, 'भागवत में ऐसा कौन-सा श्लोक है, जो मोक्ष का द्वार बताता है?' दीनानाथ भट्ट गहरी सोच में पड़ गए। कपाल पर पसीने की

बूँदें झलकने लगीं। महाराज ने उनकी द्विधा देखकर स्कन्ध बताया और अध्याय भी कहा, परन्तु वे कुछ ढूँढ नहीं पाए। तब महाराज ने कहा, 'सुनि ए इस श्लोक में मोक्ष की चाभी दिखाई गई है:

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।

स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ।⁹

भट्टजी के अन्तःचक्षु खुल गये। महाराज ने इस प्रकार केवल विद्वत्ता पर नहीं, परन्तु साधुता, सदाचार एवं मोक्ष-प्राप्ति के उपायों का भी विशेष महत्त्व दिखाया है।

अश्लीलता बन्द करवाई

देहातों में विचरण करके स्वामी स्वरूपानन्दजी आदि संत अपनी अपनी मण्डलियों के साथ श्रीहरि के पास आ पहुँचे।

'स्वामी, आपने कितने मनुष्यों को सत्संग करवाया? दुनिया के मनुष्य कैसे लगे?' महाराज ने पूछा।

स्वामी ने कहा: 'महाराज! मैंने बहुत विचरण किया, लेकिन मनुष्य तो इस नीम के पेड़ के नीचे ही देख पाता हूँ।'

श्रीहरि ने अकाल की शान्ति तथा हरिभक्तों की सुरक्षा के लिए नित्यानन्द स्वामी से भागवत की कथा करवाई। कथा समाप्ति के बाद सभी संतों को श्रीहरि ने रुद्राक्ष का मनका दिया। वहाँ से सारंगपुर आकर पुष्पडोलोत्सव का आयोजन करने लगे। यहाँ उन्होंने पूरे गुजरात में विचरण कर रहे संतों को निमंत्रण दिया। गाँव के बाहर होली जलाकर पूजाविधि की गई। श्रीहरि ने उन्होंने दूध की धारा के साथ होली की प्रदक्षिणा की, और श्रीफल का होम किया।

वे लोगों को इस उत्सव में बीभत्सता पूर्ण आचरण करते हुए देख रहे थे, उन्होंने उत्सव की इस विकृति को मिटाने के लिए माणकी घोड़ी पर सवार होकर अनुयायियों को प्रतिज्ञा दी और कहा, 'होलिका तो स्वयं सती

9. इस जीव का अपने सगे-सम्बन्धियों के प्रति जैसा लगाव - प्रसंग है, यदि वैसा ही लगाव भगवान के एकान्तिक साधुओं के प्रति हो जाए तो मान लो जीव के लिए मोक्ष का द्वार खुल गया।

है, उसके उत्सव में एक भी अपशब्द नहीं बोलना चाहिए, बीभत्स आचरण से दूर रहना चाहिए, अश्लील गीत नहीं गाने चाहिए। अनेक कुप्रथाओं को दूर करके भक्तिपूर्ण रीति से उत्सव मनाना चाहिए। क्योंकि हम हरिभक्तों को दुराचरण शोभा नहीं देता। सारे सत्संगी आज यह प्रतिज्ञा करें कि आज से वे मुक्तानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी और प्रेमानन्द स्वामी आदि संतों द्वारा रचित 'होली के पदों' को ही गाएँगे।'

तत्पश्चात् श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी और प्रेमानन्द स्वामी आदि को हिंडोला, फूलडौल, होली आदि उत्सवों के पदों की रचना का आदेश दिया। आज भी कामक्रोधादि अन्तःशत्रुओं पर प्रहार करने वाले पदों की रचना सत्संग समुदाय में बड़े भाव से गाई जाती है। इस प्रकार महाराज न केवल समाज के दूषण को ही दूर कर रहे थे, अपितु अच्छी प्रथाओं और आदतों का स्थापन करवाकर धर्म, नीति एवं भक्ति से लोक-जीवन को ओतप्रोत कर रहे थे।

धूलेटी के दिन महाराज अपने साथियों के साथ रंगोत्सव खेलते रहे।

उन्होंने सबको रंगों से सराबोर कर दिया। बाद में गाँव के बाहर नारायण कुण्ड में स्नान करके लौट रहे थे कि गढ़ड़ा से गुणातीतानन्द स्वामी तथा निष्कलानन्द स्वामी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दंडवत प्रणाम किया तब महाराज पूछने लगे, 'कहिए हमारे लिए क्या भेंट लाये हो?' इतना कहकर उनके द्वारा दिये गये पुष्पहार आदि को स्वीकार किया।

उत्तर गुजरात से आई स्त्री-हरिभक्तों ने महाराज के पास आशीर्वाद माँगते हुए कहा, 'हे महाराज! आपकी माया में हम फँसे नहीं, हमारे अंतःकरण में कामक्रोधादि व्याप्त न हों, आपका स्वरूप हमें निर्दोष दिखाई दे, हमारा चित्त किसीके भी अभाव-अवगुण की ओर आकृष्ट न हो, ऐसा वरदान दीजिए।' महाराज ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया।

संतों ने महाराज का पूजन किया, उसके बाद महाराज पलंग पर लेट गये। तब महानुभावानन्द स्वामी ने उनके पैर दबाने के लिए हाथ पसारे, महाराज ने अपने पैर चद्दर के भीतर खींच लिए।

महानुभावानन्द स्वामी ने पूछा, 'यह क्या महाराज? हमने आपके इन चरणों की प्राप्ति के लिए तो घरबार छोड़ा है, कष्ट सहन किये हैं, जंगल-

जंगल भटके हैं, सर्दी-गर्मी-गाली-अपमान सब कुछ सहा, तप किया, तो क्या हम आपके चरणों की सेवा के अधिकारी नहीं हैं ?’

श्रीहरि ने मुस्कराते हुए उनको यह उत्तर दिया, ‘कोई भिखारी सेठ के आँगन में झाड़ू लगाता है, जो कि एक पैसे का काम है और उसके बदले में सेठ से आधा मन स्वर्ण माँगे, तो क्या वह देगा ? इसी प्रकार आप थोड़ी सी साधना के बदले में आधे मन स्वर्ण माँगने जैसी जुरत करते हो। इन चरणों की प्राप्ति के लिए तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्षों तक तप किया है, अपनी हड्डियाँ एवं मांस गला दिया है। फिर भी उन्हें चरण नहीं मिले। तो आपको ये चरण कैसे मिल सकते हैं ?’

महानुभावानंद स्वामी विनम्रतापूर्वक कहने लगे : ‘हे महाराज ! आप सर्वावतारी हैं। हम न तो ऋषि-मुनि हैं और न ही तपस्वी हैं। उनके तप के सामने हमारा तप कुछ भी नहीं है, लेकिन एक व्रत है कि आपके चरणारविन्द में लगे हमारे मन को इन्द्र, ब्रह्मादि यदि चलित करना चाहें तो उनको भी सफलता नहीं मिलेगी।’

यह सुनकर महाराज प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वामी की छाती में अपने चरणारविन्द के चिह्न दिये और अपनी चरणसेवा के लिए सम्मति भी की।

गुणातीत की महिमा

पुष्पदोलोत्सव के बाद महाराज ने सारंगपुर के ठाकुर जीवाखाचर के दरबार में निवास किया था। भक्तराज राठोड धाधल के घर भी कुछ समय तक रहे थे। उनके आँगन में श्रीहरि ने रंगारंग होली और धुलेंडी के उत्सव का अनन्य लाभ दिया। संतों ने श्रीहरि का पूजन किया। उसी रात यहाँ महाराज ने संतों के साथ भव्य रास रचा। रास खेलते हुए श्रीहरि कबीरजी के पद गा रहे थे :

‘जोगिया टारत जनम का फांसला’

प्रेम का प्याला जोगिया, जुग जुग जियो सो जोगिया ।

गाते हुए वे अपनी छड़ी गुणातीतानन्द स्वामी की छाती पर रखकर एक और पद गाने लगे :

‘कोटि कृष्ण जोड़े हाथ, कोटि विष्णु नमे माथ,
कोटि शंकर करे ध्यान, कोटि ब्रह्मा कथे ज्ञान,
सद्गुरु खेले वसन्त।’

अंत में जब गाना संपन्न हुआ, तब खड़े रहकर उन्होंने पूछा, ‘संतों इस पद में वर्णित सद्गुरु आज कौन है?’



आनन्द स्वामी और मुक्तानन्द स्वामी ने कहा, 'महाराज! ऐसे सद्गुरु तो आप ही हैं।'

तब महाराज ने कहा, 'यह तो सद्गुरु की महिमा है। हम तो साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। ऐसे सद्गुरु तो अक्षरब्रह्म के अवतार तो गुणातीतानन्द स्वामी हैं। कबीरजी अक्षरब्रह्म को सद्गुरु-साहब कहकर आराधना करते थे। वही अक्षरब्रह्म ये गुणातीतानंदजी हैं। साकार रूप में वे निरन्तर हमारी सेवा में रहते हैं और निराकार एकरस चैतन्यरूप से धाम के रूप में वे पुरुषोत्तम और अनन्त मुक्तों को धारण कर रहे हैं।'

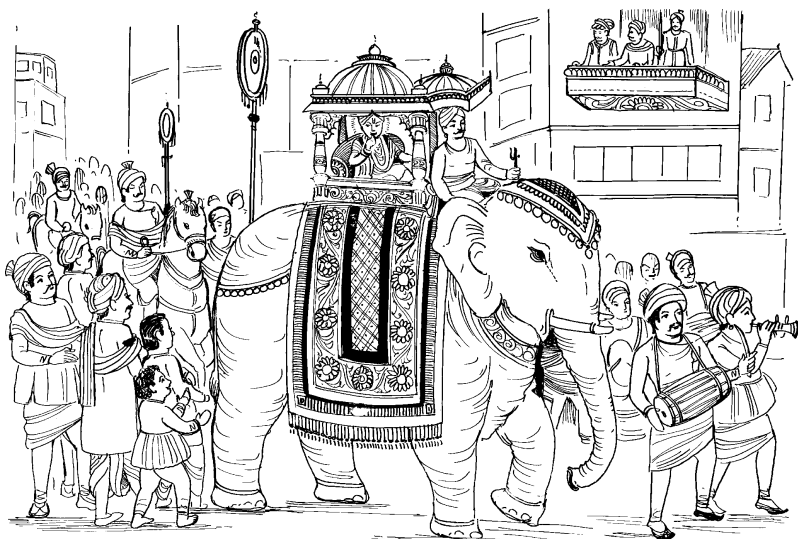
हर कोई इस छोटे और नये संत की अपरिमित महिमा सुनकर आश्चर्यमुग्ध हुए। उस रात बड़ी देर तक रास खेलकर श्रीहरि ने संतों को अपार आनंदित किया।

नवाब का निश्चय

जूनागढ़ में शिवभक्त नागर ब्राह्मण रहते थे। वे राज्य में अधिकारी पद पर नियुक्त थे उनमें से कुछ भगवान स्वामिनारायण का अकारण विरोध कर रहे थे। जब उनको पता चला कि कुछ अनुयायी श्रीहरि को जूनागढ़ में निमंत्रित करके बड़ी धूमधाम से उनका सम्मान करेंगे, तो वे विभिन्न तरीकों से नवाब को उकसाने लगे। शहर के नायब दीवान ने नवाब को कहलाया कि 'स्वामिनारायण अपने बहुत सारे आदमियों के साथ जूनागढ़ आ रहे हैं, वे युद्ध करके आपका राज्य हड़पने का प्रयास करेंगे।

परन्तु नवाब मुमुक्षु प्रकृति का शासक था। उसने कहा, 'सुनिये भाई जान, यह तो खुदा का राज्य है, यदि स्वामिनारायण खुदा हों तो भले ही राज्य ले लें। उनको जूनागढ़ में आने में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए।' तत्पश्चात् नवाब ने दूत के द्वारा श्रीहरि को जूनागढ़ में प्रवेश करने की अनुमति भिजवा दी।

हरिभक्तों ने जूनागढ़ में श्रीहरि की भव्य सवारी निकालकर अभूतपूर्व स्वागत किया। श्रीहरि के लिए हाथी पर आसन रखा गया था। जब वे गज सवारी के साथ धीरे-धीरे नवाब की कचहरी के पास पहुँचे तब एक चौकीदार का लड़का हाथ में ककड़ी लेकर दौड़ता-भागता श्रीहरि के निकट जा पहुँचा। वह अपना हाथ उठाकर महाराज को ककड़ी दिखाने लगा।



उसकी ककड़ी देने की इच्छा देखकर श्रीहरि ने उस लड़के को ककड़ी उछालने का संकेत किया। जैसे ही उसने ककड़ी फेंकी, श्रीहरि ने उसे पकड़ ली और उस के प्रेमवश हजारों लोगों को देखते हुए हाथी के ओहदे पर बैठे हुए ही ककड़ी खाना आरम्भ कर दिया! पूरा शहर महाराज की सवारी का दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ा था।

नवाब भी अपने कक्ष के झरोखे से इस नगरयात्रा को देख रहा था। ठीक पास में खड़ा हुआ द्वेषी दीवान उसके कान में ज़हर डाल रहा था। उसने तिरस्कार पैदा करने के लिए ही नवाब से कहा, 'देखिए, ये भगवान कहलाते हैं! इनमें कुछ विवेक भी है? वे उसी प्रकार ककड़ी खा रहे हैं, मानों जीवन में कभी ककड़ी देखी ही न हो! हाथी पर सवार होकर उस प्रकार खाना क्या उनको शोभा देता है?'

नवाब मुमुक्षु ही नहीं, बुद्धिमान भी था। उसने तुरन्त कहा, 'दीवान साहब, एक बात समझ लीजिए स्वामिनारायण निश्चित रूप से खुदा या खुदा का ओलिया ही होना चाहिए। अन्यथा जिसकी सवारी देखने के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा हो, ऐसी स्थिति में हाथी पर बैठकर ककड़ी खाने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता।'

नवाब को श्रीहरि के स्वरूप में खुदा के दर्शन हुए।

[12]

संवत् 1869 के वर्ष में अकाल

महाराज सारंगपुर, गढ़डा, गोंडल, जेतपुर, धोराजी, वंथली, आखा, पीपलाणा और मेघपुर होकर पंचाला पधारे थे। आनेवाले अकाल के दिनों में अपने भक्त और गाँव के ठाकुर झीणाभाई के द्वारा सोलह सौ मन ज्वार कोठियों में भरवा दी थी।

संवत् 1869 के वर्ष का आरम्भ हुआ। महारुद्र महादेव स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण करके महाराज के पास आए और बोले: 'हे प्रभु, इस धरती पर पाप इतने बढ़ गये हैं, कि वाममार्गी, शक्तिपंथी और कुड़ापंथी लोग परवान चढ़ रहे हैं। उन्होंने ने आपके संतों और हरिभक्तों को बहुत परेशान किया है, इसलिए अकाल तो अवश्य पड़ेगा, लेकिन आपके संतों और हरिभक्तों को अकाल की आँच नहीं लगेगी। आप इन दिनों गुप्तवास में रहिएगा।' इतना कहकर महारुद्र अदृश्य हो गये।

वर्षाऋतु के चारों महीनों में एक बूँद भी पानी नहीं बरसा। दादाखाचर के दरबार में जो तीन कमरे थे, उनके नाम क्रम से गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ रख दिये गये थे। महाराज उन्हीं कमरों में गुप्त रूप से रहते थे। सभी संतों को कच्छ और गुजरात में भेज दिये थे। कहीं से कोई संत गढ़डा आकर महाराज के बारे में पूछता था तो दादाखाचर कह देते थे, 'महाराज आज कच्छ में हैं अथवा गुजरात में हैं।' इस प्रकार 'नरो वा कुंजरो वा' की नीति का अनुसरण करना पड़ता था।

भयानक अकाल का समय शुरू हुआ। गाँव के गाँव उजड़ गये। कितने ही घर खाली हो गये। हज़ारों मनुष्य एवं पशु मर गये। महाराज ने कई काठी हरिभक्तों को गुजरात के हरिभक्तों के घर भेज दिये। एक दिन महाराज एक वर्णी के साथ गढ़डा से चुपचाप निकलकर मेथाण पहुँचे। वहाँ वे देवशंकर, काकुजी और पूजाभाई के घर बारी-बारी से छिपकर रहते थे।

लाडूबा और जीवुबा को महाराज के इस तरह विदा होने से बहुत दुःख हुआ। उन्होंने नाजा जोगिया को महाराज को खोजने के लिए भेजा। मेथाण गाँव की सीमा पर उसने ख्वास जाति की एक लड़की से पूछा, तो इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1869 के प्रसंग दिये गये हैं।

उसने पूजाभाई के घर का रास्ता बताया। उसने महाराज को जीवुबा और लाडूबा के विरह के दुःख की कथा सुनाई। महाराज ने पूजाभाई और उनकी पत्नी जीजीबा से छुट्टी माँगते हुए कहा, 'अब हम कल ही गढ़डा जाएँगे।'

उसी दिन रात को जीजीबा को दर्शन देकर लक्ष्मीजी ने कहा, 'अब तुम चिन्ता मत करो, मैं सेवा के लिए उनके पीछे-पीछे जाऊँगी तथा हरिभक्तों के लिए सुकाल करूँगी।' उन्होंने यह बात महाराज से कही। महाराज उनको आशीर्वाद देकर गढ़डा वापस लौटे।

अकाल ने बिदा ली, सुकाल आया

सन् 1812 (आ.सं. 1869) का वर्ष पानी के अभाव के कारण अकाल का वर्ष था। श्रीहरि ने संतों को दूध, घी, मिष्ठान आदि का त्याग करने का नियम दिया था। महारुद्र को प्रसन्न करने के लिए सभी परमहंसों की कंठी में रुद्राक्ष का एक-एक मनका पिरोकर पहनने की आज्ञा दी थी। संतों के षट्स (छह प्रकार के रस से रहित) भोजन के व्रत का एक वर्ष बीत चुका था। श्रीहरि ने गढ़पुर में होली का उत्सव करने का आयोजन किया। संतों तथा विभिन्न प्रांत के हरिभक्तों को श्रीहरि ने स्वयं अनेक पत्र लिखकर निमंत्रण दिया। सभी गढ़पुर की ओर आने लगे तब उनके स्वागत के लिए श्रीहरि सारंगपुर के निकट लगभग 50 किलोमीटर दूर कुंडल गाँव तक पधारे।

कुंडल में वे मामैया और अमरा पटगर के दरबार भुवन में ठहरे थे। विचरण करते हुए संत वहाँ आ पहुँचे। उनके दुर्बल शरीर देखकर हरिभक्तों की आँखें नम हो गईं। सभी हरिभक्तों ने मिलकर श्रीहरि के चरणों में प्रणाम करके बारंबार प्रार्थना की कि हे महाराज, संतों के कठिन वर्तमान को छुड़ाकर उनको ठीक तरह से भोजन करने की आज्ञा दीजिए।

मामैया पटगर की माता राईबाई ने तो यहाँ तक कहा कि 'महाराज, आपको ऐसा तपस्वी वेश बना रखने की क्या आवश्यकता है? यह जटा निकलवाकर तथा रुद्राक्ष को छोड़कर तुलसी की माला धारण कीजिए। जब

आप अच्छे भोजन का आरम्भ करेंगे तभी संतों को भी नीरस भोजन से छुटकारा मिलेगा। जब संत ही कमजोर और दुर्बल रहेंगे तो पूरा संसार अकाल से ग्रस्त ही रहेगा। इसलिए प्रसन्न और प्रफुल्लित होकर हमारे घर सभी संतों के भोजनपात्रों को सरस पदार्थों से छलका दीजिए, तभी संसार की स्थिति संपन्न होगी, बरसात भी अच्छी होगी, धरती धन-धान्य से हरियाली होगी, अन्यथा धरती के रस-कस समाप्त हो जाएंगे।'

राईबाई की यह निर्दोष प्रार्थना सुनकर श्रीहरि प्रसन्न हुए। महाराज ने जटा का त्याग करके संतों को षट्स के नियम छोड़ देने का आदेश दिया। उन्हें रुद्राक्ष के बदले में तुलसी की माला धारण करवाई। इस प्रकार श्रीहरि ने अकाल को हटाया और सुकाल को स्थापित किया। हरिभक्त धनधान्य से समृद्ध होने लगे। बरसात के बाद श्रीहरि कारियाणी होते हुए गढ़ा पधारे।

यहाँ होली तथा जन्माष्टमी के उत्सव के बाद श्रीहरि पुनः विचरण के लिए निकल पड़े।

[13] जालिया में बीमारी ग्रहण की

जूनागढ़ जिले में पंचाला, माणावदर आदि गाँवों में विचरण करते हुए श्रीहरि एकबार वरजांग जालिया में पधारे।

वहाँ हीरा ठक्कर बहुत संनिष्ठ हरिभक्त थे। श्रीहरि उनके घर पधारे। आज श्रीहरि का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्होंने हीराभाई से कहा, 'हीराभाई, आज मेरा शरीर अस्वस्थ है, मुझे आराम के लिए कोई एकान्त स्थान हो तो कहो, हम कुछ दिन के लिए आपके गाँव में रहेंगे।' हीरा ठक्कर ने श्रीहरि के लिए तुरंत अपना घर खाली कर दिया। श्रीहरि की अस्वस्थता बढ़ रही थी। बुखार के कारण सारा शरीर जल रहा था।

देखते-देखते ही यह खबर चारों ओर फैल गई। सभी संत कुशल-समाचार पूछने आने लगे। महाराज ने खाना-पीना बंद कर दिया। ग्यारह उपवास हुए तब उनके लिए उठना, बैठना और चलना तक कठिन हो गया। बारहवें दिन सभी संतों-हरिभक्तों ने प्रणाम करके श्रीहरि से प्रार्थना की, इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1870 के प्रसंग दिये गये हैं।

‘प्रभु, बीमारी छोड़कर आप कुछ भोजन अंगीकार कीजिए, ताकि शरीर स्वस्थ और सशक्त होने लगे।’ महाराज ने थोड़ा-सा अंगीकार किया।

सभी बार-बार प्रार्थना करने लगे कि कृपा करके आप पुनः पहले के समान स्वास्थ्य ग्रहण करें। आप जो भी कहेंगे हम उसी प्रकार करेंगे, कृपया आप बीमारी का त्याग कर दें।’

श्रीहरि ने कहा, ‘तब तो हमें बीमारी छोड़कर स्वस्थ होना ही है। लाइए, पेड़े, बर्फी और जलेबी ले आईए। मिठाई खाने के बाद हम बीमारी छोड़ देंगे।’ हीराभाई और उनकी पत्नी केसरबाई उसी रात भायावदर में एक हलवाई के घर जा पहुँचे। उसे जगाकर गरमागरम जलेबी तैयार करवाई। एक बर्तन में लेकर वे वापस लौटे। महाराज ने दो-तीन जलेबियाँ खाई, थोड़ा-सा विश्राम किया और दूसरे दिन संतों-भक्तों से कहने लगे, ‘आज तो हमें ठण्डे पानी से स्नान करना है। मुझ पर इतना पानी डालो कि उसका प्रवाह यहाँ से वेणु नदी तक जा पहुँचे। ऐसा बृहद् स्नान करके मैं स्वस्थ हो जाऊँगा।’

श्रीहरि का आदेश सुनकर गाँव की महिलाओं ने नदी से घड़े भरकर हीराभाई के आगन में लाने की सेवा अपने सिर उठा ली। श्रीहरि आँगन में चौकी पर बैठकर स्नान करने लगे। नाजा भक्त और भगुजी श्रीहरि की सेवा कर रहे थे। मुकुन्द ब्रह्मचारी ने यह देखकर सोचा, महाराज यदि ठण्डे पानी से इसी प्रकार स्नान करते रहेंगे तो निश्चित ही सर्दी और जुकाम की पीड़ा बढ़ जाएँगी। उन्होंने तुरंत चौकी के नीचे एक थाली रखवा दी, उसमें थोड़ा-सा पानी इकट्ठा हुआ कि उसे किसी हरिभक्त के द्वारा नदी में डलवा दिया। श्रीहरि ने अन्तर्यामी भाव से पूछा, ‘ब्रह्मचारीजी, क्या पानी का प्रवाह नदी तक पहुँच गया?’

‘जी महाराज!’ ब्रह्मचारी ने तुरंत उत्तर दिया।

श्रीहरि ने कहा, ‘अच्छा, तो अब पानी बन्द करो, हम भले चंगे हो गये हैं। अब हम इमली और आरिया खाएँगे।’ इतना कहकर वे वस्त्र बदल कर इमली और आरिया का प्रसाद खाने लगे। श्रीहरि ने इस गाँव में एक महीने तक अनेक दिव्य चरित्र किये। तत्पश्चात् गढ़डा में अन्नकूट का उत्सव किया।

कबूतर के कबूतर

श्रीहरि इस धरती पर इसीलिए प्रकट हुए थे कि उनके अपने स्वरूप का सभी को यथार्थ निश्चय हो तथा उनका आत्यन्तिक कल्याण हो। इसी उद्देश्य के साथ वे कभी-कभी अपनी सर्वोपरिता के विषय में बातें किया करते थे।

लोया, नागड़का तथा पंचाला आदि गाँवों में उन्होंने परमहंसों को अपने पास रखकर आठ महीने तक अपनी सर्वोपरिता की बातें कहीं थी। वे कहते थे कि मेरा जो अक्षरधाम है, सभी धामों से परे है। उसमें माया का कोई अंश नहीं है, वहाँ स्त्री-पुरुष का भी कोई भाव नहीं है। अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न आदि देव तथा रामचन्द्र, नरनारायण, श्रीकृष्ण, वैराजपुरुष आदि अवतारों से परे जो अक्षरब्रह्म है, उससे भी परे मैं हूँ, परंतु लोकसंग्रह के कारण मैं स्वयं को रामकृष्ण आदि के समकक्ष भी कहता हूँ। आप लोगों के आनंद एवं सुख के लिए मैंने मनुष्यरूप धारण किया है। मेरा अवतार तो अविद्या का नाश करके एकान्तिक स्थिति को प्राप्त कराने के लिए ही हुआ है। जिससे जीवों का आत्यंतिक कल्याण सिद्ध हो।

ऐसी अनेक बातें उन्होंने परमहंसों को सुनाई। परंतु आठ महीनों तक सबकुछ सुनने के बाद जब वे सब विचरण के लिए गाँव-गाँव जा रहे थे तब उन्होंने श्रीहरि के चरणों में प्रार्थना करके आशीर्वाद की कामना की, 'हे महाराज! हम गाँव-गाँव लोगों को सदाचारी बनाने के लिए जाएँगे तब हम आपके परिचय के विषय में क्या कहें?'

श्रीहरि ने कहा, 'यदि लोग पूछें तो कह देना कि हमारे भगवान स्वामिनारायण दत्तात्रेय, कपिल और व्यास जैसे महान हैं और यदि पूछनेवाला अच्छा मुमुक्षु हो तो उन्हें बताना कि स्वामिनारायण भगवान राम और कृष्ण के समान समर्थ हैं।'

'ठीक है महाराज!' इतना कहकर वे भोलेभाले परमहंस देहातों में विचरण करने निकल पड़े। कुछ महीनों के बाद वे गढ़पुर वापस लौटे तो श्रीहरि उनको कुशल समाचार पूछने लगे, 'संतों, आप गाँव-गाँव जाकर

हमारे महिमा की क्या बातें करते थे ? तुम लोगों ने देहातों में क्या बातें कीं ? हमारा क्या परिचय दिया ?' कुछ परमहंसों ने कहा, 'महाराज ! हम लोगों ने आपको दत्तात्रेय, कपिल और व्यास के समान समर्थ बताए।' कुछ परमहंसों ने कहा, 'प्रभु ! हमने आपको राम और कृष्ण के अवतारों की उपमा दी थी।' तो बहुत ही कम परमहंस ऐसे थे जिन्होंने श्रीहरि को सर्वोपरि एवं अवतारों के अवतारी के रूप में परिचय दिया था।

यह सुनकर श्रीहरि मार्मिक स्मित करते हुए कहने लगे, 'बहुत अच्छा किया।' फिर कहा, 'आप लोग कबूतर के कबूतर ही रहे। जैसे भोजन में खीर, मालपुआ, पूड़ी, साग, दलहन, कढ़ी, भात के साथ यदि मूली खाई हो तो डकार मूली की ही आएगी, न कि अन्य पदार्थों की। उसी तरह मैंने आप सभी को अपने स्वरूप की यथार्थ महिमा बताई, लेकिन आप कुछ भी नहीं समझे, सभी कबूतर के कबूतर ही रहे। यदि आप लोग मेरे स्वरूप की सर्वोपरिता समझे होते, तो आप उसे बिना बताये रह ही नहीं सकते थे।'।

यह सुनकर परमहंसों को अपनी भूल समझ में आ गई। जिन्होंने श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप की यथार्थ महिमा समझाकर उनको अवतारों के अवतारी बताया था, वे प्रसन्न हुए। श्रीहरि की मार्मिक वाणी में यही संकेत था कि लोक और शास्त्रों के शब्दों का विचारहीन बंधन छोड़ देना चाहिए तभी श्रीहरि की यथार्थ महिमा फैलाई जा सकती है।

[14]

गरीबनिवाज

गुजरात के महेसाणा जिले में श्रीहरि वडू तथा करजीसण गाँव में पधारे। वहाँ एक मास तक उन्होंने निवास किया। इस वर्ष सौराष्ट्र में वर्षा कम होने के कारण हरिभक्त समुदाय श्रीहरि तथा भक्तों की सुविधा नहीं कर सकते थे। इसी कारण श्रीहरि ने संतों-हरिभक्तों को करजीसण में धूमधाम से जन्माष्टमी का महोत्सव मनाया। कृष्णजन्म के समय हरिभक्तों ने पंचामृत से श्रीहरि के चरणारविन्द पखारे, उनको नये वस्त्र पहनाये, बरगद के पेड़ पर झूला बाँधकर, श्रीहरि को झुलाये। अमावस्या तक संतों तथा हरिभक्तों को अपने सांनिध्य का आनंद देकर विदा किया। वे स्वयं इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1871 के प्रसंग दिये गये हैं।

करजीसण, मोऊ और लांघणोजमें गुप्त वास में रहने लगे।

गुजरात के महेसाणा जिले के लांघणज गाँव में एक गरीब महिला रहती थी। उसका नाम सोनबाई था। एक दिन उसने डरते-डरते श्रीहरि को भोजन के लिए आमंत्रित किया। महाराज ने उसके आमंत्रण को तुरन्त स्वीकार किया।

वह तो प्रसन्न होकर भोजन की तैयारी करने लगी। सोनबाई के पड़ोस में एक श्रीमंत ब्राह्मण हरिभक्त का घर था। उसकी पत्नी गंगाबाई को अपनी संपत्ति का भारी घमंड था।

जब उसे पता चला कि महाराज सोनबाई के यहाँ आ रहे हैं, तो वह सोनबाई के घर जा पहुँची, 'अरी सोनबाई, तेरे कुछ दिमाग है या नहीं? महाराज तो पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण हैं, उनको उत्तम वस्तु ही निवेदित की जा सकती हैं।'

सोनबाई उदास होकर बोली, 'मेरे पास तो ऐसा उत्तम अनाज नहीं है, मैं क्या करूँ?'

गंगाबाई कहने लगी, 'तू चिंता मत कर। मेरे पास उत्तम प्रकार के गेहूँ, चावल, दाल आदि हैं। मैं अपने घर रसोई बनाकर थाल तैयार करके यहाँ आ जाऊँगी और महाराज को खिलाऊँगी और तू संतों एवं हरिभक्तों को खिलाना।'

सोनबाई का गला भर आया। हाँलाकि उसके मन में यह घर कर गया था कि महाराज को सबकुछ श्रेष्ठ अर्पण करना चाहिए, किन्तु मेरे पास तो ऐसा कुछ भी नहीं!

रसोई तैयार करते हुए उसकी आँखें भीग जाती थीं। उसे एक ही विचार सता रहा था, क्या महाराज मेरी रसोई अंगीकार नहीं करेंगे?

रसोई तैयार करके वह दहलीज पर बैठकर श्रीहरि की प्रतीक्षा करने लगी। महाराज सोनबाई के घर आ पहुँचे। सोनबाई ने सभी के लिए आसन का प्रबन्ध किया। बैठते ही महाराज ने पूछा, 'क्यों बाई, उदास क्यों दिख रही हो?'

इतना सुनते ही सोनबाई की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। वह रोती हुई बोली, 'मैंने आपके लिए बड़े भाव से रसोई बनाई है, परन्तु

मेरे पास तो हलके गेहूँ, चावल और दाल थे। स्वयं भगवान पुरुषोत्तम नारायण को मुझे तो उत्तमोत्तम भोजन परोसना चाहिए। परन्तु मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है। मैं क्या करूँ?’

श्रीहरि यह सुनकर भावार्द्र होकर मुस्कुराने लगे, ‘अरे बाई, कौन कहता है कि तुम्हारे घर में गेहूँ, चावल और दाल हलके हैं ? जिसकी भावना उत्तम से भी उत्तम है, उसका अनाज भला, हलका कैसे हो सकता है ? लाओ हमारा थाल और परोसो जो तुमने बनाया है।’

सोनबाई के अंतर में उमंगों की फुहार फूटने लगी। श्रीहरि ने उनके घर बड़े भाव से भोजन किया।

कुछ ही देर में गंगाबाई वहाँ आ पहुँची, ‘महाराज, आपके लिए सर्वोत्तम गेहूँ, चावल, दाल आदि की रसोई ब्राह्मण से बनवाकर लाई हूँ।’

महाराज ने उधर देखे बिना ही कहा, ‘सोनबाई की रसोई मुझे बहुत पसंद आई। आज कुछ अधिक ही खा लिया। तुम्हारा थाल मैं तुम्हीं को देता हूँ, मेरी प्रसादी समझकर सोनबाई और तुम दोनों प्रसाद समझकर खा लो।’

गंगाबाई को अपनी भूल समझ में आ गई और सोनबाई की भक्ति का आदर करने लगी।

भगवान की गद्दी

शाम का समय था। गढ़पुर में दादाखाचर के दरबार में पूर्वी द्वार के मोटीबा के कमरे में श्रीहरि सभा के सामने पलंग पर बिराजमान थे। वहाँ एक ब्राह्मण ज्योतिषी आ पहुँचा। वह गणित, फलित ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र एवं खगोल का अच्छा विद्वान था। महाराज ने उसका स्वागत किया।

सूक्ष्म दृष्टि से वह श्रीहरि की भौंहें, नाक, आँखें, भाल, तिलक आदि देखकर बोला, ‘आप उत्तर भारत के ब्राह्मण हैं, पांडे हरिप्रसाद के पुत्र हैं, आप यहाँ भगवान होकर कैसे बैठ गये हैं?’

श्रीहरि मजाक के स्वर में कहने लगे, ‘विप्रवर ! हम घर छोड़कर निकले, उस दिन से आज दिन तक हमने कई राजपाट देखे, वहाँ कहीं कोई गद्दी खाली न मिली। हम उत्तर, पूर्व, दक्षिण में घूमते-फिरते पश्चिम में सौराष्ट्र में आये। यहाँ आकर देखा कि भगवान की गद्दी खाली है। बस, हम

उस गद्दी पर चढ़ बैठे।' इतना मुस्कराते हुए उन्होंने अपने चरणारविन्द उसके सामने पसार दिये। ब्राह्मण ने उनके पैर मैं सोलह चिह्न देखे। वह समझ गया कि ये चिह्न केवल भगवान के चरणों में ही होते हैं। वह प्राणाम करते हुए श्रीहरि के चरणोंमें गिर गया।

उसे श्रीहरि के चरणारविन्द में से तेज का समूह निकलता दिखाई दिया। अनन्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला तेज देखकर उसे समाधि लग गई, अक्षरधाम का दर्शन हुआ वहाँ दिव्य सिंहासन पर बिराजमान श्रीहरि, तथा उनकी सेवा में अनंत शिव तथा अवतार एवं अनन्तकोटि मुक्त दिखाई दिये।

महादेवजी ने उससे कहा, 'भगवान स्वामिनारायण सभी अवतारों के अवतारी एवं सभी के कारणरूप पुरुषोत्तम नारायण हैं। तुम उनके आश्रित होकर उनका भजन करो, तुम्हें अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।'

कुछ क्षणों के बाद वह समाधि से जाग्रत हुआ, श्रीहरि के चरणों में गिर पड़ा और बोला, 'महाराज! मेरे अपराध क्षमा करें। मुझे आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं था, अब मुझे आप अपना आश्रित बनाइए। मेरा कल्याण कीजिए।'

श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद दिया। वर्तमान-नियम देकर उसको सत्संगी बनाया।

धरमपुर में पधरावनी

श्रीहरि गढ़डा में थे, उनको अन्तर्यामीरूप से धर्मपुर महारानी कुशलकुंवरबाई के संकल्प का पता चला। उन्होंने पत्र द्वारा सूचना भिजवाई कि हम कुछ ही दिनों में वरताल होते हुए धरमपुर पधारेंगे।

कुछ समय बाद वे गढ़डा से निकलकर सींजीवाड़ा, बुधेज और महेलाव होकर वरताल पहुँचे। वहाँ उत्सव मनाकर कई दिनों की यात्रा के बाद धरमपुर पहुँचे। राजमाता के आनन्द की सीमा न रही। वे अपने कुंवर विजयदेव को लेकर गाँव के सिवान में श्रीहरि का स्वागत करने के लिए पहुँचीं। वहीं उन्होंने श्रीहरि को स्वर्ण जडित वस्त्र तथा सोने के अलंकार अर्पण किए। हाथी पर सोने की अंबारी में बिठाकर उन्होंने गाजे-बाजे के साथ श्रीहरि की शोभायात्रा निकाली। अपने राजमहल में निवास का प्रबंध

किया। तब उन्होंने कहा: 'महाराज! यह सारा का सारा राज्य आपके चरणों में समर्पित है।'।

श्रीहरि ने उसी पल कहा, 'मैं राज्य नहीं चाहता, गधे का बोझ गधा ही उठाता है, हम राज्य चलाने धरती पर नहीं आये हैं। हमारी अंगुली के संकेत पर अनन्तकोटि ब्रह्मांड और उनके राज्य चलते हैं। हम तो केवल जीवों का मोक्ष करने के लिए अक्षरधाम से यहाँ आये हैं।'।

उन्होंने महाराज की पधरावनी वांसदा में भी करवाई। वहाँ तीन दिन तक भिन्न भिन्न प्रकार की सेवा करके महाराज को बहुत प्रसन्न किया।

‘सबको पूर्ण अखण्ड और शुद्ध बनाऊँगा’

श्रीहरि एक बार वांसदा ने सभा के समक्ष विराजमान थे। इतने में धरमपुर के कुछ हरिभक्तों का संघ दर्शन के लिए आ पहुँचा। सभीने दंडवत् प्रणाम करके श्रीहरि का चरणस्पर्श किया। संघ के मुख्य हरिभक्त ने एक पोटली श्रीहरि के चरणों में रखी। उन्होंने पूछा, 'यह क्या है?'

‘महाराज! धरमपुर की राजमाता कुशलकुंवरबाई ने स्वयं अपने नखों से धान के छिलके निकालकर ये कमोद (जाति) के चावल भेजे हैं और आपको धरमपुर पधारने के लिए निमंत्रण भी दिया है।'।

श्रीहरि दूध के समान श्वेत और फूलों के समान सुगंधित चावल लेकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभाजनों से पूछा, 'यह क्या है?'

‘महाराज! यह चोखा है।' गुजराती में चावल को चोखा कहते हैं, उसका दूसरा अर्थ है शुद्ध। महाराज ने यह प्रश्न तीन बार पूछा। हरिभक्तों ने तीनों बार वही उत्तर दिया, 'महाराज यह चोखा है, यानी चावल है।'।

मुक्तानन्द स्वामी ने पूछा, 'महाराज! तीन बार एक ही प्रश्न पूछने का क्या रहस्य है?'

महाराज ने कहा, 'जैसे ये चोखा दूध के समान श्वेत है, अखण्ड है, उसी प्रकार मैं आप सभी को चोखा-अर्थात् धवल (निर्दोष) और पूर्ण अखण्ड बनाना चाहता हूँ। चावल का प्रत्येक दाना 'सम्पूर्ण' है। ऐसे ही तुम लोगों को मैं सम्पूर्ण बनाऊँगा।'। सबको रहस्य समझ में आया। कुशलकुंवरबाई ने यहाँ महाराज के स्वरूप का अनन्यभाव से दर्शन किया

और उनका पूरा स्वरूप अपने अन्तस्तल में स्थिर किया। उनको आशीर्वाद देकर वे गढ़डा की ओर चल पड़े।

बारह स्वरूपों में दर्शन

फूलदोल उत्सव मनाने के लिए श्रीहरि अहमदाबाद से वरताल पधारे। श्रीहरि ने सभी संतों और हरिभक्तों को उत्सव में उपस्थित रहने के लिए निमंत्रणपत्र भिजवाए। सभीको पता चल गया कि श्रीहरि सबके साथ होली खेलेंगे। यह लाभ लेने के लिए सभी बरताल पहुँचे।

खेडा जिले के हरिभक्तों ने ज्ञानबाग में रंग के दो कुण्ड भरवा रखे थे, दस-दस फीट ऊँचे गुलाल के ढेर लगा दिये थे। हज़ारों पिचकारियों का एक ढेर लगा दिया गया था। इतनी सुन्दर पूर्व तैयारी देखकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। श्वेत वस्त्र धारण करके वे अनेक संतों-हरिभक्तों के साथ ज्ञानबाग में पधारे। सर्वप्रथम रंग की पिचकारी भरकर उन्होंने रंग छिड़कना तथा गुलाल उड़ाकर संतों-हरिभक्तों को रंगना प्रारंभ किया। हरिभक्त भी महाराज को रंगने लगे। बहुत देर तक रंगक्रीडा चलती रही। अन्त में श्रीहरि धारुतालाब पर स्नान के लिए पधारे। भोजन तथा आराम के बाद वे पुनः ज्ञानबाग आ पहुँचे।

यहाँ पास-पास आम के दो भीमकाय पेड़ थे। सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी ने दोनों पेड़ों की डालियों को जोड़कर उस पर एक बल्ला बाँध कर झूला बनाया। सुन्दर नक्काशीवाला बारह द्वारों वाला यह झूला स्वामी ने अपने हाथों से बनाया था। उसमें घुंघरू, मोती और नंग जड़कर उसकी शोभा और भी बढ़ा दी थी। श्रीहरि ने जरी के सुन्दर वस्त्र धारण किए थे। भक्तों ने कुशलकुंवरबाई द्वारा उपहार में दिये गये हीरे का मुकुट और स्वर्ण के आभूषण भी पहनाये। श्रीहरि झूले पर खड़े होकर दर्शन दे रहे थे। मुक्तानन्द स्वामी रेशमी जरियान डोरी से झूला झुला रहे थे।

उस समय पर एक महान आश्चर्य का दर्शन हुआ। झूले के उन बारह द्वारों पर बारह स्वरूप धारण करके श्रीहरि दिखाई देते थे। झूले के चारों ओर खड़े हरिभक्तों को उनके वैसे ही दर्शन होते थे, जैसे श्रीहरि ठीक सामने खड़े होकर दर्शन दे रहे हैं! हरिभक्त कहीं से भी, श्रीहरि को पुष्प

माला देते, महाराज अपनी छड़ी द्वारा ले लेते ! आशुकवि परमहंसों ने इस लीला पर अनेक गीतों की रचना करके उनका गान किया। फूलदोलोत्सव के बाद हरिभक्तों ने श्रीहरि का भावपूर्ण पूजन किया। उनके चरणों में भेंट रखकर उनकी आरती की। इस दिव्य लीला के दर्शन से सभी धन्यता का अनुभव करने लगे।

[15]

साधुओं के आचरण की रीति

श्रीहरि विचरण करते हुए गढ़डा पहुँचे। यहाँ उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को परमहंसों को सम्बोधित करके एक पत्र लिखा, 'हमारे संतों को पंचवर्तमानों अर्थात् पांच नियमों का पालन करना चाहिए। ये नियम इस प्रकार हैं : निर्मान, निष्काम, निर्लोभ, निःस्नेह और निःस्वाद। वे आठों प्रकार से स्त्री-प्रसंग का त्याग करें। स्त्री का दर्शन हो अथवा उसकी आवाज़ तक सुनाई दे, तो ऐसे स्थान में निवास मत करना। दिन में गाँव के चबूतरे पर अथवा किसी सत्संगी गृहस्थ के घर निवास करना। द्रव्य और धातु मात्र का परित्याग रखना। जरी के सुंदर तथा महीन वस्त्र, हीरा, माणिक, मोती, मूँगा आदि गहने तथा घन संपत्ति का त्याग रखना। यदि कोई द्रव्य रखता हो तो उसे त्यागी संघ से निकाल देना चाहिए। मेरे आश्रित त्यागी भक्तों को लौकिक तथा सांसारिक बातें, गृहस्थों की जमीन जागीर सम्बन्धी बातें, अपने जन्मस्थान, जाति और सगे-सम्बन्धियों की बातें तथा कुसंग विषयक चर्चा कभी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसी चर्चा दूसरा भी कोई करता हो तो उसे भी रोकना चाहिए। एकादशी आदि व्रत एवं उत्सव भक्तिभाव के साथ मनाते रहना चाहिए करना। छोटे परमहंस बड़े परमहंसों की मर्यादा रखें, विवेक से रहें, उठकर उनको आसन दें, उनको भोजन करा के, पानी पिलाकर फिर स्वयं खाएँ तथा पीएँ। उनको जगाना हो तो 'जय स्वामिनारायण' कहकर जगाना चाहिए। चाहे कैसी भी स्थिति पैदा क्यों न हो जाए, इन मर्यादाओं का उल्लंघन न हो, उसके लिए सर्तक रहना।' इस प्रकार श्रीहरि ने अपने परमहंसों- साधुओं के आचरण की रीति का स्थापन किया।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1872 के प्रसंग दिये गये हैं।

बुरा स्वभाव छोड़ना

श्रीहरि छोटे से गाँव नागड़का में बिराजमान थे। वहाँ सुराखाचर की अश्वशाला में एक बछेरा था। वह उतना क्रोधी था कि हर किसीको लात मारने का उसका स्वभाव था। हर कोई उसके समीप जाते हुए कतराते थे। जब श्रीहरि को इस बात का पता चला, तो उन्होंने एक संकल्प कर लिया। उनकी एक स्वभाविकता थी कि अपने संपर्क में आनेवाला चाहे कैसा भी बुरा हो, उसे मिटाकर रहना। उसकी आचरण शुद्धि करना।

श्रीहरि ने बछेरे की बुरी आदत छुड़ाने का निश्चय किया। वे दूसरे दिन प्रातःकाल से एक लंबा बाँस लेकर अश्वशाला में बछेरे के पीछे एक चौकी पर बैठ गये। उन्होंने बछेरे के एक पैर पर लाठी का स्पर्श करने का आरंभ किया। जैसे ही लाठी का स्पर्श हुआ, उसने तुरन्त उछलकर लात दे मारी। दो मिनट बाद फिर दूसरे पैर को लाठी छुआई, उसने आदत के अनुसार फिर उछलकर लात मारी। इस प्रकार महाराज हर पल-दो-पल उस बछेरे को लाठी का स्पर्श करते रहे और वह लात मारता रहा। अब वह दो पांच बार स्पर्श होने के बाद लात उछालता था।

दोपहर के बारह बज गये। सुरा खाचर और मूलजी ब्रह्मचारी श्रीहरि को भोजन के लिए बुलाने आये। उन्होंने सुरा खाचर से कहा, 'इस बछेरे को लाठी छुआने का काम यदि आप जारी रखें, तो मैं भोजन के लिए जाऊँगा। अब दो-पांच बार लाठी छुआने पर वह एक बार लात उछालता है। पर पूरा सुधार अभी तक नहीं हुआ, परन्तु आज ही इसकी बुरी आदत पूरी सुधारनी है।' सुराखाचर श्रीहरि के आदेश का पालन करने के लिए तैयार हो गये।

श्रीहरि भोजन तथा कथा के बाद वापस लौटे और सुराखाचर से लाठी लेकर स्वयं अश्वशाला में बैठ गए। शाम होते-होते तो वह बछेरा लात उछाल-उछालकर थक गया। रात्रि तक उसकी वह बुरी आदत छूट गई। वह इतना शांत हो गया कि छोटे बच्चे आकर उसको छूने लगे पर उसने किसी को लात नहीं मारी! श्रीहरि हरिभक्तों से कहने लगे, 'स्वभाव में ऐसी कोई बात हो तो वह छोड़ देनी चाहिए। यदि आप नहीं छोड़ोगे तो भगवान इस प्रकार तुम्हारी आदते छुड़ाएँगे।'।

[16]

लग्न के अश्लील गीत बंद करवाये

एक बार श्रीहरि गढ़पुर में अपनी अक्षरकुटीर में बिराजमान थे। कहीं दूर से उनको विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की पंक्तियाँ सुनाई दी। जब शब्दों पर गौर किया तो उनको बहुत बुरा।

क्योंकि उन पंक्तियों के अर्थ अत्यंत अश्लील थे। श्रीहरि उदास होकर किसी हरिभक्त के साथ सुखपुर गाँव की ओर चले दिये। वहाँ भी यही हालत थी। विवाह के गीतों में गालियों के साथ अशोभनीय भाव भरे हुए थे। ऐसे गीत सुनकर वे फिर एक बार उदास हो गये।

हरिभक्तों ने श्रीहरि का विशुद्ध आचरण का आग्रह देखा था। उनकी वाणी की पवित्रता देखी थी। उन्होंने श्रीहरि की मरजी देखकर मन ही मन शुद्ध आचरण तथा पवित्र वाणी का व्रत ले लिया। सभी ने मिलकर श्रीहरि से क्षमायाचना की और उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके प्रतिज्ञा ली कि आज से हम आपको वचन देते हैं कि अब हमारी स्त्रियाँ ऐसे अशोभनीय गीत कभी नहीं गाएँगी। हरिभक्तों ने स्त्रियों को श्रीहरि की रुचि सुनाई तथा गंदे और अशोभनीय गीत गाने पर प्रतिबंध लगवा दिया। महाराज ने अपने कवि परमहंसों को आदेश दिया कि आप भगवान के विवाह के गीतों की रचना करें ताकि सामाजिक प्रसंगों के अवसर पर ऐसे ही पवित्र गीत गाए जाएँ।

महाराज ने इसी गाँव से संवत् 1873 (सन् 1816) माघ शुक्ला पूर्णिमा को प्रत्येक गाँव में अपने आश्रितों को एक पत्र द्वारा विवाह के माँगलिक अवसर पर अश्लिल गीत न गाने का आदेश दिया। तथा मुक्तानंद स्वामी, प्रेमानंद स्वामी इत्यादि संतों द्वारा रचित रुक्मिणी के विवाह आदि भक्ति-गीतों का गान करने की आज्ञा दी।

बच्चे को प्रसन्न किया

गढ़पुर में श्रीहरि सिंहासन पर बिराजमान थे। कथा का आरम्भ हो रहा था। एक सात साल का बच्चा श्रीहरि के चरणस्पर्श के लिए आ रहा था।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1873 के प्रसंग दिये गये हैं।

अचानक हरिभक्तों के पीछे से एक भयंकर साँप निकला। किसी की नजर उस ओर नहीं थी। किन्तु महाराज ने दूर से उसे देख लिया। महाराज उस साँप की ओर दौड़े की बच्चा उनसे टकराकर गिर गया। हरिभक्तों ने उस दिशा में देखा तो चौंककर खड़े रह गए। एक भयंकर साँप को पकड़ने के लिए श्रीहरि स्वयं दौड़ रहे थे। श्रीहरि के पार्षद भगुजी और मूलजी ने अवसर संभाल लिया था। दोनों साँप को पकड़कर, मटके में डाल कर दूर फेंकने के लिए निकल गए थे।

श्रीहरि पुनः लौटकर मंच पर बिराजमान हुए। वे उस बच्चे को भूले नहीं थे। उन्होंने उस बच्चे को अपने पास बुलाया, पास में बिठाकर प्यार से प्रसाद में दो आम दिये। वह प्रसन्न होकर श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम करके घर चला गया।

[17]

वेदान्ताचार्य की पराजय

श्रीहरि गढ़पुर से संतों और हरिभक्तों के साथ विचरण करते हुए वरताल पहुँचे। यहाँ धनत्रयोदशी, कृष्णचतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट और प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव धूमधाम से संपन्न किया।

जब वे गढ़पुर लौटकर पुनः वरताल पधारे, तब मुक्तानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी आदि विद्वान संत उनके साथ थे।

उन दिनों गुजरात में दक्षिण भारत से एक वेदान्ताचार्य आये हुए थे। वे विद्वान तो थे, पर थे बड़े अहंकारी। वे अधिकतर अहमदाबाद अथवा वडोदरा में ही रहते थे। विद्वान समझकर श्रीहरि ने उनको वरताल निमंत्रित किया। यहाँ नारायणगिरि के मठ में उनके निवास का अच्छा प्रबंध भी किया था। आवश्यकता से अधिक सीधा सामग्री भी भिजवाई थी। वरताल में श्रीहरि के तत्त्वावधान में उसके साथ शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया।

श्रीहरि ने उनको श्रुति-वेदान्त के बारह महावाक्यों का अर्थ करने के लिए प्रश्न किये। उन्होंने अनेक प्रकार से उत्तर देने का प्रयत्न किया, परंतु श्रीहरि के तर्क सुनकर उनके एक भी उत्तर टिक नहीं पाये। उनके सारे तर्क कट गये। अन्त में महाराज ने स्वयं उन बारह महावाक्यों का अर्थ बताया।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1874 के प्रसंग दिये गये हैं।

वेदान्ताचार्य चकित रह गये। उनका गर्व चूर-चूर हो गया, फिर भी विद्वान समझकर श्रीहरि ने उनको पुरस्कृत करते हुए दो सौ रुपये दिये तथा वस्त्र आदि देकर उनको प्रसन्न किया।

परन्तु वेदान्ताचार्य अपनी पराजय से भीतर ही भीतर दुःखी था। वह नड़ियाद जाकर श्रीहरि तथा सम्प्रदाय की निन्दा करने लगा। यह सुनकर श्रीहरि नित्यानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी, महानुभावानन्द स्वामी आदि संतों से कहने लगे, 'आप जाकर उन वेदान्ताचार्य से पूछो तो सही कि आप हमारी निन्दा क्यों करते हैं? यदि आप दूसरी बार शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो आप अवश्य आ सकते हैं।'

संतों के साथ उनकी फिर एक बार नड़ियाद भेंट हो गई। नित्यानंद स्वामी ने वेदान्ताचार्य से पूछा, 'पंडितजी, अपनी पराजय के कारण लज्जित होकर आप अपनी मर्यादा स्वीकार क्यों नहीं करते? आप हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण की निन्दा क्यों करते हो? क्या यही आपका बाह्यधर्म है? पराजित होने पर भी आपका योग्य सम्मान किया गया था, श्रीहरि ने आप को दान से भी संतुष्ट किये। परन्तु मुझे लगता है कि आप बड़े कृतघ्नी हो। यदि हिम्मत हो तो हम आप के साथ काशी तक, जहाँ भी कहो, शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं।' नित्यानंद स्वामी की प्रखर विद्वत्ता को देखकर पंडित लज्जित हुए और संतों से क्षमायाचना की।

अहमदाबाद में पुनः प्रवेश

संवत् 1874 (सन् 1817) में अहमदाबाद और वीसनगर में पेशवाई सत्ता समाप्त हुई। अंग्रेजों ने एन्ड्रयुज डनलॉप को कलेक्टरपद पर नियुक्त किया। पदग्रहण से पूर्व ही उस क्षेत्र का पूर्ण विवरण मि.डनलॉप को बता दिया गया था। अंग्रेज अधिकारियों को श्रीहरि के विलक्षण प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव था। क्योंकि जहाँ भी स्वामिनारायण सत्संग समुदाय उपस्थित था, वहाँ कानून और प्रबंधन व्यवस्थित चल रहा था। सत्संगियों का व्यवहार भी उन्हें अपने अनुकूल प्रतीत हुआ था। ऐसे गाँवों में चोर, लुटेरे आदि असामाजिक व अपराधी लोगों का उपद्रव भी नहीं के बराबर हो गया था। ऐसे अनेक कारणवशात् मि.डनलॉप के मन में स्वामिनारायण सम्प्रदाय का

एक विशिष्ट चित्र अंकित हो गया था।

एक दिन कलेक्टर ने अहमदाबाद के एक सत्संगी को बुलाकर पूछा, 'क्या यहाँ स्वामिनारायण का कोई आश्रम, मठ अथवा मन्दिर है? स्वामिनारायण इस शहर में क्यों नहीं आते?' उस सत्संगी ने पुरानी घटनाएं सुनाई। उसे सुनकर मि.डनलॉप ने कहा: 'मेरी ओर से जाकर आप स्वामिनारायण से कहिए कि आप अब पुरानी बातों को भूलकर अहमदाबाद पधारिए और धर्मप्रचार का काम कीजिए।

श्रीहरि को जब यह संदेश मिला तो वे संतों तथा सशस्त्र काठियों के साथ अहमदाबाद की ओर चल दिए। यहाँ आने से पूर्व जेतलपुर गाँव की सीमा पर उन्होंने निवास किया। इस ओर एक द्वेषी कलेक्टर डनलॉप के कान भरने लगा कि स्वामिनारायण तो सशस्त्र काठी सैनिकों की सेना लेकर अहमदाबाद पर आक्रमण करने आ रहे हैं। वे अहमदाबाद को जीत लेना चाहते हैं, मेरी बात पर यदि विश्वास न हो तो आप स्वयं जेतलपुर जाकर देख सकते हैं। परन्तु कलेक्टर के मन पर इसका कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि वे श्रीहरि की लोकोत्तर महिमा को ठीक ढंग से जानते थे। फिर भी वे छः अंगरक्षकों के साथ चंडोला तालाब पर महाराज को निमंत्रित करने के लिए जा पहुँचे।

जेतलपुर में श्रीहरि ने आधारानन्द स्वामी को बुलाकर एक प्रसंग का रंगीन चित्र तैयार करने का आदेश दिया। उस चित्र में नायक के चेहरे पर किस प्रकार के भाव होने चाहिए यह भी श्रीहरि बताने लगे। तदनुसार स्वामी ने सुंदर चित्र तैयार कर दिया। महाराज ने उनसे कहा, 'यह चित्र कल सुबह साथ में ले लेना।'

दूसरे दिन संघ को लेकर श्रीहरि अहमदाबाद की ओर चल दिए। चंडोला तलाब के पास डनलॉप महोदय, श्रीहरि की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से धूलि का बवंडर और काठियों के कंधे पर चमकते भाले देखकर उनके मन में कुछ शंका अवश्य हुई, परन्तु महाराज का सौम्य मुखारविन्द एवं भक्तों के निर्दोषभावों को देखकर उनकी शंका जाती रही।

श्रीहरि उनके पास पहुँचे, घोड़ी से उतरकर उनसे मिले। डनलॉप ने भी अपनी टोपी उतारकर महाराज का अभिवादन किया और अपनी शंका व्यक्त

करते हुए कहा, 'मुझे कुछ देर तक ऐसा लगा कि विरोधियों के कथनानुसार आप चढ़ाई के लिए सशस्त्र सैन्य लेकर आये हैं, लेकिन आप को देखकर मेरे संशयो संपूर्ण समाधान हो गया।'।

श्रीहरि कहने लगे: 'हम तो इस विश्व का कल्याण करने आये हैं। हमारा शस्त्र है, यह नाम-जप की माला। हमारी लड़ाई आपस में क्यों होगी? हमारा किसी के भी साथ वैर क्यों होना चाहिए? ये सारे भक्त क्षत्रिय हैं, इसलिए वे अपने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार शस्त्र रखते हैं। ताकि असुर लोग तनिक सम्हलकर रहते हैं, हमारे निर्दोष संतों को त्रास देते हुए डरते हैं। हमारे ये सत्संगी शस्त्रों का दुरुपयोग कभी नहीं करते।'।

श्रीहरि संघ के साथ कांकरिया तालाब के किनारे पधारे। यहीं पर विशाल शामियाना तैयार किया गया था। श्रीहरि तथा संघ का निवास यहीं पर था। कलेक्टर डनलॉप श्रीहरि के साथ परामर्श के लिए बैठे। परन्तु श्रीहरि को लगातार देखते ही रह गए। आखिर उनसे रहा नहीं गया तो पूछने लगे, 'महाराज, मैंने आपके दर्शन इससे पहले भी कहीं किये हैं, ऐसा लगता है।' श्रीहरि ने तुरन्त आधरानन्द स्वामी के उस चित्र को मंगवाया और डनलॉप के हाथों में थमा दिया।

चित्र था, एक जंगल में भयानक शेर डनलॉप पर आक्रमण कर रहा था, और महाराज स्वयं उस शेर के आक्रमण से डनलॉप की रक्षा कर रहे थे। चित्र देखते ही डनलॉप के मन में वह घटना-चित्र कि एकबार शिकार के उनकी अपनी गलती के कारण एक भयानक शेर ने उन पर आक्रमण कर दिया था, उस समय उनके मुख से प्रार्थना फूट पड़ी। श्रीहरि ने उसी पल दिव्य देह धारण करके उसकी रक्षा की थी। उस समय तो इस दिव्य विभूति को वह अधिकारी पहचान नहीं पाया था, पर आज श्रीहरि को देखते ही अपने जीवनदाता की ओर उसने तीन बार अपनी टोपी उतारकर वह झुक-झुककर प्रणाम करने लगा।

उसने कहा, 'महाराज! अब आप को अहमदाबाद आने में किसी की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने सिद्धान्तों का अच्छी तरह प्रचार कर सकते हैं। हमारी ओर से आपको जो भी सहयोग चाहिए, अवश्य माँग लीजिएगा। आपको कोई भी कष्ट हो, तो हमें सूचित कीजिएगा। हम

आपको हर प्रकार अनुकूल होने का प्रयास करेंगे। आप हमारी रक्षा करते रहिएगा और दया रखिएगा। हमारा कल्याण कीजिएगा।' श्रीहरि ने उसको आशीर्वाद दिया। अब अहमदाबाद के हरिभक्तों को हमेशा के लिए सत्संग का सुख हो गया।

आणंद में अपमान

श्रीहरि वरताल में बिराजमान थे। आणंद के कुछ हरिभक्तों ने आकर महाराज से निवेदन किया, 'महाराज! कृपा करके आप आणंद पधारिए, हमारे घर पावन कीजिए।'

महाराज ने कहा, 'आणंद में द्वेषी लोग बहुत हैं, इस समय रहने दीजिए, भविष्य में कभी आएँगे।'

यह सुनकर हरिभक्त इतने दुःखी हुए कि उनकी आँखों में आँसू आ गये। वे गद्गद कंठ से बारबार आणंद पधारने के लिए महाराज से विनती करते रहे। उनका भाव देखकर श्रीहरि ने स्वीकृति दे दी।

संतों तथा शूरवीर काठी भक्तों का संघ लेकर श्रीहरि आणंद के लिए निकले। आणंद में हरिभक्तों ने यद्यपि रसोई तैयार की थी, परन्तु श्रीहरि ने आणंद पहुँचने से पूर्व पूरे संघ को अल्पाहार करवा दिया था। आणंद के हरिभक्तों ने गाँव की सीमा पर बड़े प्रेम से स्वागत किया। श्रीहरि ने संतों-हरिभक्तों के साथ आणंद में प्रवेश किया।

यह समाचार मिलते ही विरोधी मतपंथी लोगों का द्वेष भड़क उठा। उनको लगा, जैसे उनकी दाल-रोटी उनके हाथ से लूटी जा रही है! इन विरोधी मतपंथियों ने कुछ लोगों को कहलाया और बीच बाजार में महाराज का अपमान करने के लिए इकट्ठा किया।

महाराज ने पहले ही सबको आदेश दे दिया था कि क्षमा और धीरज से काम लेना। लाठियाँ, अपमान और तिरस्कार सहन करना। संघ के बीच बाजार में आते ही असुरों ने गालियाँ सुनाई, परन्तु महाराज के आदेशानुसार संघ संपूर्ण शान्त रहा। फिर तो गोबर, धूलि, कंकड़ और ढेले आदि उठाकर वे दुष्ट लोग संघ पर फेंकने लगे। भगुजी, दादाखाचर और नाजा जोगिया का खून खौल उठा। उनके हाथ तलवार पर पड़े, लेकिन श्रीहरि ने



उनकी ओर भी देख रहे थे। संकेत करके श्रीहरि ने उनको रोक दिया और आदेश दिया कि आप सबकुछ सहन करते रहो।

श्रीहरि और सारा संघ गाँव से निकलकर गुसाँई की जगह में बरगद के पेड़ के नीचे खड़ा रह गया। हरिभक्तों की रसोई वैसी ही पड़ी रही। महाराज बिना भोजन किए बाकरोल गाँव होते हुए वरताल आ पहुँचे।

संध्या के समय श्रीहरि ने सभी को इकट्ठा किया। सभा भरकर वे सभी को कहने लगे, 'आप सब व्यर्थ ही कुम्हला गए। हमने कितनी बड़ी बहादुरी की!'

काठियों ने कहा, 'क्या खाक बहादुरी की? ढेले खाये, गालियाँ खाई आपने हम शूरवीरों को ईंट के रोड़े खाने को विवश किया। यह समाचार यदि फैल गये तो हमें कोई सैन्य में भर्ती भी नहीं करेगा।'

श्रीहरि उनको कहने लगे, 'हमने सहन किया, सामना नहीं किया है, उससे हमारी शोभा बढ़ी है। अन्यथा कितना बड़ा कांड हो जाता! लोग घायल होते, कोर्ट कचहरी होती। परन्तु सहन करने के कारण हम अवश्य विजेता हुए हैं।'

इस घटना के बाद आणंद शहर के अग्रणियों ने सोचा, 'ऐसे निर्मत्सर संतों को एवं भगवान स्वामिनारायण को हमारे अज्ञानी और द्वेषी नागरिकों ने कष्ट दिया, यह बहुत ही बुरी बात है। हमे उनसे क्षमायाचना करनी चाहिए।' ऐसा सोचकर आणंद के वरिष्ठ नेता वरताल आ पहुँचे। उन्होंने महाराज से बार-बार क्षमायाचना की तथा दुबारा ऐसा नहीं होने का विश्वास दिलाकर नगर के द्वार हमेशा के लिए खोल दिये।

[18]

सद्गुरु बनाये

वड़ोदरा शहर उन दिनों छोटी काशी माना जाता था। वहाँ संस्कृत के कई विद्वान निवास करते थे। वरताल में श्रीहरि द्वारा पराजित हुआ वेदांताचार्य स्वामिनारायण सम्प्रदाय और श्रीहरि के प्रति अब भी द्वेष रख रहा था। वह वैरागियों के बहकावे में आकर तथा भ्रष्टबुद्धि के कारण ऐसा कहता फिरता था कि 'स्वामिनारायण, भगवान नहीं हैं, मैं वरताल में उनसे मिला था, वे तो कल्पित देव हैं और भोली-भाली जनता को बहकाते हैं। मैं शास्त्र-प्रमाणों से सिद्ध कर सकता हूँ कि उनका सम्प्रदाय कोई सम्प्रदाय ही नहीं है।'

वड़ोदरा के सत्संगियों ने जब यह सुना तो दुःखी होकर उन्होंने श्रीहरि को पत्र लिखा, 'है महाराज! यह वेदांताचार्य आपका बहुत बड़ा द्वेषी है। वह आपको पाखण्डी बताता है, तो आप ऐसे किसी विद्वान साधु को भेजिए, जो शास्त्रार्थ में उसे हरा सके। यहाँ राजा सयाजीराव बहुत सज्जन एवं न्यायी हैं, वे शास्त्रार्थ सुनकर निर्णय देने में समर्थ हैं। किसी विद्वान साधु को भेजने की हमारी विनती अवश्य स्वीकार कीजिएगा। पत्र पाकर महाराज मुस्कुराए और बोले, 'मुक्तानंद स्वामी! आप पढ़े-लिखे और अहंशून्य संत हो, आप वड़ोदरा जाइए और विद्वत् सभा को पराजित करके लौटिए।'

मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'महाराज! मुझ जैसे मामूली साधु से यह कार्य कैसे सिद्ध होगा? बड़े पेचीदा प्रश्नों के उत्तर मैं कैसे दे पाऊँगा?'

श्रीहरि ने कहा, 'आप ऐसी चिन्ता मत कीजिए। मेरे स्मरण के साथ उत्तर देते रहना। अपने आप स्फुरणा होती रहेगी। आपकी साधुता ही उनकी विद्वत्ता के सामने पर्याप्त रहेगी।'

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1875 के प्रसंग दिये गये हैं।

मुक्तानंद स्वामी वडोदरा पहुँचे। चातुर्मास के दिन थे। शास्त्रार्थ के लिए वे राजमहल की ओर जा रहे थे। उनको परेशान करने के लिए कुछ वैरागी रास्ते में खड़े थे। मुक्तानंद स्वामी तो बड़े भक्तिभाव से 'व्हाला रुमझुम करतां कान्, मारे घेर आवो ने' पद गा रहे थे। रास्ते में कोई मिल जाता, तो उसको झुककर नमन करते। उनकी निर्मानिता, चेहरे पर फेल रही साधुता और झुककर प्रणाम करने की विनम्रता, आदि देखकर वैरागियों की विरोधी वृत्ति शान्त होने लगी, वे परेशान करने की बात मानो भूल ही गये !

चर्चासभा का प्रारंभ हुआ। मुक्तानंद स्वामी ने वेदांताचार्य को वरताल की चर्चा का स्मरण कराया और पुनः वे ही प्रश्न पूछे जो महाराज ने पूछे थे। वेदांताचार्य भय के कारण पत्ते की भाँति काँपने लगा। उसने कबूल किया कि मैंने गलत बातें जोड़कर स्वामिनारायण के विरोध की बातें फैलाई थीं। महाराजा ने उसको उलाहना देकर अपने राज्य की सीमा से बाहर निकाल दिया। मुक्तानंद स्वामी की विजय हुई, अतः महाराजा ने कई दिन तक उनका सत्संग किया। वडोदरा के हरिभक्तों ने जब मुक्तानंद स्वामी की जीत का समाचार भिजवाया तो सारे संत और हरिभक्त प्रसन्न हुए। महाराज ने भी मुक्तानंद स्वामी की बहुत प्रशंसा की।

यह देख-सुनकर हर्यानन्द तथा निर्विकल्पानंद नामक दो साधु मत्सर से व्याकुल हो गये। कहने लगे, 'एक सभा जीती इसमें कौनसा शेर मारा है? यदि वहाँ हमें भेजते तो हम भी जीतकर लौट जाते। शेर बकरी को मार दे, उसमें कौन सा आश्चर्य ! यदि शेर शेर को मारे दे तो बात दूसरी है, उसीको जीत कहते हैं। वह पण्डित तो बेचारा बकरी था, उसको हराना कोई बड़ी बात नहीं।'।

यह सुनकर श्रीहरि अत्यंत उदास हो गये। उन्होंने कहा, 'देखो, ये दोनों अभिमान की मूर्तियाँ हैं, ऐसे अभिमानी व्यक्ति सत्संग में रह ही नहीं सकते।' महाराज मन ही मन में सोचते रहे, 'ऐसे स्वच्छन्दी साधु सबके साथ बराबर भाव रखते हुए बड़ों का आदर नहीं करते। उन पर किसी का अंकुश ही नहीं रहा! अब मैं ऐसों के साथ नहीं रहूँगा। मैं यहाँ से चला जाऊँगा, कहीं दूर एकान्त जंगल में जाकर रहूँगा।'।

महाराज ने उदासी ग्रहण की, उनका चेहरा निस्तेज हो गया। उन्होंने

खाना-पीना छोड़ दिया। वे आठों पहर एकान्त में एक कोठरी में रहने लगे। यह देखकर मोटीबा ने कहा, 'महाराज! आप उदास क्यों रहते हैं? हमसे कोई भूल हुई हो, आज्ञा भंग हुई हो, तो आप हमें प्रायश्चित्त के लिए कहें, लेकिन आप खाना-पीना आरम्भ कीजिए। प्रफुल्लित रहिए।'।

श्रीहरि ने कहा, 'मुझे यहाँ रहना ही नहीं है, मैं जंगल में जाकर रहना चाहता हूँ।' ब्रह्मानंद स्वामी, सुराखाचर आदि ने महाराज की उदासी दूर करने भगीरथ प्रयास किया, परन्तु हमेशा आनंदित रहनेवाले श्रीहरि आज प्रफुल्लित नहीं हो पाए। उन्होंने ने कहा, 'वनवास की बात के सिवा मैं तुम लोगों की कोई बात सुनना नहीं चाहता।'।

यह सुनकर सभी कहने लगे, 'महाराज! न आपको हम बन में जाने देंगे और न ही आपकी इस इच्छा को बढ़ावा देंगे। यहाँ से आपके चले जाने से हमारा क्या होगा? हम ऐसे ही रहना चाहते हैं, जैसी आपकी मरजी हो। परन्तु आप हमें छोड़ने की बातें मत कीजिए। आप यहाँ उत्सव करके हर प्रांत के हरिभक्तों को यहाँ बुलाइए। उनके सामने आप अपना वनवास का प्रस्ताव रखिए। सारा सत्संग यदि अनुमति देता है, तो आप अवश्य जा सकते हैं।'।

महाराज ने उनकी बिनती स्वीकार की और पत्र द्वारा उत्तर गुजरात के आदरज गाँव में सभी संतों और हरिभक्तों को आने का निमंत्रण दिया। वहाँ अन्नकूट के दूसरे दिन सभा में श्रीहरि ने अपना प्रस्ताव रखा: 'सुनिए अब हम सत्संग समुदाय में रहना नहीं चाहते। हमारा मन कहीं लगता नहीं है, सब कुछ छोड़कर मैंने जंगल में जाने का निर्णय ले लिया है।' यह प्रस्ताव सुनते ही कई संतों और हरिभक्तों को मूर्छा आ गई। वे भूमि पर गिर पड़े। स्त्रियों और पुरुषों की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं।

वरिष्ठ संतों ने कहा, 'महाराज! कलेजा दहलने लगा है। ऐसी बातें मत कीजिए, हमारी कोई भूल हो तो हम सभी आपके आदेश के अनुसार प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं। आप जैसा कहेंगे, वैसा व्यवहार करेंगे। आपको प्राप्त करने के लिए ही तो इन साधुओं ने संसार छोड़ा है, स्त्रियों ने आपकी भक्ति के लिए ही तो लोक-लाज कुल-मर्यादा छोड़ी है। ऐसी स्थिति में आप चले जाएँ तो इन सबका आश्रय स्थान कौन? मुँह में तिनका लेकर हम आप से क्षमा माँगते हैं, हमारा कोई भी अपराध हो तो

आप हमें क्षमा कर दीजिए और हमारे साथ ही रहिए। फिर भी यदि आप चले ही जाएँगे तो हम सब शरीर छोड़ देंगे और हिरन बनकर आपके पीछे पीछे बन में घूमेंगे।’

महाराज का हृदय दया से पसीजने लगा। उन्होंने कहा, ‘सत्संग का बहुत विस्तार हो गया है, साधुओं और हरिभक्तों की संख्या भी बढ़ गई है। अब कुछ उत्तरदायित्व आप को संभालना चाहिए। सत्संग की चिन्ता करनी चाहिए। यदि कोई छोटे-बड़े की मर्यादा नहीं रखता और ईर्ष्या करता है तथा समानता की आड़ में बड़ों का अपमान भी करता है, तो यह ठीक नहीं है। ऐसा वातावरण देखकर मैं ने यहाँ से जाने का विचार किया था, यदि कोई सत्संग का उत्तरदायित्व निभाने को तैयार हो, तथा सबके साथ उचित व्यवहार करा सके, किसी को कडुवे वचन कहकर भी सत्संग की प्रथाएँ निभा सके, ऐसे संतों को हम सत्संग के शीर्षस्थ स्थान पर रखेंगे उनके आदेशों का पालन करने की प्रतिज्ञा करेंगे, तभी हम यहाँ रहने की सोचेंगे, अन्यथा चले जाएँगे।’

संतों-भक्तों ने कहा, ‘महाराज! आप जिनको कहेंगे, उनकी आज्ञा में हम अवश्य रहेंगे, वे जो भी कहेंगे, हम उनकी आज्ञा का पालन करेंगे। लेकिन आप कृपया हमें छोड़कर चले जाने की बात न करें।’

श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी, नित्यानन्द स्वामी और परमचैतन्यानन्द स्वामी इन चार संतों को सद्गुरु पद पर नियुक्त किया। तथा सभी को इन चार सद्गुरुओं की आज्ञा में रहने का आदेश दिया अब भक्तों के मनमें आशा की किरण जगमगाई। सबके हृदय प्रसन्नता से नाचने लगे। महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने उदासी छोड़ दी और पूर्ववत् सबको सुख देने लगे। आदरज गाँव में महाराज ने संतों के लिए काष्ठ के भोजन पात्र और जलपान के लिए तुम्बी का निर्माण करवाया। संतों के लिए पत्तर और तुंबी की प्रथा श्रीहरि ने इस गाँव से प्रारम्भ की।

यहाँ से श्रीहरि वड़नगर, विसनगर, अहमदाबाद, अशलाली होते हुए जेतलपुर पधारे। उक्त चारो सद्गुरुओं के अतिरिक्त दूसरे आठ बड़े संतों को यहाँ पुनः सद्गुरुपद दिया। संतों की मण्डलियाँ बनाकर बारह सद्गुरुओं के अधिकार के नीचे मण्डलियों को बाँट दिया। सद्गुरुओं का उत्तरदायित्व बढ़

गया। हरिभक्तों की देखभाल तथा कथा-वार्ता करके उनको प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देने की सेवा सद्गुरुओं ने उठा ली। परिणाम यह हुआ कि सत्संग समाज व्यवस्थित हुआ और सत्संग में नियमन आने लगा।

साधुधर्म समझाया

चातुर्मास में हजारों हरिभक्त श्रीहरि के दर्शन करने के लिए गढ़डा आते थे। एक दिन हरिभक्तों का संघ सभा-समाप्ति के बाद लक्ष्मीवाडी से दादाखाचर के दरबार की ओर जा रहा था। रास्ते में एक जैन साधु अपने मन्दिर के बाहर बैठकर संघ की ओर देख रहे थे।

संघ में चलते हुए एक बच्चे ने भूल से इधर-उधर देखे बिना, उसी ओर थूक दिया। थूक के कुछ छींटे जैन साधु के शरीर पर पड़े। उस साधु ने भरी बाजार में हो-हल्ला मचा दिया और कहने लगा, 'स्वामिनारायण के शिष्य मुझ पर थूके और मेरा अपमान किया। हम इसे बरदाश्त नहीं करेंगे।' यह सुनकर उसके कुछ अनुयायी भी इकट्ठे होने लगे। कुछ अग्रणी जैन व्यापारियों ने तो पूरा बाजार बंद करने का फरमान जारी कर दिया।

सारे गाँव में यही चर्चा होने लगी। जब श्रीहरि के पास यह बात पहुँची तो उन्होंने तुरंत घटना की गहराई में जाकर जाँच की। जब इस छोटे बच्चे की गलती की बात सुनी, तो उसे पास बुलाकर प्रेम पूर्वक समझाने लगे कि हमें कहाँ नहीं थूकना चाहिए तथा किस स्थान पर जाकर थूकना चाहिए। लड़के के पिता ने लड़के की ओर से श्रीहरि तथा संघ की समायोचना की। परंतु तब तक तो पूरे शहर में हल्ला मच गया था।

श्रीहरि ने सोचा कि इस का उपाय तुरंत होना चाहिए। वे स्वयं उस जैन साधु के पास जा पहुँचे और बच्चे की ओर से क्षमायाचना करते हुए कहा, 'मैं उस बच्चे की ओर से आपके पास क्षमा का निवेदन लेकर आया हूँ। आप इसकी गलती को भूलकर बाजार खुलवा दीजिए।'

जैन साधु के मन का समाधान हुआ, वह अपना साधुधर्म भी समझा। इतना ही नहीं, उसने अपने अनुयायियों को भी समझाया। तुरन्त बाजार खुल गया। एक बच्चे की गलती के लिए सामान्य साधु की क्षमायाचना करने में श्रीहरि की कितनी विनम्रता का दर्शन होता है।

शिशुवत्सल प्रभु

एकबार श्रीहरि गढ़पुर में मुंडन करवा रहे थे। एक किसान का दस वर्षीय लड़का नाई से कहने लगा कि महाराज के मुंडन के बाद उनके कुछ बाल प्रसादी के रूप में मुझे अवश्य देना। नाई ने इस बात पर संमति जताई।

श्रीहरि का मुंडन शुरू हुआ। लड़का एक कोने में बैठकर बड़े भाव से श्रीहरि का दर्शन करने लगा। मुंडन समाप्त होते ही नाई अपना सामान समेटकर श्रीहरि के प्रासादिक बाल अपनी थैली में डालकर घर चला गया। उसके मन से लड़के की बात ही निकल गई थी। लड़का तो बाल न मिलने से सुबक-सुबक कर रोने लगा। उसके मन में बहुत बुरा लगा था। जब तक श्रीहरि स्नान करके तैयार न हुए तब तक बच्चा रोता रहा। अचानक श्रीहरि ने उसे रोते हुए सुना तो उसके पास जाकर मस्तक पर हाथ फैरकर धीरे से पूछने लगे, 'बेटा, क्यों रो रहा है?'

लड़के ने रोते हुए सारी बात बता दी। श्रीहरि मुस्कराकर कहने लगे, 'अरे, इतनी सी बात पर रो रहा है? इसमें रोने की क्या बात है? लो, मैं तुम्हें अपनी चोटी से बाल काट कर देता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने सेवक से छोटी-सी कैंची मंगवाई और कुछ बाल काट कर उसे दे दिये! लड़का प्रसन्न होकर चरणस्पर्श करके घर की ओर चला गया।

[19]

सहजानन्दी होना चाहिए

श्रीहरि के आदेशानुसार उनके साधु-समुदाय को बारह सद्गुरु संभाल रहे थे। सभी संत अपने मंडल के मुख्य सद्गुरु की छत्रछाया में रहकर श्रीहरि को प्रसन्न करने की आराधना कर रहे थे। परंतु इस व्यवस्था का एक दूसरा असर पैदा होने लगा। साधु परस्पर अपने-अपने सद्गुरु का नाम जोड़कर कहने लगे कि मैं मुक्तानन्दी हूँ, यह ब्रह्मानन्दी है इत्यादि।

श्रीहरि ने सोचा कि इस तरह तो संतों में एकता टूटने की संभावना बढ़ जाएगी। उन्होंने इस अनुचित रीति को सुधारने के लिए एक उपाय खोज निकाला। एक दिन उन्होंने एक उत्सव सभा के बाद एक-एक साधु को इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1876 के प्रसंग दिये गये हैं।

मिलकर पूछना प्रारंभ किया, 'आप किसके शिष्य?' सभी अपने-अपने सद्गुरुओं के नाम बता रहे थे, 'मैं ब्रह्मानंदी, मैं मुक्तानंदी, मैं नित्यानंदी।' यह सब सुनकर श्रीहरि ने सबको टोक दिया, 'अच्छा! तो यहाँ कोई मुक्तानंदी है, तो कोई ब्रह्मानंदी है, परन्तु कोई सहजानंदी भी है या नहीं? सारे सद्गुरु शिष्यों के समुदाय के साथ रहते हैं। एक केवल रहा मैं जो बिना शिष्य का रह गया!'

श्रीहरि की वक्रवाणी सुनकर साधुओं की आँखें खुल गईं। वे एक साथ बोल उठे, 'हे महाराज! हम तो आप ही के शिष्य हैं, आपकी आज्ञा के अनुसार हमें सद्गुरुओं के साथ रहकर सेवा कर रहे हैं। अन्यथा हम सब तो सहजानंदी ही हैं।'

उसके पश्चात् साधुओं की भिन्न भिन्न मण्डलों में बदली करने की प्रथा आरम्भ हुई। सभी सद्गुरुओं के साधुओं को बदल दिये।

[20]

श्रीहरि के प्राकट्य के छः हेतु

श्रीहरि सौराष्ट्र के छोटे-से कारियाणी गाँव में विराजमान थे। यहाँ वड़ोदरा से अष्टांगयोगी स्वामी गोपालानन्दजी श्रीहरि के दर्शन करने के लिए पधारे थे। उनका सत्कार करके श्रीहरि उनको अपने निवास-अक्षर कुटीर में ले गये। उनको अपने पास बैठाया। वहाँ उपस्थित संतों और हरिभक्तों को बाहर जाने का आदेश दिया। इन संतों में निष्कुलानन्द स्वामी भी उपस्थित थे। श्रीहरि ने कहा, 'आप भी बाहर जाइए। दरवाजे के पीछे चौकड़ी के पत्थर गढ़ने का काम कीजिए।' इतना कहकर अक्षर कुटीर का दरवाजा स्वयं बंद कर दिया। निष्कुलानन्द स्वामी को जिज्ञासा हुई कि ऐसी कौन-सी बात है कि श्रीहरि एकांत में गोपालानन्दजी से बताने जा रहे हैं। उन्होंने द्वार की दरार में झाँककर देखा तो श्रीहरि अपने इस सिद्ध संत को पृथ्वी पर अपने प्राकट्य के छः हेतु समझा रहे थे, जो इस प्रकार थे :

- (1) अपनी सर्वोपरि उपासना तथा सर्वोपरि ज्ञान का संसार में प्रचार करना।
- (2) भूतपूर्व अवतारों के भक्तों को अपनी उपासना और अपने स्वरूप का

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1877 के प्रसंग दिये गये हैं।

बोध करा कर उन्हें अक्षरधाम में पहुँचाना।

- (3) भक्तिदेवी और धर्मदेव को असुरों के त्रास से मुक्ति दिलाकर अपनी मूर्ति का सुख देना।
- (4) बहुत समय से लुप्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्ययुक्त भक्ति सहित एकान्तिक धर्म की प्रवृत्ति करवाना।
- (5) अनन्त काल से साधना करने वाले तपस्वीगण एवं योगियों को दर्शन देकर तप और भक्ति का फल देना तथा भगवान के प्रति प्रीति रखनेवाले मुमुक्षुओं के मनोरथ पूर्ण करना।
- (6) इस पृथ्वी पर एकान्तिक धर्म के धारक संतों, उपासना के लिए शिखरबद्ध भव्य मन्दिरों तथा हमारे लीला-चरित्र के ग्रंथ का निर्माण करना स्वधर्म-ज्ञान से युक्त शास्त्रों का निर्माण करना और परात्पर अक्षरधाम की प्राप्ति करवाने के लिए परम एकान्तिक संतों के द्वारा आत्यन्तिक कल्याण का मोक्षमार्ग इस ब्रह्माण्ड में हमेशा के लिए स्थिर रखना।

श्रीहरि ने दीपावली के उत्सव तक कारियाणी में निवास किया। दिवाली की रात को वे सभा में उपस्थित हुए। भक्तों ने उनकी चारों ओर दीपमाला जगमगाई थी। उसी समय दीवबंदर से एक भाविक महिला हरिभक्त प्रेमाबाई श्रीहरि के लिए विभिन्न प्रकार के मूल्यवान वस्त्र अलंकार तथा छत्र, चामर, एवं पादुकाएँ लेकर अर्पण करने के लिए आ पहुँचीं। उनका भक्तिभाव देखकर श्रीहरि ने स्वयं उसके सामने जाकर सभी पदार्थ ग्रहण किए परंतु उनका तो सहज स्वभाव ही था कि वे अच्छे पदार्थों का परिग्रह नहीं करते थे। उन्होंने उसी पल उपयोग करके सभी मूल्यवान पदार्थ पंडित दीनानाथ भट्टजी को कृष्णार्पण कर दिए। उस समय ईर्ष्या करनेवालों के लिए श्रीहरि ने निर्मानीभाव से रहकर ईर्ष्या और मत्सर मिटाकर भक्ति करने का उपदेश दिया।

लोया में शाकोत्सव

श्रीहरि कार्तिक मास में नागड़का तथा लोया पधारे। यहाँ वे प्रायः संघा पटेल अथवा सुराखाचर के दरबार भुवन में निवास करते थे। सुरा भक्त के

दरबारभुवन के चौक में श्रीहरि संतों के साथ नीमवृक्ष के नीचे उपदेश देते रहते थे। यहाँ उन्होंने दो महीने तक निवास किया। उस समय उन्होंने गाँव-गाँव से संतों को यहाँ बुला लिया था। एक दिन उन्होंने शाकोत्सव मनाने का निश्चय किया। नीम के पेड़ के नीचे एक ओर पाँच बड़े चूल्हे खुदवाये थे। महाराज स्वयं बैठकर बड़े-बड़े पाँच बरतनों में पचास मन बैंगन का साग बारह मन घी में छौंककर बनाते थे और स्वयं ही सबको परोसते थे। इसी गाँव में उन्होंने वसन्तपंचमी का उत्सव मनाया, रंग खेले और अन्तिम बार लोया में साठ मन बैंगन का साग बनाकर विशाल पैमाने पर शाकोत्सव किया।

वसन्तपंचमी के उत्सव में रंग से खेलते हुए उन्होंने संतों को अत्यंत प्रसन्न किया। संध्या के समय गाँव में कुछ कठपुतली के खेल दिखानेवाले आये थे। उनके खेल देखकर श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और उन लोगों को कहने लगे, 'आप लोगों ने कठपुतली के दूसरे खेल तो बताए परंतु मैं रुक्मिणी विवाह का प्रसंग नहीं दिखाया।' मण्डली के नायक ने यह सुनकर पुतलियों की डोरी अपनी अंगुलियों पर बाँध ली। उसने कठपुतलियों को नचाने का प्रयास किया, परन्तु आज तो पुतलियाँ हिली तक नहीं! नायक ने श्रीहरि का चरण स्पर्श करके कहा, 'महाराज! आप तो भगवान हैं, ये पुतलियाँ तो क्या, हमारे सबके नाड़ी-प्राण भी आपके हाथ में हैं। संसार के सारे प्राणी आपके इशारे से नाचनेवाली पुतलियाँ हैं। कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करें।' श्रीहरि ने तुरंत उसकी ओर दृष्टि की, उस नायक की अंगुलियाँ तुरंत हिलने लगीं। महाराज पुतलियों के खेल देखकर प्रसन्न हुए। इसी घटना के आधार पर ब्रह्मानन्द स्वामी ने 'नेण कटारी नेण कटारी सलूणा श्यामनी रे' इस पद की रचना की।

माह मास की पूर्णिमा को चंद्रग्रहण था। ग्रहण-मुक्ति के बाद महाराज संघ को लेकर भद्रा नदी में स्नान के लिए पधारे। बाद में नदी के किनारे पर सभा में बिराजमान हुए। एक अमीर परंतु अहंकारी स्त्री ने श्रीहरि को एक अँगरखा अर्पण करके आग्रह किया कि इसे अभी पहनो।

उस स्त्री का हठाग्रह देखकर श्रीहरि ने पूछा, 'इसे कब तक पहनूँ?'

'जब तक फटे नहीं, तब तक इसे पहनते रहना।'

श्रीहरि ने कहा, 'ठीक है, लाइए।' उन्होंने जैसे ही अँगरखा पहना और पूरी शक्ति से अंग मरोड़ा कि अँगरखा तनकर फट गया! स्त्री की समझ में आ गया कि अहंकार मिश्रित सेवा कभी श्रीहरि के हृदय तक पहुँचती नहीं हैं।

भाइयों का मिलन

श्रीहरि के पूर्वाश्रम के छोटे भाई इच्छारामजी अयोध्या से गुजरात पधारे थे। संतों ने जब उनके आने की सूचना दी थी तब श्रीहरि संतों और भक्तों को भोजन परोस रहे थे। इच्छारामजी का नाम सुनकर श्रीहरि एक शब्द भी नहीं बोले। अपने सेवा कार्य से निपटकर वे तुरंत संघा पटेल के घर अपने निवासस्थान पर चले गये। मुक्तानन्द स्वामी, इच्छारामजी को लेकर श्रीहरि के पास पहुँचे। श्रीहरि के दर्शन करते ही वे अपनी सुधबुध खो बैठे। उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू झर रहे थे। 'भैया! भैया!' कहकर वे दौड़ते हुए श्रीहरि के चरणारविन्द में गिर गये। 'घनश्याम भैया! भैया! भैया!' की पुकार लगातार सुनाई देने लगी।

श्रीहरि ने अपने चरण छुड़वाकर धीरे से पूछा, 'कौन हो आप?' परन्तु इच्छारामभाई प्रेममग्न होकर कहे जा रहे थे कि 'भैया घनश्याम! घनश्याम! आप हमें छोड़कर क्यों चले गए थे?' मुक्तानन्द स्वामी, तथा नित्यानन्द स्वामी इच्छारामभाई को स्वस्थ करके समाचार पूछने लगे। दो भाइयों के इस मंगलमिलन को देखकर उनकी आँखें भी हर्षाश्रु से भीग गईं। कुछ देर तक किसी को कुछ भी बोलने की सुध नहीं थी। अंत में मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'महाराज! आपके छोटे भाई इच्छारामजी आये हैं।' परन्तु वे कुछ भी नहीं बोले। मुक्तानंद स्वामी और नित्यानंद स्वामी ने श्रीहरि का हाथ पकड़ कर आसन पर बैठाया और भाई को उनके पास ले आये।

नित्यानन्द स्वामी ने कहा, 'महाराज! आप तो भगवान हैं, सब के प्रेम को ठुकराकर अनासक्त भाव से गृहत्याग करके निकल जाना, आपके लिए तो सहज है परंतु ये तो आपके प्रेम के पुजारी हैं। इनका इतने सालों के विरह का अन्त हुआ, अतः इनका हृदय भर आता है। आप अपना मौन तोड़कर इनके साथ तनिक प्रेम से बोलो तो सही! क्या आप भी हमारी तरह त्यागाश्रमी हैं?'

तब श्रीहरि गंभीर स्वर में कुछ पुरानी बातें याद करने लगे।

संतों के बहुत आग्रह करने पर वे इच्छारामजी से मिले। वे तो बड़े प्रेमभाव से श्रीहरि के गले लिपट गये। कितना अद्भुत था, वह मिलन!

इच्छारामजी ने बताया कि वे मायाजितानन्द स्वामी के साथ छपिया से यहाँ कैसे पहुँचे।

पाँच दिन के बाद श्रीहरि के पूर्वाश्रम के बड़े भाई रामप्रतापजी भी आ गए। सुरा खाचर आदि भक्तमंडल ने संतों के साथ गाँव की सीमा तक जाकर गाजे-बाजे के साथ रामप्रतापभाई का स्वागत किया। रामप्रतापजी तो श्रीहरि का अनन्य प्रभाव देखकर सोचते ही रह गए कि जिसे हमने घर में साथ रहकर भी नहीं पहचाना, उनको इतनी दूरी पर गुजरात के हरिभक्तों ने पहचान लिया!’

लोया में श्रीहरि के पास पहुँचकर उन्होंने महाराज के दर्शन किये। वर्षों की विरह वेदना और अन्तर का असीम प्रेम आँसुओं के रूप में पिघल कर बह रहा था। वे अपनी भुजाओं के आश्लेष से महाराज को छोड़ नहीं पा रहे थे। वे बोले, ‘घनश्याम! सबके प्रेम को ठोकर मारकर तुम क्यों चले गये? कभी किसी को याद भी नहीं किया?’ श्रीहरि शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे।

इस सुंदर घटना को देखकर संतों-भक्तों के रोम, रोम प्रफुल्लित हो रहा था।

पंचाला में बीमारी

माघ मास के उतरते ही श्रीहरि गढ़पुर पधारे। वहाँ कुछ दिन रहकर फूलदोल के उत्सव के लिए वे पंचाला पधारे। वहाँ पूर्णिमा के दिन श्रीहरि पन्द्रह हाथ के घेरे वाली बाँह वाला जामा पहनकर गरबी में घूमे और जितने संत थे, उतने स्वरूप धारण करके आधी रात तक रास खेलते रहे।

पंचाला में झीणाभाई के दरबार में भक्तों को अनेक दिव्य लीलाओं से आनंद लेकर वे संघ के साथ गोपी तालाब के किनारे पर पहुँचे। स्नान के बाद उन्होंने देखा तो वहाँ की मिट्टी चन्दन जैसी थी। श्रीहरि ने उस मिट्टी से कुछ गोलियाँ बनवाई और कहा, ‘संतों, लीजिए ये गोटियाँ। आज

से इसे चंदन समझकर अपने भाल प्रदेश में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करने का प्रारंभ करें।' परंतु कुछ भक्तहृदयी संत तो इसे महाराज की प्रसादी समझकर खा गए!

परंतु कुछेक संत दूसरे दिन अलग अलग प्रकार के तिलक लगाकर सभा में उपस्थित रहे। उन्हें देखकर श्रीहरि मुस्कुराने लगे। उन्होंने अचानक गुणातीतानंद स्वामी को अपने पास बुलाया और उनके मस्तक पर स्वयं ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करके श्रीहरि ने कहा, 'ये हैं हमारे तिलक' इतना कहकर कहने लगे कि, 'मेरे समान कोई भगवान नहीं है और इनके समान कोई संत नहीं है।'।

उस समय मांगरोल से आणंदजी संघेड़िया (खरादी) संतों के लिए बड़ी मात्रा में काष्ठ के भोजनपात्र और तुम्बे लेकर वहाँ आ पहुँचे। जिन संतों के पास ऐसे पात्र नहीं थे अथवा जिनके पात्र टूट चुके थे उनको पात्र तथा तुम्बे दिए गए। आज से श्रीहरि ने सभी संतों को आदेश दिया कि 'अब वे भोजन करने के लिए काष्ठ के पात्र का ही उपयोग करें तथा तुम्बे में जल भरकर भोजन के पात्र में एक अंजली डालकर भोजन का आरंभ करें।'।

फाल्गुन शुक्ला एकादशी का जागरण करके श्रीहरि ने सभीको अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराकर बिदा दी।

चैत्र मास का प्रारम्भ हुआ। श्रीहरि एक दिन संतों तथा भक्तों से कहने लगे, 'आप लोग हमारे परिवार के सदस्यों को हमारे पास क्यों ले आये? परिवार का सम्बंध छोड़कर जो त्यागी हुआ है, उसको परिवार का मोह नहीं रखना चाहिए। अब तो हमारी देह अधिक दिनों तक टिकने वाली नहीं है।' इतना कहकर उन्होंने भारी उदासीनता ग्रहण कर ली। वे बीमार हो गए। उन्होंने किसी से मिलना-जुलना बंद कर दिया।

सूराखाचर यह समाचार जानकर शीघ्रतापूर्वक श्रीहरि के पास पहुँचे। उस समय वे खोखरा तालाब के किनारे पर मुंडन करवा रहे थे। महाराज के दर्शन के लिए वे उस ओर जाने लगे। उन्हें अपनी ओर आते देखकर श्रीहरि ने अपने पास न आने के लिए संकेत किया। सूराखाचर श्रीहरि का शरीर तथा बीमारी देखकर बच्चों की तरह रोने लगे। उनकी प्रेम भक्ति देखकर श्रीहरि द्रवित हो गये। उनकी आँखों में से भी अश्रुधारा बहने लगी।

जिस जगह महाराज के प्रेमाश्रु गिरे, उस स्थान पर आज एक जलाशय है, जिसे 'बिन्दु सरोवर' कहा जाता है।

श्रीहरि के स्वास्थ्य के लिए कई उपचार किये गये, पर कुछ परिणाम नहीं निकला। तब मुक्तानंद स्वामी प्रार्थना करने लगे कि 'हे महाराज! यदि आप ऐसा सोच रहे हैं कि मुझे इस नश्वर शरीर को छोड़कर अपने अक्षरधाम में चले जाना है, तो हमारी विनती यह है कि मामूली बाबा वैरागी भी छोटा-बड़ा मठ या मन्दिर का निर्माण करके अपनी निशानी छोड़ जाते हैं। जबकि आप पुरुषोत्तम नारायण संसार में पधारे और अपनी विभूति रूपी निशानी न छोड़ गए तो आपकी मृत्युलोक की यात्रा निष्फल नहीं होगी क्या?'

इस परामर्श के बाद श्रीहरि ने भव्य मंदिरों के निर्माण एवं सम्प्रदाय की स्थापना करने का संकल्प किया।

उन्होंने झीणाभाई से कहा, 'आप थाल तैयार करवाएँ तो हम स्वस्थ हो जाएँगे।' झीणाभाई ने थाल करवाया। श्रीहरि ने भोजन करते ही बीमारी का त्याग किया। स्वस्थ होकर वे गढ़डा के लिए निकल पड़े।

[21]

अपना वृत्तान्त

श्रीहरि के समाज-सुधार एवं धर्म-सुधार से तत्कालीन लोकजीवन में आमूल परिवर्तन आने लगा था। उनके साधु-परमहंसों के आगे अन्य वैरागी तथा संन्यासी निस्तेज लग रहे थे। कई पाखंडी वैरागियों के मठ बन्द होने लगे थे। जनसमुदाय में सत्य धर्म के प्रति रुझान बढ़ रही थी। परंतु श्रीहरि के अहिंसायुक्त यज्ञों के प्रचार से कुछ ब्राह्मण अप्रसन्न भी हो रहे थे। समाज के तथाकथित शासक तथा कुछ उच्च वर्ण के स्वार्थी लोग श्रीहरि के प्रति दुर्भाव रखने लगे थे। समाज के ऐसे असंतुष्ट लोगों ने श्रीहरि के बारे में अनेक प्रकार से मनगढ़ंत बातें फैलाना प्रारंभ कर दिया था। महाराज की लोकोत्तर महत्ता को सहन नहीं कर पाने के कारण अनेक ब्राह्मणों और वैरागियों ने केवल विरोध के लिए ही ऐसा प्रचार आरम्भ किया था कि -

'स्वामिनारायण भगवान नहीं हैं, वे जादूगर हैं, उन्होंने बाबरा नामक भूत को वश में किया है। इसलिए भोले-भाले लोग उनके पीछे-पीछे घूमते हैं। वे ब्राह्मण परिवार से नहीं हैं, अतः उनको यज्ञ आदि करने का

कोई अधिकार नहीं है। वे तो मोची जाति के हैं। इसलिए काठी, कोली, कुनबी, बढई, लोहार, मोची आदि निम्न जाति के लोगों के साथ घूमते रहते हैं।' हालाँकि ऐसी काल्पनिक बातों पर श्रीहरि तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। परंतु इस कुप्रचार के कारण परमहंसों के प्रचार-कार्य में अवश्य कठिनाइयाँ पैदा होती थीं। कुछ परमहंसों और हरिभक्तों ने श्रीहरि से निवेदन किया, 'प्रभु! वड़ोदरा में शोभराम शास्त्री और राजकारोबारी चीमनरावजी जनार्दन का ब्राह्मणों पर अच्छा वर्चस्व है। आप पत्र द्वारा दोनों को अपना वृत्तान्त लिख भेजिए, इससे वे ब्राह्मणों को वास्तविकता से अवगत करा सके और कुप्रचार रुक जाए।'

अनुयायियों के भाव-आग्रह से संवत् 1878 (सन् 1821) पौष शुक्ला द्वितीया बुधवार को श्रीहरि ने उन दोनों पंडितों को निम्नानुसार पत्र लिखा।

'गढ़पुर से स्वामी सहजानन्दजी का जय स्वामिनारायण पढ़िएगा। परमहंसों द्वारा भेजा गया आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपने लिखा है कि आपके सत्संग की निष्ठा हमारे हृदय में दृढ़ हुई है, परंतु आपके समान दक्षिणी लोगों में हमारी जाति और सम्प्रदाय के विषय में अनेक प्रश्न अनुत्तरित रहे हैं। इसी कारण कई लोगों के हृदय शंकाओं से आशंकित हैं। ऐसे संशयों की निवृत्ति के लिए हम अपनी जन्मभूमि, जाति और सम्प्रदाय के विषय में सत्य हकीकतें इस पत्र के द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं।

'उत्तर भारत में अयोध्या का प्रदेश सरवार प्रदेश कहलाता है। वहाँ मनोरमा नदी के किनारे पर मखौटा तीर्थ के उत्तर की ओर करीब एक मील की दूरी पर छपिया नाम का एक गाँव है। वही हमारी जन्मभूमि है। छपिया गाँव हमारे मामा की जमीनदारी का गाँव है। उसमें हरिप्रसाद पांडे नामक सरवरिया सामवेदी ब्राह्मण के घर हमारा जन्म हुआ। उनका सावर्ण गौत्र है, कौथुमी उनकी शाखा है। भार्गव, वैतहव्य और सावेतस नामक उनके तीन प्रवर हैं। हम उनकी ही संतान हैं। हमारे पितामह को सिरनेत्र राजा ने इटार गाँव उपहार के रूप में दिया था, इसलिए वे 'इटार के पाण्डे' कहे जाते हैं।

बाल्यावस्था के बाद माता-पिता के देहोत्सर्ग के बाद हम भारत भर में तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े हैं। विचरण करते हुए हम द्रविड़ प्रदेश इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1878 के प्रसंग दिये गये हैं।

में तोताद्रि नामक तीर्थस्थान में पहुँचे, तो वहाँ के जीयर स्वामी नाम के त्रिदण्डी संन्यासी से हमारी भेंट हुई। उनके शिष्य होकर हम चक्रांकित हुए। वहाँ से निकलकर हम गुजरात में गिरनार पर जा पहुँचे। वहाँ रामानन्द स्वामी से मिलन हुआ। उन्होंने हमें नरनारायण देव की उपासना बताई तथा हमें परमहंस की दीक्षा दी।

आत्मानन्द स्वामी ने अपने गुरु गोपालानन्दजी¹⁰ से उद्धव आदि गुरु सम्प्रदाय का जो रहस्य प्राप्त किया था वह उन्होंने हमारे गुरु श्री रामानन्द स्वामी को दिया और उन्होंने हमको दिया। इस प्रकार हमारा सम्प्रदाय उद्धव सम्प्रदाय कहलाता है। जिस प्रकार उद्धव अपना परिवेश रखते थे और ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करते थे, उसी प्रकार हम और हमारे साधु बरतते हैं। हमारे परम गुरु, उद्धव भक्तिदीक्षायुक्त परमहंस हैं। हम जिस गृहस्थ को ज्ञान का उपदेश देते हैं, उसको पंच पदार्थ के त्याग का नियम देते हैं। मांस, मद्य, परस्त्री संग, चोरी और अशुद्ध आहार-विहार इन पाँचों का त्याग कराकर अहिंसा धर्म की ओर उनको अग्रसर करते हैं।

दूसरी बात है कि परमहंसों की संहिता रूप श्रीमद्भागवत पुराण, महाभारत के शान्तिपर्व में स्थित मोक्षधर्म और भगवद्गीता ये ग्रंथ हमारे उद्धव सम्प्रदाय में मान्य हैं। इन ग्रंथों में बताये गये आचरण का हम और हमारे साधु पालन करते हैं। इस प्रकार हमारा यह सम्प्रदाय विशुद्ध है। इस विषय में यदि न्यायदृष्टि से देखा जाए तो पता चलेगा कि हम गलत सिद्ध नहीं होंगे। यदि आप लोगों से कोई शास्त्री या पौराणिक इस विषय में पूछे तो सारी बातें स्पष्ट बता देना और उन लोगों को यह पत्र पढ़कर सुनाना। विशेष में काशी के शास्त्री एवं जोशी झुमखराम को हमारा जय स्वामिनारायण कहना। उनको भी यह पत्र पढ़वाना। सुज्ञेषु किं बहुना।'

नरनारायण देव की प्रतिष्ठा

संवत् 1876 (सन् 1819) कार्तिक कृष्णपक्ष में श्रीहरि वरताल से अहमदाबाद पधारे। कलेक्टर डनलॉप श्रीहरि के दर्शन के लिए पधारे। उन्होंने

10. ये गोपालानन्द स्वामी, आत्मानन्द स्वामी के गुरु थे।

कहा, 'महाराज! इतने बड़े शहर में आप अपना कोई मठ या मन्दिर क्यों नहीं बनवाते? आप कृपया यहाँ भी अपना स्थान बनवाइए, जिससे आपके साधुओं का सुखपूर्वक निवास हो, जहाँ आप धूमधाम से उत्सव मना सकें। अहमदाबाद में आपको जितनी भूमि चाहिए, मैं आपको दे सकता हूँ।' श्रीहरि ने अनेक स्थलों पर मुलाकात ली। अंततः नवावास में पाठकवाड़ी नामक जगह पसंद करके कलेक्टर से कहा, 'यदि वह जगह मिले तो वहाँ मंदिर निर्माण करके हम नरनारायण देव की प्रतिष्ठा करेंगे।' उस समय में 99 वर्ष के पट्टे पर भूमि देने की प्रथा थी। परंतु डनलॉप ने ताम्रपत्र पर लिखकर हमेशा के लिए वह भूमि श्रीहरि के चरणों में समर्पित कर दी।

सब से पहले श्रीहरि ने संतनिवास के लिए एक धर्मशाला का निर्माण करवाया। तत्पश्चात् आनंदानंद स्वामी को शिखरबद्ध मन्दिर के निर्माण के लिए आदेश दिया।

उन्होंने पत्थर में से एक शिखरीय मन्दिर का निर्माण किया। मन्दिर तैयार होते ही उन्होंने श्रीहरि को पत्र द्वारा सूचित किया। उन्होंने तुरंत निमंत्रण पत्रिका तैयार करवाई और संवत् 1878 (सन् 1821) के फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन बड़ी धूम-धाम से वैदिक विधि के अनुसार अपने ही हाथों से नरनारायण देव की मूर्ति-प्रतिष्ठा की। प्रथम आरती के बाद श्रीहरि ने कहा, 'आगे चलकर यहाँ तीन शिखरीय मन्दिर का निर्माण करना।' इस प्रकार सत्संग के इतिहास में अहमदाबाद शहर में सर्वप्रथम शिखरबद्ध मंदिर का निर्माण हुआ। नरनारायणदेव की प्रतिष्ठा के बाद श्रीहरि ने शहर के समस्त ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प किया। लेकिन धन के अभाव में ऐसा ब्रह्मभोज संभव नहीं था। श्रीहरि ने कहा, 'कोई सेवाभावी भक्त मिल जाए, तभी यह संकल्प पूर्ण हो सकता है।' किसी ने लालदास गोरा नामक एक सेठ का नाम बताया। उनको बुलाकर श्रीहरि ने कहने लगे, 'हमें ब्रह्मभोज से ब्राह्मणों को तृप्त करना है। उसके लिए क्या आप धन का प्रबंध कर पाओगे?' उन्होंने कहा, 'प्रभु! इसके लिए मुझे अपनी पत्नी से पूछना पड़ेगा।'।

सेठजी ने अपनी पत्नी से पूछा तो वह कहने लगी, 'धर्मकार्य में मेरी सम्मति की क्या आवश्यकता है? रुपए भगवान के हैं, भगवान के काम

आ रहे हैं और भगवान स्वयं उसे माँग रहे हैं, तो सोचने-पूछने की आवश्यकता ही क्या है? अभी, इसी समय दे दीजिए।' लालदासजी ने तुरंत सात हाज़ार रुपए की थैलियाँ बैलगाड़ी में भरकर श्रीहरि के चरणों में अर्पण कर दी। श्रीहरि ने व्यवस्था का आरम्भ कर दिया। घुड़सवारों को भेजकर जेतलपुर गाँव तक अनेक ब्राह्मणों को निमंत्रण भेज दिया गया। पूरे सौराष्ट्र और कच्छ से आये हुए हज़ारों हरिभक्त तो अभी उपस्थित ही थे।

फाल्गुन शुक्ला पंचमी से कांकरिया तालाब के किनारे पर सारी व्यवस्था की गई थी। ब्राह्मण आने लगे। चूरमे के लड्डू, दाल, भात, साग, सेव और भुजिया की रसोई तैयार हुई। ब्राह्मणों तथा हरिभक्तों ने भोजन किया। अंत में श्रीहरि भोजन के लिए पधारो। तत्पश्चात् सभा में हरिभक्तों ने श्रीहरि का पूजन प्रारंभ किया, अपनी शक्ति अनुसार वे भेंट अर्पण करने लगे। जब कोठारी ने वह रकम गिना तो सात हाज़ार रुपए और पचास पैसे का हिसाब हुआ। श्रीहरि मुस्कुराने लगे, फिर लाधा ठक्कर से कहा, 'इसमें से लालदासजी के रुपये लौटा दो।' अब रह गई केवल अठन्नी! लाधा ठक्कर मज़ाक में कहने लगे, 'यह तो गढ़पुर तक जाने की खर्चा तक नहीं निकला!' श्रीहरि कहने लगे, 'जब हम आपके साथ हैं तो ऐसी व्यर्थ चिंता क्यों करते हों?'

उसी दिन संध्या के समय श्रीहरि अहमदाबाद से जेतलपुर आ पहुँचे। यहीं पर श्रीहरि ने मानसिक उदासी ग्रहण कर दी। उनका शरीर बुखार से तपने लगा। दूसरे दिन वे थोड़ा सा भोजन करके विचरण के लिए निकल पड़े। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को कोठ गाँव के पास गणेश धोलका नामक स्थान पर पहुँचे। मन्दिर में दाहिनी ओर की सूँड़वाले गणपति की सूँड़ पर हाथ फिराया। खिरनी के पेड़ के नीचे कुछ देर तक विश्राम किया। उन्होंने अपनी सारी वृत्तियाँ अन्तस्तल में समेटकर उदासीनता धारण कर ली। मन से सारे संकल्पों-विकल्पों को विराम दे दिया। उन्होंने कहा था कि हमने उस प्रकार वृत्तियाँ समेट ली थी कि जैसे कांकरिया तालाब पर गए ही नहीं थे, तथा यज्ञ-मेला-ब्रह्मभोज आदि कुछ हुआ ही नहीं था! ऐसा सांख्यज्ञान करने पर उनकी मानसिक बीमारी का निवारण हुआ...

‘हमको कैसा कहेंगे?’

संध्या ढल रही थी। श्रीहरि गढ़पुर में वासुदेवनारायण के कमरे के बाहर सभा में बिराजमान थे। उस समय चर्चा चल रही थी कि श्रीहरि को राजास्वरूप भगवान कहना चाहिए अथवा साधुस्वरूप भगवान? यह सुनते ही श्रीहरि ने एक सुंदर चरित्र किया। अपनी देह से आभूषण निकालकर वे साधुओं की ओर फेंकने लगे और वस्त्र उतारकर स्त्रियों की ओर फेंकने लगे। यह देखकर ब्रह्मानन्द स्वामी ने पूछा, ‘महाराज! आप भी विचित्र हैं, आप हमारी ओर तो आभूषण फेंकते हैं। वे हमारे किस काम के? और स्त्रियों की ओर आप कपड़े फेंकते हैं, उनको ये कपड़े किस काम के? आपने दिया तो सही, परंतु ऐसा दिया कि किसी के काम तक नहीं आये।’ सभी हँसने लगे।

कुछ देर के बाद श्रीहरि ने अपनी एक ओर राजा के वस्त्र पहने तो दूसरी ओर साधु के धारण किए। नीचे की ओर एक पैर में जामा पहना तो ऊपर की ओर भगवा कपड़ा ओढ़ लिया। उनके एक हाथ में माला थी, तो दूसरे हाथ में तलवार। सिर पर पगड़ी पहने हुए श्रीहरि ने कहा, ‘अब आप मुझे कैसे कहोगे? मैं राजारूप भगवान हूँ या साधुरूप?’ तब सभी कहने लगे, ‘महाराज, आप न तो राजा हैं, ओर न साधु।’ तब श्रीहरि ने कहा, ‘अपने जैसे तो केवल हम एक ही हैं। पहले जो हो गये वे अवतार थे और हम अवतारी हैं।’ श्रीहरि के उपदेश का मर्म हर कोई समझ गया। सभी ने मिलकर अपने हृदय में निश्चय किया कि वास्तव में ये तो अवतार के अवतारी हैं।

बन्दर ने माला घुमाई

श्रीहरि गढ़डा से रामनवमी के लिए वरताल पधारे। एक दिन शाम को धारू तालाब के किनारे सभा में बिराजमान थे। वहाँ एक बन्दर कूदता फाँदता वहाँ आ पहुँचा। उसकी ओर देखकर कुछ काठियों ने मार्मिक भाषा में कहा, ‘महाराज, रामचन्द्रजी की सेना में क्या ऐसे ही बन्दर थे? ऐसे बन्दर क्या हथियार लेकर लड़े होंगे?’ महाराज ने कहा, ‘ऐसे ही बन्दरों ने भगवान के

प्रभाव से सामर्थ्य पाया था और युद्ध में लड़े थे।' काठियों ने कहा, 'अच्छा तो इस बन्दर के द्वारा भी कोई दैवी क्रिया आप करवाइए न!'

श्रीहरि ने अचानक एक बन्दर पर दृष्टि की। तुरन्त कूदकर सभा के बीच आ गया और वन्दन करके महाराज के सामने बैठ गया। महाराज ने उसी पल इसके हाथ में माला थमा दी। वह बन्दर स्वस्तिक आसन में बैठकर 'स्वामिनारायण' मंत्र का जाप करने लगा और माला घुमाने लगा। इसके उपरान्त वह रामचरितमानस की चोपाइयाँ भी बोलने लगा।

उसे देखकर काठी बोले, 'यह तो वास्तव में आश्चर्य है, परंतु महाराज, बन्दरों ने इतनी छोटी सी देह से गन्धमादन जैसा महान पर्वत कैसे उठाया होगा?' श्रीहरि ने उस बन्दर के सामने देखा, तो उसने धीरे-धीरे विशाल रूप धारण कर लिया और हाथ में गन्धमादन पर्वत उठाकर आकाश में उड़ता हुआ अदृश्य हो गया। सब इस घटना को देखते ही रह गये।

रामनवमी के बाद श्रीहरि ने वरताल में तीन शिखरीय विशाल मन्दिर का शिलान्यास किया। वहाँ अपने ही हाथों से अपनी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का उनका निश्चय था। गुजरात के हरिभक्तों ने खुलकर दान किया। मन्दिर-निर्माण के काम में महाराज ने ब्रह्मानन्द स्वामी, अक्षरानन्द स्वामी और आनन्दानन्द स्वामी की नियुक्ति की।

नींव की खुदाई शुरू हुई। सबके साथ श्रीहरि भी मिट्टी के टोकरे अपने सिर पर उठाकर सेवा करने लगे। तीस ईंटें उनके द्वारा भी ढोई गईं। सेवा ही उनका जीवन था और विनम्रता ही उनकी प्रकृति।

सहजानन्दरूपी सूर्य

दूर-सुदूर विचरण कर रहे संतों को श्रीहरि ने जूनागढ़ जिले के पंचाला गाँव में निमंत्रित किया। यहाँ उन्होंने पुष्पदोलोत्सव का भव्य आयोजन किया था। जितने संत रास खेल रहे थे उतने ही स्वरूप धारण करके श्रीहरि ने भी उनके साथ रास खेल कर अति अपार आनंद दिया। इस अवसर पर उन्होंने सारे गाँव को भोजन के लिए निमंत्रित किया। जब सभी भोजन करके तृप्त हुए तब श्रीहरि ने पूछा, 'कोई खाने में रह तो नहीं गया?' व्यवस्थापक संतों ने कहा, 'महाराज, घर-घर जाकर पूछ लिया गया है। अब तो कोई भोजन

लेने में बाक़ी नहीं रहा।’

परन्तु श्रीहरि ने बहती नदी के उस पार कुछ मैले-कुचैले कपड़ों में घूमते लोगों को देखा तो पूछा, ‘वे कौन हैं? क्या उन लोगों को भोजन खिलाया?’ कुछ लोग कहने लगे, ‘प्रभु! ये तो जंगल में रहने वाले वाघरी हैं। उन लोगों को भला कौन खिलाता?’

श्रीहरि की आंखों में करुणा की आर्द्रता छा गई। उन्होंने कहा, ‘क्या सूर्य केवल पुण्यशाली लोगों के लिए ही निकलता है? बरसात भी पापी और पुण्यशाली दोनों के लिए बरसता है, पापी या पुण्यशाली में उन्हें कोई भेद नहीं होते। उसी प्रकार आज सहजानन्दरूपी सूर्य उदित हुआ है। हमें तो सभी का कल्याण करना है। जाइए, उन्हें बुलाइए। हम उनको भी भोजन देकर तृप्त करेंगे।’

हरभक्तों ने नदी के उस पार जाकर वाघरियों को भोजन के लिए बुला लिया। श्रीहरि स्वयं ने उन्हें भोजन परोसने के लिए पधारे। वे आज श्रीहरि की कृपा से कृतार्थ हुए। अन्तकाल में उन्हें श्रीहरि का स्मरण होने लगा श्रीहरि ने उनका भी कल्याण किया।

[22]

भुज में मूर्तिप्रतिष्ठा

अहमदाबाद में नरनारायण देव की प्रतिष्ठा करके श्रीहरि विचरण करते हुए गढ़डा पहुँचे। कच्छ से पधारे हुए कुछ हरिभक्तों ने उनके चरणों में निवेदन किया, ‘हे महाराज! आप कच्छ में भी ऐसा विशाल मंदिर निर्माण करें। हम हर तरह की सहायता करेंगे।’

उनका उत्साह देखकर श्रीहरि कहने लगे: ‘यह वास्तव में सुंदर विचार है। हम भुज नगर में मंदिर-निर्माण के लिए वैष्णवानन्द स्वामी को भेज रहे हैं, जो तुम्हारी हर तरह से सहायता करेंगे।’

देखते ही देखते भुजनगर में मंदिर का निर्माण हो गया। भक्तों के भक्तिभाव को देखकर श्रीहरि मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए संतों भक्तों के साथ कच्छ के लिए चल दिए।

श्रीहरि के साथ काठी दरबारों ने अश्वों पर सवारी की थी, संतों ने इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1879 के प्रसंग दिये गये हैं।

पैदल चलना आरंभ किया था। लगभग डेढ़सौ बैलगाड़ियों में हरिभक्त बिराजमान थे। पन्द्रह-बीस बैलगाड़ियाँ खाने की सामग्रियों से भरी थीं। भुज में श्रीहरि का निवास हीरजीभाई के घर किया गया।

संवत् 1878 (सन् 1822) वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन भुजनगर में श्रीहरि ने धूमधाम से नरनारायण देव की प्रतिष्ठा की। सारे कच्छ प्रदेश में श्रीहरि का जय-जयकार हो गया। यहाँ वे कई वर्षों के बाद पधारे थे, इसलिए स्थानिक हरिभक्तों के मन में आनंद फुहारें उड़ रही थीं। यहाँ से हलवद, चोटीला, नागड़का और लोया होकर श्रीहरि गढ़पुर आ पहुँचे।

[23]

हमारा जड़भरत

गढ़पुर में जन्माष्टमी के उत्सव में मुक्तानन्द स्वामी रचित कृष्णपद गाये गए। दिवाली और अन्नकूट का भी उत्सव भी यहीं मनाया गया। धनत्रयोदशी से लेकर अन्नकूट तक प्रतिदिन प्रातःकाल और रात्रि के समय श्रीहरि वासुदेव नारायण के कमरे के समक्ष बिराजमान होते थे। उनके आस-पास में सेवक संत दीपमाला से दिव्य वातावरण का निर्माण करते थे। रंगोली रचना, दीपावली के स्वरचित पदों का गान करना, अन्नकूट रसोई तैयार करना आदि सेवा में संत-हरिभक्त हमेशा तत्पर रहते। श्रीहरि दूध दुहने के समय वहीं जाकर उपस्थित रहते। कभी-कभी वे स्वयं जाकर पशुशाला में दूध दुहने बैठ जाते? संध्या के समय लक्ष्मीवाड़ी में अश्व विद्या के खेल खेलकर काठी हरिभक्तों को प्रसन्न करते।

इस वर्ष अन्नकूट का उत्सव भव्यता से सम्पन्न हुआ। भोजन के समय पर श्रीहरि ने आदेश दिया कि 'छोटे-छोटे संत पंक्ति में परोसने के लिए तैयार रहें और बड़े संत भोजन अंगीकार करे उसके बाद भोजन के लिए बैठें।' श्रीहरि स्वयं आज जलेबी लेकर संतों की पंक्ति में परोसने के लिए पधारे!

सर्दी के दिन शुरू हुए। मार्गशीर्ष महीना की ठंड पूरे मुल्क को थर्रा रही थी। गढ़पुर में एक हरिभक्त श्रीहरि के लिए एक मोटा सा कम्बल कंगल ले आये। वह इतना खुरदरा था कि शरीर को डंक की भाँति चुभता

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1880 के प्रसंग दिये गये हैं।

भी था। थोड़े से घर्षण से त्वचा लाल हो जाती थी। फिर भी श्रीहरि उस हरिभक्त के भाव का स्मरण करके हमेशा वही कम्बल ओढ़ा करते थे।

अनेक संतों ने युक्तिपूर्वक श्रीहरि से वह कम्बल माँगने की कोशिश की थी। किन्तु श्रीहरि उनको दूसरा कम्बल दिलवा देते-परन्तु वह मोटा और खुरदरा कम्बल किसी को नहीं देते।

पूर्णिमा का दिन था। प्रातःकाल श्रीहरि कथा कर रहे थे। उस समय एक हरिभक्त एक सुन्दर और महीन शाल लेकर आया।

उस समय मुक्तानंद स्वामी ने गुणातीतानंद स्वामी से कहा, 'महाराज का वह मोटा सा खुरदरा कम्बल अभी महाराज से माँग लीजिए।'

गुणातीतानंद स्वामी ने भी अवसर देखकर श्रीहरि से कहा, 'महाराज, आप के लिए यह सुंदर और कोमल शाल ठीक रहेगी; अब आप वह मोटा सा कम्बल मुझे देने की कृपा करें।'

श्रीहरि पहले तो देने से मना कर दिया परन्तु मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'महाराज! यह निर्गुणानंद स्वामी¹¹ जड़भरत की तरह हैं, उनको यह कम्बल वैसे भी बहुत पसंद है। यदि आप उन्हें दे दें, तो बहुत अच्छा रहेगा।' श्रीहरि ने हँसकर कहा, 'लीजिए यह कम्बल! आप ही तो हमारे जड़भरत हैं।' इतना कहकर उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी को वह कम्बल ओढ़ा दिया।

धर्मकुल से मिलन

मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष में श्रीहरि कारियाणी पधारे। यहाँ किसी हरिभक्त ने आकर श्रीहरि को खबर दी कि धर्मकुल के कुछ सदस्य आप के दर्शन के लिए पधार रहे हैं।

महाराज घोड़ी पर सवार होकर समढ़ियाला गाँव के निकट शमी वृक्ष के नीचे पधारे। जहाँ आज स्मृति के लिए एक चबूतरा तैयार किया गया है।

आज अयोध्या से रामप्रतापभाई की पत्नी सुवासिनी, इच्छारामभाई की पत्नी वरियालीबाई तथा उनके पुत्र रघुवीरजी एवं अयोध्याप्रसादजी श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे।

11. गुणातीतानन्द स्वामी का दूसरा नाम निर्गुणानन्द था।

बत्तीस वर्षों के बाद देवर-भौजाई का मिलन हो रहा था। सुवासिनी भाभी की आँखों से आनंद के हर्षाश्रु बह रहे थे। वे सोचती थीं कि यह स्वप्न तो नहीं है ?

कारियाणी में सभी श्रीहरि की अक्षरकुटीर पर पहुँचे। श्रीहरि ने सभी का कुशल समाचार पूछा। भाभी से क्षमा-याचना की। आज तो भाभी की खुशी का ठिकाना नहीं था। जब श्रीहरि भोजन करने बैठे, तब कई वर्षों के बाद उन्होंने श्रीहरि को परोसने का अवसर उठा लिया।

कितने सालों के बाद भाभी की भक्ति सफल हुई। उनकी सेवा के फलस्वरूप उन्हें पुनः श्रीहरि की सेवा और दर्शन प्राप्त हुए। बत्तीस वर्षों के बाद उनकी आँखों से आनंद की अश्रुधारा बह रही थी।

‘यह कीचड़ नहीं चन्दन है’

श्रीहरि ने प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव वरताल में मनाया। वहाँ मंदिर-निर्माण का सेवाकार्य चल रहा था। संत और हरिभक्त अत्यन्त परिश्रम पूर्वक मंदिर निर्माण की सेवा कर रहे थे। उनको प्रोत्साहित करने के लिए श्रीहरि कुर्सी पर बैठकर सभी का मार्गदर्शन करते थे। उनकी प्रेरणा, बल तथा प्रोत्साहन से हर कोई अत्यन्त उत्साह से सेवा कर रहे थे। एक दिन उनकी सेवाभावना से प्रसन्न होकर श्रीहरि ने कहा, ‘आप लोग कितना परिश्रम कर रहे हैं ! हम आप सभी को एक के बाद एक गले मिलना चाहते हैं।’

यह सुनकर स्वामी भक्तिप्रियानंदजी ने कहा, ‘लेकिन प्रभु, हमारे शरीर तो कीचड़ से सने हुए हैं।’

तब श्रीहरि ने हँसते हुए कहा, ‘यह कीचड़ नहीं, यह तो चन्दन है !। आइए, जिनके शरीर कीचड़ से भरे हैं, उनको गले लगाएँ !’ यह कहकर जो लोग सेवा कर रहे थे, ऐसे संतों-हरिभक्तों को श्रीहरि ने गले लगाकर बार-बार आशीर्वाद दिया।

उस समय गुणातीतानंद स्वामी दूर खड़े थे। श्रीहरि ने कहा, ‘स्वामी आप भी आइए।’ स्वामी ने तुरन्त कहा, ‘परन्तु महाराज ! मेरा शरीर तो कीचड़ से सना हुआ नहीं है।’ उनकी सरल और निर्दोष प्रकृति देखकर श्रीहरि और भी प्रसन्न हुए और उनको गले लगाकर आशीर्वाद दिया।

[24] वरताल में लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा

वरताल में मंदिर पूर्ण हो गया। स्वामी अक्षरानंदजी ने मूर्तिप्रतिष्ठा का मुहूर्त निकलवाकर श्रीहरि को वरताल आने के लिए निमंत्रण भेज दिया। श्रीहरि ने मयाराम भट्ट के कथनानुसार संवत् 1881 (सन् 1825) कार्तिक शुक्ला द्वादशी का प्रतिष्ठा-मुहूर्त तय करके संतों-हरिभक्तों को निमंत्रण-पत्र भेज दिये।

उचित समय पर श्रीहरि वरताल आ पहुँचे। पाँच दिन के यज्ञ के साथ वैदिक विधि के अनुसार मूर्ति-प्रतिष्ठा उत्सव सम्पन्न हुआ। यहाँ श्रीहरि ने सर्वप्रथम 'हरिकृष्ण' नाम से अपनी ही मूर्ति की अपने ही हाथों से स्थापना की। यह उनके भगवत्स्वरूप का एक और अद्वितीय प्रसंग है।

प्रतिष्ठा के बाद श्रीहरि ने प्रत्येक मेमार एवं शिल्पकार पारितोषिक अर्पण किए।

सूरत में पधरावनी

वडताल में सूरत के प्रेमी हरिभक्त पधारे थे उनके प्रेमाग्रह को ध्यान में रखकर श्रीहरि ने कार्तिक कृष्णा द्वितीया को सूरत जाने के लिए प्रस्थान किया।

रघुवीरजी, अयोध्याप्रसादजी, शोभाराम शास्त्री, नित्यानंद स्वामी, भगवदानंद स्वामी आदि विद्वान संत तथा अन्य विशिष्ट हरिभक्त श्रीहरि के साथ जा रहे थे। रास्ते में बोचासण गाँव में रात्रि विश्राम किया। श्रीहरि ने यहाँ स्वामी माधवदासजी को कहा, 'आप पुनः वरताल जाकर परमहंसों को साथ लेकर सीधा सूरत पहुँचे।' श्रीहरि बोचासण से भरुच होकर नाव के द्वारा नर्मदा पार करके सुरत आ पहुँचे। तापी नदी के उस पार ठीक किनारे पर रुस्तम बाग में श्रीहरि का निवास था।

कार्तिक कृष्णा सप्तमी का दिन था। सूरत के हरिभक्त श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। हरिभक्तों ने सोच लिया था की शहर में श्रीहरि का स्वागत धूम-धाम से करना चाहिए। उन्होंने शहर के शूरवीर कोतवाल तथा पारसी भक्त खान अरदेशरजी का भी संपर्क कर लिया था। उन्होंने श्रीहरि इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1881 के प्रसंग दिये गये हैं।

को एक पत्र लिख भेजा की 'हम हमारे सूरत शहर में आपका स्वागत करने के लिए आपके पास आएँगे। आशा है, आप हमारा यह स्वागत तथा सम्मान स्वीकार करेंगे।'

संध्या के समय निष्कुलानंद स्वामी ने रुस्तम बाग में इमली की डाली पर सुन्दर झूला बाँधकर श्रीहरि को झुलाया। संतों-हरिभक्तों की सभा में श्रीहरि उपदेश देते हुए कहने लगे, 'हरिभक्तों को परस्पर एक-दूसरे का माहात्म्य समझना चाहिए। आप सब ध्रुव, प्रह्लाद और अम्बरीष के समान भक्त हैं, इसलिए परस्पर दोष नहीं देखना चाहिए। किसी से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। हरएक के साथ मैत्री और ऐक्य से व्यवहार करें। तभी सत्संग में विक्षेप नहीं होगा।

'हे संतो! आप एक-दूसरे की बराबरी मत करना। छोटे-बड़े की मर्यादा का पालन करना। नियम-धर्म में दृढ़ रहना। आचार-विचार की शुद्धि रखना। हरिभक्तों से कभी कुछ भी माँगना नहीं। आवश्यकता पड़ने पर अपने मण्डल के सद्गुरु तथा महंत से माँगना। वे जिसके पास योग्य होगा, उस के द्वारा आवश्यक पदार्थ मँगवाकर दिला देंगे। रात-दिन कथावार्ता, भजन, सेवा और संतसंगत में ही समय बिताना।'

दूसरे दिन पारसी अरदेशर कोतवाल, उनके भाई पीरुशा, भालचन्द्र सेठ, हरगोविन्द पटेल, जगजीवन महेता, लक्ष्मीचन्द सेठ, दयाराम मारफतिया, माणेकचन्दभाई आदि बड़े बड़े हरिभक्त, संघ के साथ विलायती बैन्ड-बाजे लेकर स्वागत-यात्रा के रूप में आ पहुँचे। श्रीहरि माणकी घोड़ी पर सवार थे। बड़े परमहंस रथ में बिराजमान थे। रघुवीरजी और अयोध्याप्रसादजी पालकी में उपस्थित थे। शोभायात्रा बड़ी धूमधाम से संपन्न हुई। श्रीहरि ने आज सूरत नगर को पुनः पावन किया।

एकादशी के दिन सूरत के शास्त्रियों के साथ श्रीहरि के परमहंसों के शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। परमहंसों की विजय होने पर भी श्रीहरि ने प्रतिपक्षी विद्वानों को दक्षिणा-वस्त्र आदि देकर हृदयपूर्वक सम्मानित किया।

सूरत जिले के न्यायाधीश मि. एन्डरसन ने श्रीहरि को अपने घर पधारने का निमंत्रण दिया। श्रीहरि उनकी संतों-भक्तों के साथ उनके घर पधारे। एन्डरसन ने अपनी हॉट उतारकर श्रीहरि का अभिवादन किया। गुलाब के

पुष्पहार एवं पुष्पगुच्छ अर्पण किया। आनेवाले भक्तों के वस्त्र पर इत्र छिड़क कर, सभी को काजू-बादाम आदि थाल अर्पण किया। श्रीहरि ने प्रेरक बातें कही। तत्पश्चात् मि. एन्डरसन ने दादाखाचर एवं मुक्तानंद स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा, 'आप लोगों ने डभाण में यज्ञ का भव्य आयोजन किया था, तब संवत् 1867 (सन् 1809) मेरी मुलाकात स्वामिनारायण महाराज से हुई थी। उस समय ये युवा और कृशकाय थे। अब कुछ पुष्ट मालूम पड़ते हैं। कई वर्षों के बाद आज मुझे उनके दर्शन का अवसर मिला। आप उनकी अच्छी तरह देखभाल रखिएगा। क्योंकि उनके जैसे महापुरुष की इस देश को बहुत आवश्यकता है।'

एन्डरसन के पड़ोसी मि. जेवन की बिनती से श्रीहरि उनके घर भी पधारे। उन्होंने श्रीहरि को इत्र की एक बोतल तथा एक विदेशी रूमाल भेंट किया। उनको प्रेरक उपदेश देकर, श्रीहरि अपने निवासस्थान पर पधारे। आज अरदेशर कोतवाल ने श्रीहरि के साथ प्रश्नोत्तर करके सत्संग की विशेष दृढ़ता प्राप्त की। श्रीहरि ने भी उनको अपने भगवत्स्वरूप का परिचय करवाया।

मार्गशीर्ष द्वितीया को श्रीहरि पुनः नगर के बाहर रुस्तम बाग में पधारे। यह बाग उस समय से नारायण बाग के नाम से प्रख्यात होने लगा। सभा के बाद अरदेशर कोतवाल ने श्रीहरि से निवेदन किया, 'आप स्वयं खोदाई है, अहुरमझद हैं। हमने सुना है कि रामचन्द्रजी ने भरत को पूजा करने के लिए अपनी पादुका दी थी, उसी प्रकार आप भी अपनी कोई चीज प्रसादीरूप में देने की कृपा करें, जिससे मैं प्रतिदिन आपका स्मरण करते हुए आपकी पूजा कर सकूँ।' अरदेशरजी की शुद्ध हृदय की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने उनको अपने सिर से पगड़ी उतारकर दे दी। किसी कंगाल को जैसे सोने का चरु मिल जाए उतनी प्रसन्नता अरदेशरजी के चेहरे पर झलकने लगी। आज भी वह पगड़ी उनके वंशजों ने सम्हाल कर रखी है।

करसनदास और जगजीवनभाई ने उसी समय श्रीहरि को नई पगड़ी अर्पण की। श्रीहरि संघ के साथ गढ़पुर जाने के लिए निकल पड़े।

गढ़पुर में उन्होंने वसंतपंचमी का उत्सव किया तथा अष्टमी के दिन दादाखाचर के विवाह के अवसर पर भटवदर जाने के लिए प्रस्थान किया।

श्रीहरि ने केवल यही सोचकर दादाखाचर का विवाह रचा था कि ऐसे भक्त की वंश-परम्परा अखंडित रहे। वे माघ शुक्ला दशमी के दिन दादाखाचर का विवाह भटवदर के ठाकुर नागपालजी की पुत्री जसुमती के साथ रचाकर वे गढ़डा लौट आये।

बिशप रेजिनाल्ड हेबर से भेंट

ईसाई मजहब के प्रचारक तथा ख्रिस्ती मिशन के अग्रणी रेवरंड बिशप रेजिनाल्ड हेबर कलकत्ता और उत्तर भारत में ईसाइयत का प्रचार करने के लिए नियुक्त हुए थे। वे सन् 1825 में भारत भ्रमण के दौरान गुजरात आ पहुँचे। यहाँ बड़ौदा के कलक्टर विलियम्सन से मिले। उन्होंने बिशप हेबर को श्रीहरि के विलक्षण समाज-सुधार के कार्य की अपार महिमा सुनाई।

विलियम्सन ने कहा, 'स्वामिनारायणजी ने गुजरात में बहुत ही सुन्दर कार्य किया है। धर्मसुधारक एवं समाजसुधारक के रूप में उनकी लोकप्रियता पूरे गुजरात में चरम पर है। इसका पता मुझे बड़ौदा आने के बाद मिला। उनकी उपदेश-कला सरल एवं प्रेरक है। उनका धर्मोपदेश हमारे किसी शास्त्रों की अपेक्षा उच्चतर है। वे विशुद्ध आचरण एवं स्त्रियों के प्रति मानपूर्वक पवित्र दृष्टि से देखने का उपदेश देते हैं। चोरी तथा हिंसा का निषेध करते हैं। जिन बुरे से बुरे गाँवों, जिलों और प्रदेशों में उन्होंने कार्य किया है, वहाँ की जनता आज सबसे अधिक सदाचारी है, तथा नियम-कानून और व्यवस्था में अनन्य है।'

यह सुनकर बिशप हेबर के हृदय में उत्कंठा जाग उठी कि मुझे भी स्वामिनारायण महाराज को शीघ्र ही मिलना है। अंततः उन्होंने श्रीहरि के पास अपना संदेश भिजवाया।

वे डभाण में विराजमान थे। मिठाई का दोना और पुष्पमाला आदि के साथ श्रीहरि ने छः हरिभक्तों को बिशप हेबर के पास वासद गाँव में भेजा। उन्होंने बिशप साहब को पुष्पमाला अर्पण करके मिठाई का दोना भेंट दिया। बिशप साहब उनको देखते ही विस्मित रह गए। क्योंकि उन्होंने सुना था कि विभिन्न जाति के लोग भारत में एक साथ नहीं रह सकते और वे एक दूसरे के

खून के प्यासे रहते हैं। लेकिन यहाँ तो वैश्य, काठी, कोली, राजपूत, रावत और मुसलमान जाति के छः भक्त तिलक-टीका लगाए हुए अत्यंत विनम्रता से उनके सामने खड़े थे। परस्पर विरोधी स्वभाव एवं संस्कार वाले ये विभिन्न जाति के लोगों को एकसाथ देखकर वे कुतूहल पूर्वक पूछने लगे, 'क्या आप सभी स्वामिनारायण के भक्त हैं? आप अलग-अलग जाति के होने के बावजूद सब एकसाथ मिलकर कैसे रह सकते हैं?'

भक्तों ने कहा, 'हम स्वामिनारायण के भक्त हैं और भिन्न भिन्न जाति के होने के बावजूद हम उसी प्रकार रहते हैं जैसे हम एक-दूसरों के परिवारजन हो। हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण ने हमें सिखाया है कि एक-दूसरे को भाई मानकर प्यार और बंधुत्व की भावना से व्यवहार करना सीखो। हम उसी प्रकार रहते हैं।' (बिशप हेबर लिखित 'नेरेटिव ऑफ जर्नी थ्रु द अपर प्रोविन्सीस ऑफ इन्डिया', पृष्ठ-107)

बिशप के लिए यह बात कल्पना से परे थी। विभिन्न जाति के लोगों को एकजुट देखकर उनको निश्चय हो गया कि वास्तव में स्वामिनारायणजी का कार्य महान है। प्रजा के हृदय में इस तरह के भ्रातृभाव का सिंचन करना



वास्तव में अत्यंत कठिन है। जिन्होंने इस कठिन कार्य को सहज ही संपन्न किया, वे गुरु सचमुच महान ही होंगे। बिशप ने पूछा : 'महाराज क्या वे हमसे मिलने के लिए आएँगे ?'

हरिभक्तों ने कहा, 'अवश्य, वे कल ही सुबह ग्यारह बजे नड़ियाद पधारेँगे और आपकी उनके साथ मुलाकात हो जाएगी।' बिशप यह सुनकर प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन दि. 26-3-1825, रविवार को श्रीहरि तीन सौ संत-हरिभक्तों के साथ नड़ियाद आ पहुँचे। हरिभक्तों में पचास बंदूकधारी पदाति थे तथा अन्य हरिभक्तों का संघ भी बहुत बड़ा था। इतने विशाल समूह को देखकर बिशप चकित हो गये। उन्होंने बड़े सम्मान के साथ श्रीहरि का स्वागत किया, झुककर अभिवादन भी किया। हाथ मिलाकर उन्होंने काली सीसम की कुर्सी पर श्रीहरि को आसन दिया। श्रीहरि ने सभी भक्तों को भूमि पर बैठने का संकेत किया।

श्रीहरि के दिव्य व्यक्तित्व से तथा उनके प्रति आत्मसमर्पित श्रद्धालु भक्तसमूह को देखकर बिशप मन ही मन अपनी ओर श्रीहरि की तुलना करने लगे। उन्होंने अपने ग्रंथ में लिखा है कि जब मैंने स्वामिनारायण के अंगरक्षक भक्तों की सेना देखी तो मुझे मेरे अंगरक्षक दिखाई दिए। वे मेरी रक्षा तो अवश्य करते हैं परंतु केवल वेतन भोगी की तरह! वे मुझे पहचानते तक नहीं और न ही मेरी परवाह करते हैं। जबकि स्वामिनारायणजी के अंगरक्षक भक्त अवैतनिक एवं आत्मसमर्पित हैं। वे स्वेच्छापूर्वक उनको अपने भगवान समझकर उनकी भक्तिपूर्वक सेवा-शुश्रूषा करते हैं। धार्मिक ऊँचाई की दृष्टि से हम दोनों में कितना बड़ा अन्तर है !'

कुछ पलों के बाद बिशप ने पूछा, 'महाराज! आपको असुविधा न हो तो अपना सिद्धान्त हमें समझाइए।'

श्रीहरि अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने लगे, 'परमेश्वर हमेशा एक ही है। उन्होंने ही सृष्टि का सृजन किया है। वे ही सर्वाधार हैं, वे ही हृदयेश्वर हैं, सर्वव्यापी हैं। उन परमेश्वर को हम हिन्दू 'परब्रह्म' कहते हैं। उनके कई अवतार हो चुके हैं। उस परब्रह्म के अवतार को कोई कृष्ण कहता है, तो कोई सूर्य कहता है। वह मैं ही हूँ।'

बिशप ने इतना सुना ही था कि उनकी वृत्तियाँ श्रीहरि के स्वरूप में आकृष्ट हो गईं। वे बाइबल की एक प्रति श्रीहरि को देना चाहते थे, परन्तु वह हिन्दी या गुजराती में न होने के कारण नहीं दे सके। श्रीहरि ने शिक्षापत्री की एक प्रति और एक चित्रप्रतिमा उनको भेंट के रूप में दी। बिशप के मन में श्रीहरि के दर्शन के बाद इतना तो स्पष्ट हो गया कि इस देश में जब ऐसे महापुरुष जन्म लेते रहेंगे, तब तक उनको ईसाई मूल्यों की कोई आवश्यकता नहीं है। ये इस देश की जनता को भारतीय परंपरा के मूल्यों से ऐसे महापुरुष सुसंस्कृत करते रहेंगे।

द्वारिका की गोमती वरताल में

उस समय भी लोग बड़ी संख्या में द्वारिका की यात्रा के लिए जाते थे। उत्तर में बदरी-केदार, पूर्व में जगन्नाथपुरी, दक्षिण में रामेश्वर की यात्रा के साथ पश्चिम में द्वारिका की यात्रा धर्म प्रेमियों के लिए अनिवार्य थी। सारे देश के तीर्थों की यात्रा पैदल करने पर भी यदि द्वारिका की यात्रा न की हो तो उसकी यात्रा अधूरी समझी जाती थी। द्वारिका में गोमती स्नान करके लोग अपने बाहु पर तप्त मुद्रा लेते थे, द्वारिकाधीश के दर्शन करते थे। तभी द्वारिका की यात्रा परिपूर्ण मानी जाती थी। उस समय वह यात्रा कष्टसाध्य थी, मार्ग में चोर-लुटेरों का भय था, दुष्ट वैरागियों का त्रास भी कम नहीं था। द्वारिका के प्रवेशद्वार पर गुगली ब्राह्मण बिना सुवर्णमुद्रा की दक्षिणा लिए तप्त मुद्रा नहीं देते थे। इस प्रकार अकिंचन यात्री के लिए परेशानियों का अंबार लगा था। ऐसा ही कटु अनुभव धर्मकुल के साथ द्वारिका की यात्रा पर गये सच्चिदानंद स्वामी को भी हुआ था।

श्रीहरि ने जब वरताल में लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा की तब कहा था कि द्वारिका की तरह यह भी बहुत बड़ा तीर्थस्थान होगा।' हरिनवमी से पूर्व श्रीहरि चैत्र शुक्ला सप्तमी के दिन वरताल पधारे। गुजरात के विभिन्न प्रांतों से बहुत बड़ी संख्या में हरिभक्त आ पहुँचे थे। वरताल में धारु तालाब के पूर्तकर्म की सेवा चल रही थी। अक्षरानन्द स्वामी की देखरेख में तालाब का पुनर्निर्माण हो रहा था। एकादशी के उत्सव के बाद सब अपने-अपने निवास स्थान पर जा कर सो गये।

सुबह जागने से पहले उन सबको स्वप्न में तीर्थरूप गोमती ने दर्शन दिया। साथ में रुक्मिणी तथा द्वारिकानाथ के भी दर्शन हुए। सभी उठते ही एक-दूसरे को अपने-अपने स्वप्न की बातें कहने लगे। श्रीहरि को जब इस घटना का पता चला तो वे मुस्कुराने लगे।

और सभा में सभी को कहने लगे, 'आज द्वारिकाधीश प्रसन्न होकर अपने परिवार के साथ यहाँ बस गये हैं। लक्ष्मीनारायणदेव रुक्मिणी - द्वारिकाधीश का ही स्वरूप हैं। धारु तालाब में आज हम तीर्थ-रूप गोमती नदी का आह्वान करेंगे। चलो, एक साथ मिलकर धारु तालाब में खुदाई का काम समाप्त करें, पूर्णिमा तक हमें यह काम पूर्ण करना है। क्योंकि हम द्वारिका की गोमती को यहाँ लाना चाहते हैं!'

संत-हरिभक्त एकजुट होकर सुबह से शाम तक सेवा करने लगे। महाराज तालाब के किनारे कुर्सी पर बैठकर सभी को प्रोत्साहित करते रहते। कभी-कभी वे स्वयं कीचड़ से भरे टोकरे अपने सिर पर उठाते, इस प्रकार बड़े-बड़े धनवान हरिभक्तों ने भी सेवा-कार्य में श्रमदान दिया। पूर्णिमा के अगले दिन खुदाई का तमाम सेवा कार्य संपन्न हो गया।

संध्या ढल चुकी थी, श्रीहरि दो ईंटों पर खड़े रहकर मेहनत करनेवाले हरिभक्तों को आशीर्वाद दे रहे थे। जब छाणी के वणकर भक्त तेजाभाई एवं उनके हरिजन जाति के हरिभक्तों का मण्डल आशीर्वाद के लिए आ पहुँचा। सभी ने झुककर वन्दन किया। उन्होंने शरीर की परवाह न करते हुए सेवा की थी। इसीलिए प्रसन्न होकर श्रीहरि पूछने लगे, 'मैं तुम लोगों को क्या दूँ?'

तब तेजा भक्त ने सभी की ओर से कहा: 'प्रभु! आप तो गरीब निवाज हैं। हम पर अखंड प्रसन्न रहिएगा, आपकी मूर्ति का मुझे निरंतर स्मरण रहे, आपका भजन निरंतर कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि आप जिन ईंटों पर खड़े हैं वे ही ईंटें आप हमें देने की कृपा करें। जिससे हम मंदिर बनवाकर इन पर मूर्ति रखकर आपका पूजन, कथा-कीर्तन और भजन कर सकें।'

'तथास्तु' कहकर श्रीहरि ने दोनों ईंटें तेजा भक्त को दे दीं। साथ में अपना जलपात्र और एक बरतन प्रसादी के रूप में दे दिया।

आज भी छाणी के मंदिर में इन तीनों चीजें विद्यमान हैं। श्रीहरि ने उस छुआछूत के कठोर युग में हरिजनों को मंदिर-दर्शन, पूजा, सेवा, तथा कथावार्ता का अधिकार दिया था। जाति-पाँति के भेद भुलाकर श्रीहरि ने क्रांतदर्शी कार्य करके लोक हृदय में स्थान प्राप्त किया था।

श्रीहरि ने चैत्री पूर्णिमा का उत्सव वरताल में किया। एक दिन पूजा आदि से निवृत्त होकर साधु, ब्रह्मचारी, पार्षद एवं हरिभक्तों का संघ लेकर महाराज कीर्तन करते हुए तालाब पर पहुँचे।

यहाँ भीमभाई को आज्ञा देते हुए कहा, 'आप गैतों (तीकम) लेकर इस जगह जरा गहरा खोदो, यहीं से द्वारिका की साक्षात् गोमती नदी बहने लगेगी।'

भीमभाई ने उसी प्रकार किया तो केवल पाँच झटके ही लगे थे कि वहाँ से शीतल जल की धारा फूट पड़ी। अनेक हरिभक्तों को उस जलधारा में पवित्र नदी गोमती का साक्षात् देवीरूप में दर्शन हुआ। अखूट जलराशि एवं पवित्र तीर्थ का जल मिलने के कारण सभी के हृदय में आनन्द-विभोर हो उठे।

श्रीहरि ने कहा, 'जहाँ रुक्मिणी एवं द्वारिकाधीश हों, वहाँ गोमती आकर निवास करती हैं। आज से वरताल की यात्रा और गोमती में स्नान, द्वारिका की यात्रा के तुल्य माना जाएगा।' सबके चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। श्रीहरि ने वैकुण्ठानन्द वर्णी तथा वासुदेवानंद वर्णी को आदेश दिया, 'आप भी हरिभक्तों को हाथ और छाती पर तप्त मुद्रा देने का आरंभ करें।'

फिर स्त्रियों को तृप्त मुद्रा देने के लिए उन्होंने दादा दवे की पुत्री यमुना को आदेश दिया। इस प्रकार सभी इस स्थान पर तृप्त मुद्रा लेने लगे। शाम ढलने तक पूरा तालाब पानी से लबालब भर गया। आज से धारु तलाब का नाम गोमती तालाब हो गया।

सभी संत-भक्त इसमें स्नान करके कृतार्थ हुए।

वरताल में कुछ दिन रहकर श्रीहरि गढ़पुर की ओर चल दिए।

सौराष्ट्र के मंदिर

वरताल, अहमदाबाद और कच्छ-भुज में सुंदर मंदिरों के निर्माण हो चूके थे। सौराष्ट्र के काठी हरिभक्तों के मन में भी सौराष्ट्र में मंदिर निर्माण

की चाहत बढ़ रही थी। वे सभी पंचाला में एकत्र होकर चर्चा कर रहे थे कि गुजरात एवं कच्छ हरिभक्त धन्यभागी हैं परंतु श्रीहरि हमारे सौराष्ट्र को ही भूल गए, ऐसा क्यों किया होगा? चलो, हम सब उन्हीं के सामने हमारी बात रखे। सभी मिलकर श्रीहरि के पास आ पहुँचे, कहा 'महाराज! आपने गुजरात और कच्छ में तो मंदिर-निर्माण किया, परन्तु सौराष्ट्र को बिल्कुल ही भूल गये! आप हमारे प्रदेश में भी सुंदर मंदिर बनवाइए।'।

श्रीहरि ने कहा, 'मैं आप लोगों से दूर तो हूँ नहीं। गढ़डा, लोया, पंचाला आदि स्थानों में अधिकतम निवास करता हूँ, यहाँ तो मेरी उपस्थिति हमेशा रहती है। परंतु गुजरात और कच्छ में बिना उत्सव के हम नहीं जा पाते। इसलिए वहाँ मंदिर-निर्माण किए हैं। परंतु यदि आप लोगों की भावना है तो हम सौराष्ट्र में भी ऐसे ही भव्य मंदिरों का निर्माण करेंगे।'।

सर्वप्रथम श्रीहरि ने गढ़पुर में घेला नदी के किनारे, एक टीले के ऊपर मंदिर निर्माण का संकल्प किया। श्रीहरि हरजी ठक्कर के साथ उस टीले पर पधारे एवं स्थान तथा नक्शा पसंद किया। परंतु वह भूमि दादाखाचर एवं जीवाखाचर की साझेदारी में थी। जीवाखाचर भूमि देने के लिए तैयार नहीं थे। इसी कारण श्रीहरि उदास होकर सारंगपुर में मंदिर बनवाने का संकल्प किया।¹²

उससे पहले करियाणा, वांकिया, कोटड़ा, बोटाद, लोया, पंचाला, झींझावदर, कारियाणी और कुंडल में उन्होंने जगह देखी, परंतु उनका मन कहीं नहीं माना।

परंतु सारंगपुर में जीवाखाचर ने श्रीहरि का भावपूर्ण स्वागत किया। तथा अपने गाँव में मंदिर के लिए जहाँ भी, जितनी भी भूमि चाहिए श्रीहरि के चरणों में अर्पण करने का वादा किया। श्रीहरि ने सारंगपुर के हरिभक्तों को तथा समग्र ग्रामवासियों को गाँव के चबूतरे पर एकत्र किया और उनकी सन्मति माँगी। सभी ने प्रसन्न होकर कहा, 'महाराज! हमारे ऐसे सद्भाग्य कहाँ कि हमारे गाँव में मंदिर हो! यदि मंदिर बनता है तो हम हर प्रकार से सहायता करेंगे। कृपया यहाँ मंदिर बनाने का प्रारंभ करें।'।

12. इसी टीले के ऊपर बाद में शास्त्रीजी महाराज ने आरस पत्थर का तीन शिखरों वाला भव्य मंदिर बनवाकर उसमें अक्षर सहित पुरुषोत्तम की प्रतिष्ठा की।

श्रीहरि ने पूछा, 'मंदिर के लिए यहाँ पत्थर की आवश्यकता पड़ेगी, उसके लिए किसकी अनुमति लेनी पड़ेगी?' जीवाखाचर कहने लगे, 'महाराज! इसके लिए बरवाला के जैन सेठ घेलाशाह की अनुमति लेनी पड़ेगी। वे सेठ सज्जन, परमसहिष्णु एवं उदार हैं।' इतना कहकर वे बरवाला के सेठ घेलाशाह को सारंगपुर बुला लाये। श्रीहरि ने सेठजी से पूछा, 'हम यहाँ मंदिर निर्माण कर रहे हैं, इसमें आप पत्थर आदि सामग्री से हमारी सहायता करेंगे?'

सेठ प्रसन्न होकर कहने लगे, 'जी महाराज! इस गाँव के आसपास 25 गाँवों पर मेरा अधिकार है, यहाँ मंदिर का निर्माण हो इससे बढ़िया और बात क्या हो सकती है? मंदिर के लिए जितने भी पत्थर चाहिए, मैं दिलवा दूँगा। इसके उपरांत पत्थर ढोने के लिए जितनी भी बैलगाड़ियों की आवश्यकता होगी मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा!'

श्रीहरि ने प्रसन्न होकर घेलाशाह को बार-बार आशीर्वाद दिया और कहा, 'वाह, इनका नाम भले ही घेला (पागल) है, पर सेठ हैं तो बड़े सज्जन एवं समझदार।' इस प्रकार सारंगपुर में मंदिर बनवाने का निश्चय हुआ।

जब यह खबर गढ़पुर में दादाखाचर, जीवुबा और लाडुबा को हुई, वे पूरे परिवार तथा हरिभक्तों के साथ सारंगपुर आ पहुँचे।

दादाखाचर और उनकी दोनों बहनों ने अन्नजल का त्यागकर दिया था, वे अत्यंत व्यथित हुए थे। विनम्रतापूर्वक उन्होंने श्रीहरि के चरणों में निवेदन किया, 'प्रभु! हमारे अपराधों की क्षमा कीजिए और कोई सजा अथवा प्रायश्चित्त बताइये। परंतु आपने तो पहले ही कहा था कि गढ़ड़ा मेरा है, मैं गढ़ड़ा का हूँ, तो आप वहीं पर मंदिर बनाकर निरंतर हमारे गाँव में निवास कीजिए। हम अपना सर्वस्व आपको समर्पित करने के लिए तैयार हैं।' यह सुनकर श्रीहरि की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर गढ़पुर में मंदिर निर्माण का वचन दे दिया।

अब श्रीहरि मंदिर के लिए गढ़पुर पधारेंगे, यह जानकर जीवाखाचर अत्यंत दुःखी हुए। उनको आश्वासन देते हुए श्रीहरि कहने लगे, 'दरबार! आप दुःखी क्यों होते हैं? सारंगपुर में तो प्रतापी परमेश्वर का परम धाम निर्माण होगा। हम अपने धामस्वरूप अक्षरब्रह्म और मुक्तों के साथ यहीं

बिराजेंगे। इस प्रकार यह ऐसा विख्यात धाम बनेगा कि हजारों हरिभक्त संघ लेकर यहाँ यात्रा के लिए आएँगे।' जीवाखाचर यह सुनकर शान्त हुए। उन्होंने खिन्न हृदय से श्रीहरि को गढ़पुर जाने की अनुमति दी।¹³

यहाँ दादाखाचर ने अपना पूरा दरबारगढ़ ताम्रपत्र के लेख के साथ श्रीहरि को कृष्णार्पण कर दिया।

तथा पांचुबा के निवासस्थान के दक्षिणी द्वारवाले कमरे गिरा दिये गये। विद्वान् ज्योतिषी द्वारा दिए गए मुहूर्त के अनुसार संवत् 1881 (सन् 1825) ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी, शनिवार को गढ़पुर में शिखरबद्ध मंदिर का शिलान्यास किया गया। हरिभक्तों ने बहुत बड़ी संख्या में आर्थिक योगदान दिया। दादाखाचर को उसी सभा में समाधि लग गई। वहाँ उन्होंने धरती में से निकलता हुआ तीन शिखरीय स्वर्ण-मंदिर देखा। उन्होंने प्रार्थना की, 'हे महाराज, आप इसी मंदिर को हमेशा के लिए यहाँ पर रखिए।'

श्रीहरि ने कहने लगे, 'ऐसा तो नहीं हो सकता, भक्तराज। सभी को सेवा-लाभ देने के लिए मंदिर की प्रवृत्ति प्रारंभ की है।' फिर उन्होंने आदेश दिया कि 'प्रतिदिन सुबह-शाम प्रत्येक संत तथा हरिभक्त घेला नदी पर स्नान करके लौटते समय किनारे से एक-एक पत्थर लेकर मंदिर की नींव में डालना आरंभ करें।'

इस प्रकार के सेवा यज्ञ का आरंभ स्वयं श्रीहरि ने अपने सेवा कार्य से किया। वे भी अपने सिर पर पत्थर उठाकर दादाखाचर के दरबार भुवन तक लाने लगे।

[25]

नूतन मंदिरों का प्रारंभ

जन्माष्टमी के उत्सव पर जूनागढ़ से झीणाभाई तथा धोलेरा से पूंजाभाई दर्शन के लिए पधारे थे। दोनों ने श्रीहरि को प्रार्थना करके विनती की, 'हे महाराज, हमारे जूनागढ़ में भी शिखरबद्ध मंदिर बनाकर हमें कृतार्थ करें, यही हमारी प्रार्थना है।'

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1882 के प्रसंग दिये गये हैं।

13. उस जगह पर शास्त्रीजी महाराज ने संवत् 1972 (सन् 1916) में तीन शिखरों वाला मंदिर बनवाकर उसमें अक्षरपुरुषोत्तम एवं धर्मकुल की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की।

श्रीहरि ने उनके भक्तिभाव को देखकर आदेश दिया कि, 'जाइए, आप तैयारी प्रारंभ करें। हम मूर्तिप्रतिष्ठा के लिए अवश्य आएँगे।' उन्होंने ब्रह्मानंद स्वामी से कहा कि 'आप जूनागढ़ जाइए, और मंदिर-निर्माण का प्रारंभ कीजिए। अद्भुतानंदजी और निष्कुलानंदजी धोलेरा जाएँगे और वहाँ मंदिर निर्माण का आरंभ करेंगे। मूर्ति स्थापन के लिए उचित तैयारी हो जाएँ तब हमें खबर देना। हम स्वयं आकर मूर्तिप्रतिष्ठा करेंगे।'।

इस प्रकार श्रीहरि ने दो नूतन मंदिरों का प्रारंभ किया।

शूद्रों को द्विजत्व दिया

वर्ताल में कार्तिक पूर्णिमा का उत्सव संपन्न हुआ। वहाँ वडोदरा के राजा सयाजीराव गायकवाड़ द्वितीय के मंत्री नारुपंत नाना एक निमंत्रण-पत्र लेकर श्रीहरि के पास उपस्थित हुए। महाराजा ने श्रीहरि को अपने शहर में पधारने का निमंत्रण दिया था। श्रीहरि ने यह पत्र पढ़कर मुक्तानंद स्वामी को दिया। उस समय नारुपंत ने स्वामी से कहा, 'स्वामीजी, गत वर्ष आपने बड़ौदा में चातुर्मास किया था, तब हमने आपको निवेदन किया था कि आप श्रीहरि को लेकर बड़ौदा पधारें। परंतु किसी कारणवशात् वह संभव नहीं हो पाया। इसलिए मैं स्वयं निमंत्रण-पत्र के साथ उपस्थित हुआ हूँ। कृपया आप भी श्रीहरि के चरणों में प्रार्थना करें कि वे बड़ौदा अवश्य पधारें।'।

श्रीहरि ने निमंत्रण का स्वीकार किया। निश्चित तिथि पर वे बड़ौदा जा पहुँचे। शहर के बहार छाणी गाँव की सीमा पर हरिभक्तों के संघ ने उनका भव्य स्वागत किया। एक पेड़ के नीचे श्रीहरि के लिए आसन रखा गया था। सभी क्रमबद्ध आकर उनके चरण छूने लगे और पुष्पमाला अर्पण करने लगे।

इस छाणी गाँव के तेजाभाई वणकर आदि हरिजन जाति के भक्त गोपालानंद स्वामी के द्वारा स्वामिनारायण संप्रदाय के द्वारा जुड़े थे। निम्न जाति के कहलानेवाले ये भक्त ब्राह्मणों से भी अधिक दृढ़ता से नियम धर्म का तथा सदाचार का पालन करते थे। नियमित पूजा-पाठ करना, तिलक-टीका लगाना, कथावार्ता एवं भजन-कीर्तन करना उनका नित्यक्रम था। ब्राह्मण आदि उच्चवर्ण के घर में भी यदि अन्नजल शुद्ध नहीं किया होता तो वे उन्हें ग्रहण नहीं करते थे। कुछ लोग ऐसे नियमों के कारण उन लोगों की

हँसी उड़ाते थे। परंतु आज श्रीहरि स्वयं आनेवाले थे इसलिए उन्होंने गाँव के छोटे-बड़े सभी को निमंत्रित किया था। परंतु ब्राह्मण, महाजन, पटेल, अमीन आदि उच्च वर्ण के लोगों ने तथा गाँव के रहनेवाले बाबा वैरागियों ने ढिंढोरा पिटावाया था कि ‘गाँव के उच्च वर्ण के कोई लोग स्वामिनारायण के दर्शन के लिए नहीं जाना।’

जब ऐसा ही हुआ तब श्रीहरि के सामने गाँव के केवल वणकर हरिजन उपस्थित हुए थे। यह देखकर श्रीहरि मार्मिक स्मित करके कहने लगे, ‘क्या इस गाँव में कोई ब्राह्मण या वैश्य नहीं है? यदि हैं तो वे क्यों नहीं आये?’

तेजा भक्त ने गाँव का पूर्वाग्रह पूर्ण दृष्टिकोण कह सुनाया। श्रीहरि ने कहा, ‘आपको दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणों जैसी विद्या और उनके जैसे सद्गुण आप लोगों में आएँगे ब्राह्मण भी लज्जित हो जाएँ ऐसा तुम लोगों का विशुद्ध आचरण होगा।’ श्रीहरि के आशीर्वाद से सभी प्रसन्न हुए। महाराज ने कहा था कि यदि आप निम्नजाति के कहलाने पर भी आपका आचार शुद्ध रखेंगे एवं भगवान का आश्रय रखेंगे तो आपको बहुत आत्मबल प्राप्त होगा।

श्रीहरि के आशीर्वाद कुछ सालों में ही सफल होने लगे। इन हरिजननों ने ऐसे विशुद्ध आचार का पालन किया कि गाँव के ब्राह्मण, वैश्य आदि लज्जित हो गए।

‘शिक्षापत्री’

कार्तिक कृष्णा तृतीया का दिन था। महाराजा सयाजीराव के युवराज श्रीहरि के स्वागत के लिए छाणी गाँव तक आ पहुँचे थे। सुंदर अलंकृत हाथी पर स्वर्ण के ओहदे में श्रीहरि को बिराजमान किया। पायदल, हयदल, ऊँटनी दल, गजदल आदि की चतुरंगी सेना के साथ ढोल, नगाड़े, शहनाई, नोबत आदि वाद्यों के साथ श्रीहरि की सवारी वड़ोदरानगर में नगरयात्रा के रूप में चलने लगी। सड़कों के दोनों ओर खिड़कियों, छतों, झरोखों पर चारों ओर श्रीहरि के दर्शन के लिए पूरा मानव-महासागर उमड़ रहा था। मस्तुबाग के देवघर में नगरयात्रा का विराम हुआ। महाराजा सयाजीराव ने

श्रीहरि के चरणारविंद की पूजा करके उनको वस्त्राभूषण समर्पित किये। श्रीहरि ने यहाँ तीन दिन तक निवास किया। महाराजा सयाजीराव के अनुरूप उपदेश दिया। सारे नगर में श्रीहरि की दिव्य आभा फैल चुकी थी। यहाँ से वे वरताल पधारे।

वरताल में कार्तिक कृष्णा एकादशी उन्होंने प्रतिदिन संध्या काल प्रागजी दवे द्वारा श्रीमद्भागवत के दशम, पंचम एवं एकादश स्कंध की कथा प्रारंभ करवाई। तथा नित्य प्रातःकाल उन्होंने स्वयं नारायण महल में एकान्त



में बिराजमान होकर 'शिक्षापत्री' की रचना का आरम्भ किया। संवत् 1882 (सन् 1826) में वसंतपंचमी के दिन शिक्षापत्री की पूर्णाहुति हुई। इस छोटे से ग्रंथ में उन्होंने धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति के साथ पूजापद्धति, संत के लक्षण, शास्त्र की महिमा, सेवा तथा सदाचार रूप गुणों की स्थापना आदि विषयों पर अपने अनुभवपूर्ण निर्णय स्पष्ट किये। साथ-साथ गृहस्थ, विधवा तथा सधवा स्त्री, ब्रह्मचारी तथा त्यागीवृंद आदि के नियम भी स्पष्ट किये।

'शिक्षापत्री' ग्रंथ लेकर श्रीहरि सभामंडप में पधारे और सभी विद्वान् संतों को कहा, 'इस ग्रंथ से भूल निकालनेवाले को मैं आज थाल की प्रसादी दूँगा।' इतना कहकर वे मुस्कुराने लगे। विद्वान् संतों ने इस ग्रंथ का सूक्ष्म निरीक्षण किया परन्तु कहीं भी भूल या अपूर्णता नहीं दिखाई दी। तत्पश्चात् सवित्रानंदजी आदि सुंदर हस्ताक्षर वाले साधुओं के द्वारा इस ग्रंथ की कई प्रतियाँ तैयार की गईं। उनमें से प्रत्येक मुख्य संत को एक-एक प्रति दी गई तथा एक एक गाँव में भी एक-एक प्रति भेजी गई। श्रीहरि का आदेश था की इस ग्रंथ के पांच आदेशों का प्रतिदिन पठन अथवा श्रवण करें अथवा इस ग्रंथ का प्रतिदिन पूजन करें।

धोलेरा में मूर्तिप्रतिष्ठा

श्रीहरि ने वरताल में वसंतपंचमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। उस अवसर पर मछियाव एवं अहमदाबाद के हरिभक्तों ने आग्रहपूर्वक प्रार्थना की, 'हे महाराज! इस वर्ष फूलदोल का उत्सव हमारे नगर में मनाने की कृपा कीजिए' प्रेमवश श्रीहरि ने तुरंत सम्मति दे दी।

वे डभाण तथा महेमदाबाद होकर एकसाथ दो स्वरूप धारण करके मछियाव तथा अहमदाबाद जा पहुँचे। इस वर्ष उन्होंने दोनों गाँवों में पुष्पदोलोत्सव मनाया, इस प्रकार दोनों गाँव के भक्तों के मनोरथ पूर्ण किये। मछियाव से निकलकर उन्होंने अपना दूसरा रूप गाँव की सीमा पर हि अदृश्य कर दिया। तथा अहमदाबाद से निकलकर भाल प्रदेश के कमियाला गाँव में हरिनवमी उत्सव मनाया। यहाँ धोलेरा गाँव से अद्भुतानंद स्वामी तथा पूजाभाई ने आकर श्रीहरि के चरणों में निवेदन किया कि हे प्रभु, मंदिर निर्माण का कार्य पूर्ण हो चुका है, अब आपके आगमन की प्रतीक्षा है। आप

मूर्ति-प्रतिष्ठा के लिए आने की कृपा करें। थोड़ा-बहुत काम जो शेष है, वह बाद में पूरा हो सकता है।'

श्रीहरि धोलेरा आ पहुँचे। प्रतिष्ठा का 'वैशाख शुक्ला त्रयोदशी का मुहूर्त नारायण जोशी के द्वारा निकाला गया था। निष्कुलानंद स्वामी तथा अद्भुतानंद स्वामी की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने यहाँ पर एक मास के लिए निवास किया। प्रतिष्ठा-महोत्सव में आने के लिए यहाँ से गाँव-गाँव निमंत्रण-पत्रिकाएँ भेजी गईं। गढ़पुर से राधाकृष्ण की मूर्तियाँ आ गई थीं। शुभ मुहूर्त में बड़ी उन मूर्तियों को मदनमोहन नाम से वैदिक विधिपूर्वक प्रतिष्ठित की। श्रीहरि ने इस अवसर पर ब्राह्मणों को दान दिया।

प्रतिष्ठा-महोत्सव में रघुवीरजी एवं अयोध्याप्रसादजी को श्रीहरि ने शिक्षापत्री की एक-एक प्रति देकर उनको शिक्षापत्री के अनुसार आचरण करने का आदेश दिया। दादाखाचर को भी उन्होंने एक प्रति देकर प्रसन्नता व्यक्त की। दूसरे दिन नृसिंह चतुर्दशी का उपवास करके श्रीहरि ने वहाँ से गढ़पुर जाने के लिए प्रस्थान किया।

[26]

महन्तों की नियुक्ति

वरताल में संवत् 1883 (सन् 1826) में प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव करके श्रीहरि गढ़ड़ा पधारे थे। एक दिन श्रीहरि ने सभा में हो रहे कोलाहल को शांत करके कहा, 'आप सब सुनिए, हमने जो मंदिर बनवाये हैं, उन मन्दिरों में महन्तों की नियुक्ति करनी है। वे ममत्वपूर्वक मन्दिरों की देखभाल करेंगे। मैंने मन्दिरों के महन्तों के विषय में जो निर्णय किया है वह सुनाता हूँ।

'वरताल के मन्दिर में वैष्णवानन्द स्वामी, गढ़ड़ा के मन्दिर में विरक्तानन्द स्वामी, अहमदाबाद के मन्दिर में सर्वज्ञानन्द स्वामी, धोलेरा के मंदिर में अद्भुतानन्द स्वामी महंत के रूप में रहेंगे।' इतना कहकर प्रत्येक सद्गुरुओं को नियुक्ति के प्रतीकरूप पुष्पमाला पहनाई। तत्पश्चात् ब्रह्मानन्द स्वामी से कहने लगे, 'आप मूली में मन्दिर का निर्माण करना तथा वहाँ तद्रूपानन्द स्वामी की महन्तपद पर नियुक्ति करना।' तब ब्रह्मानन्द स्वामी ने कहा, 'महाराज!

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1883 के प्रसंग दिये गये हैं।

जूनागढ़ के मन्दिर के लिए आप सोच-विचार कर महन्त की नियुक्ति कीजिएगा। क्योंकि वहाँ मुस्लिमों का शासन है और शिवपंथी नागर ब्राह्मणों का बड़ा वर्चस्व है। जिससे महन्तों का बारबार परिवर्तन न करना पड़े।’

श्रीहरि ने कहा, ‘जूनागढ़ के मन्दिर में तो हमने ऐसे महन्त की नियुक्ति की है कि परिवर्तन का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होगा।’

इस बात को कुछ दिन बीत गए। चैत्री पूर्णिमा का उत्सव श्रीहरि ने गढ़पुर में किया। आज कि सभा में उन्होंने संबोधन करते हुए कहा, ‘आज हम जूनागढ़ के मन्दिर के महन्त की नियुक्ति कर देते हैं। भादरा वाले निर्गुणानन्दजी को बुलाओ।’ उसी समय निर्गुणानन्दजी अर्थात् गुणातीतानन्द स्वामी स्वयं वहाँ आ पहुँचे। श्रीहरि अपने आसन से खड़े हो गये, अपने कंठ से सभी पुष्पमालाएँ निकाली और गुणातीतानन्दजी के कंठ में पहनाकर बोले, ‘ये हमारे जूनागढ़ के महन्त हैं।’ इतना कहकर अपने वस्त्र दिये, उनके सिर पर पगड़ी रखकर उनको बार-बार आशीर्वाद दिया।

‘हमारा अक्षरधाम’

इस प्रसंग के बाद उन्होंने सभा में बैठे हुए कुरजी दवे को बुलाकर कहा: ‘दवेजी! रामानन्द स्वामी जब भुज से पीपलाणा पधारे थे, तब आप वहाँ शुभ समाचार देने के लिए लोज आये थे। उस समय सभीने प्रसन्न होकर आपको कुछ न कुछ पुरस्कार दिया था। परन्तु उस समय मेरे पास कुछ नहीं था। आप को वे दिन याद हैं? मैंने उस दिन आपसे कहा था कि मैं तुम्हें अक्षरधाम दूँगा... लीजिए, यह गुणातीतानन्द स्वामी हमारा अक्षरधाम है। वह आपको और सोरठ (सौराष्ट्र) के हरिभक्तों के लिए दे रहा हूँ।’

तत्पश्चात् वे गुणातीतानन्द स्वामी से कहने लगे, ‘जूनागढ़ के मन्दिर में साथ कितने संत रखें? पाँच या दस साधु रखें?’ लेकिन अन्त में वहाँ दो सौ साधु रखने का निर्णय हुआ। सोरठ के हरिभक्तों को सम्बोधित करते हुए श्रीहरि ने कहा, ‘हमने आप सबके लिए अपना सर्वस्व दिया है, इसलिए गुणातीतानन्द स्वामी की महिमा समझकर उनकी इच्छानुसार जो उनकी सेवा करेगा, उसके सौ जन्मों की तो क्या हजारों जन्म की कसर इसी एक जन्म में निकाल देंगे।’

सौराष्ट्र के हरिभक्त आज बहुत प्रसन्न हुए।

‘शिक्षापत्री’ का उल्लंघन मत करना

श्रीहरि अहमदाबाद जिले के बरवाला गाँव में पधारे थे। एक प्रेमी भक्त ने उनको भावपूर्वक निमंत्रण दिया था। अपना घर छोटा होने के कारण उसने श्रीहरि को अपने बड़े भाई के मकान की पौरी में ठहराया। पलंग बिछाकर उसने विश्वासपूर्वक कहा: ‘महाराज आप यहाँ बिराजिए, मैं सीधा सामान की सामग्री लेकर अभी आया।’

बाजार से उसे कुछ देर हो गई। इतने में उसका बड़ा भाई अपने घर की पौरी पर आ पहुँचा। उसे श्रीहरि की कोई पहचान नहीं थी न तो उसके हृदय में उनकी महिमा थी। उल्टा संतमात्र के प्रति तिरस्कार का भाव था। उसने ऊँची आवाज़ में कहा, ‘आप कौन हैं?’ श्रीहरि ने उसे शान्त भाव से समझाने की कोशिश की। परन्तु वह तो तुनककर लगा, ‘यह जगह मेरी है, बिना मेरी संमति के मेरा छोटा भाई तो क्या मेरी पत्नी भी किसीको यहाँ नहीं ठहरा सकती, आप यहाँ से अभी निकल जाइए।’

‘हाँ भाई, हम जा रहे हैं।’ कहते हुए श्रीहरि संत-हरिभक्तों के साथ वहाँ से निकल गये। गाँव के बहार आकर वे साथी संतों के प्रति कहने लगे, ‘देखा? हमने स्वयं शिक्षापत्री लिखी और हमने ही उस ग्रंथ का आदेश मान्य नहीं रखा,¹⁴ तो दुःख भोगना पड़ा। शिक्षापत्री की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए। अब यहाँ से नावड़ा गाँव की ओर जाएँगे।’ उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया ही था कि वह हरिभक्त सीधा सामग्री लेकर घर पहुँचा। ज्यों ही उसको सारी जानकारी मिली कि वह दौड़ता हुआ श्रीहरि के पास आ पहुँचा। क्षमा याचना की। पूरा सामान उनके चरणों में रख दिया। श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद देकर शांत किया और फिर कभी आने का वचन दिया। वे संघ के साथ नावड़ा की ओर चल दिये। इस घटना से सभी को शिक्षापत्री की महत्ता समझ में आ गई।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1884 के प्रसंग दिये गये हैं।

[27]

संतों को जूते पहनाये

हरिनवमी के उत्सव के लिए श्रीहरि वरताल जा रहे थे। दोपहर के समय भोलाद गाँव की सीमा पर वे संतों के साथ विश्राम ले रहे थे। चैत्र मास की जलाने वाली गर्मी के कारण एक संत कुएँ से अपने उपवस्त्र गीले करके आ पहुँचे। चारों ओर पानी छिड़ककर संतप्त भूमि को ठंडा किया। पेड़ के नीचे, ऊपर तथा चारों ओर उपवस्त्र बाँधकर मंडप तैयार कर दिया। इस प्रकार ठंडक में श्रीहरि के विश्राम की व्यवस्था हो गई।

श्रीहरि की आंखों में नींद नहीं थी। वे सोचने लगे, 'ऐसी भयंकर धूप में हमारे संत नंगे पैर चलते हैं, कुछ संतों के पैर में तो फफोले भी पड़ गये हैं, उनके पैर कितने जलते होंगे!' उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त संतों को इकट्ठा किया और कहने लगे, 'आज से आप सभी जूते पहनना आरम्भ कर दो। आप का स्वास्थ्य यदि ठीक रहेगा तो समाज की सेवा भी ठीक ढंग से कर पाएँगे।' भक्तवत्सल श्रीहरि की कृपा से संतों के हृदय भी द्रवित हो गए।

वारणा गाँव के रास्ते पर बुटदेवी का मंदिर आया। पास में एक पेड़ के नीचे सभा करके श्रीहरि ने जोराभाई से कहा, 'कुछ खाने को है? हमें भूख लगी है।' जोराभाई ने कहा, 'महाराज, कमियाळा के गढ़वी (कवि) खीमराज की पत्नी की दी हुई दो सेर शक्कर है, कहिए तो वह ले आऊँ।'।

श्रीहरि ने कहा शक्कर मंगवाई। उसमें से अंजलि भरकर सुरा खाचर को दी। उन्होंने महाराज का ऐश्वर्य देखने के विचार से मजाक के स्वर में कहा, 'महाराज! आप संघ के सभी सदस्यों को एक-एक अंजलि भर कर शक्कर दीजिए।'।

श्रीहरि ने कहा, 'ठीक है।' उन्होंने दो सेर शक्कर से सभीको एकएक अंजलि प्रसाद दिया, फिर भी उतनी ही शक्कर बच रही।

जूनागढ़ के मन्दिर में मूर्तिप्रतिष्ठा

वरताल में हरिनवमी का उत्सव करके श्रीहरि गढ़डा पधारे। यहाँ मन्दिर-निर्माण का कार्य शीघ्रता से पूर्ण करने का आदेश दिया।

अब वे जूनागढ़ के मन्दिर में प्रतिष्ठो के लिए पधारे।

संवत् 1884 (सन् 1828) वैशाख कृष्ण द्वितीया को श्रीहरि ने जूनागढ़ में रणछोड-त्रिकम, राधारमणदेव और सिद्धेश्वर महादेव की मूर्ति की प्रतिष्ठित की। इस अवसर पर जूनागढ़ के नवाब ने कहा, 'हे महाराज! आपने यहाँ इतना भव्य मंदिर बनवाया है, तो आप स्वयं यहाँ रहिएगा अथवा आपके जैसे फकीर को यहाँ रखिएगा।' श्रीहरि ने स्मित करते हुए गुणातीतानंद स्वामी कि ओर संकेत किया। और कहा, 'ये हे हमारे जैसे फकीर। इन साधु के रूप में हम स्वयं यहीं पर विद्यमान रहेंगे। इसीलिए आप उनके दर्शन, सेवा तथा सत्संग का लाभ लेते रहना।'

स्वामिनारायणिया

श्रीहरि द्वारा निर्मित मन्दिरों में महंत तथा उनके सहयोगी संत नियुक्त हो गए थे। प्रत्येक मन्दिर के प्रमुख देवताओं के नाम से अब विशिष्ट प्रकार के भेद-प्रभेद प्रकट होने लगे। जैसे वड़ताल के संतों को लक्ष्मीनारायणिया, अहमदाबाद के संतों को नरनारायणिया, तथा गढ़पुर के संतों को वासुदेविया आदि शब्दों से सम्बोधन होने लगा। साधुओं में हो रहे ऐसे भेद-प्रभेद को सुनकर श्रीहरि ने सभी को एकत्र किया। फिर कहने लगे: 'वासुदेविया उस ओर बैठें, नरनारायणिया वहाँ बैठें, लक्ष्मीनारायणिया हैं दूर बैठें।' जब सभीने अलग-अलग स्थान लिया, तब वे कहने लगे, 'अब जो स्वामिनारायणिया हों वे मेरे पास आकर बैठें!' यह सुनते ही सभा में सन्नाटा पसर गया। पक्षभेद रखनेवाले साधु लज्जित होकर क्षमा याँचना करने लगे। संतों के लिए सभी प्रवृत्तियों का लक्ष्य केवल श्रीहरि ही होने चाहिए ऐसा निश्चय करके सभी भेद भूलकर सेवा में जुड गए।

[28]

गढ़पुर में मूर्तिप्रतिष्ठा

गढ़पुर में श्रीहरि ने अपनी ही आकृति वाली मूर्ति बनाने के लिए नारायणजी शिल्पी को कहा था। उन्होंने कहा 'महाराज! आप यदि प्रत्यक्ष इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1885 के प्रसंग दिये गये हैं।

रूप में सामने बैठें तो मूर्ति के सारे अंग एवं आकृति आपके समान रची जा सकती है।' श्रीहरि उनकी विनंती को मान्य रखकर वासुदेवनारायण के कमरे की पश्चिम दिशा में पलंग पर बिराजमान होकर नारायणजीभाई को सहयोग देने लगे। वे श्रीहरि के दर्शन करते हुए पत्थर से उसी आकार का शिल्प निर्माण करने लगे। श्रीहरि उनकी कला से प्रसन्न होकर कभी-कभी थाल-प्रसादी देकर उन्हें प्रोत्साहित किया करते।

चातुर्मास के दिन थे, श्रीहरि गढ़पुर में ही बिराजमान थे। जन्माष्टमी के उत्सव के बाद भाद्रपद का आरम्भ हुआ। एक दिन श्रीहरि वासुदेवनारायण के कमरे के बाहर बिराजमान थे। उस समय निष्कुलानन्द स्वामी ने प्रणाम करते हुए कहा, 'महाराज! अब मन्दिर पूर्ण हो चुका है, मूर्तियाँ भी तैयार हैं। मूर्ति-प्रतिष्ठा का मुहूर्त निश्चित करने की कृपा करें।' श्रीहरि ने तुरन्त गोपालानन्द स्वामी से मुहूर्त निकलवाया। आश्विन शुक्ला द्वादशी का मुहूर्त निश्चित हुआ। गाँव-गाँव और नगर-नगर निमंत्रण पत्रिका भेजी गई। उमरेठ के वैदिक विद्वानों को प्रतिष्ठाविधि के लिए निमंत्रित किया गया।

संवत् 1885 (सन् 1829) आश्विन शुक्ला द्वादशी के दिन वैदिक विधि पूर्वक धूमधाम से गोपीनाथजी एवं राधिकाजी की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई। श्रीहरि ने आज दादाखाचर से कहा, 'गोपीनाथजी की जो मूर्ति मेरा ही स्वरूप है। मैं इस मूर्ति में रहकर तुम्हारी सेवाओं को स्वीकार करूँगा।' इतना कहकर श्रीहरि ने मूर्ति को अपने हृदय से लगाया और उसके सिर पर अपने दोनों हाथ रखे। तत्पश्चात् वासुदेवनारायण की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की। पश्चिम की ओर धर्म-भक्ति की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। पूर्व दिशा की देहरी में सूर्यनारायण, श्रीकृष्ण, बलराम तथा रेवतीजी की मूर्तियों की स्थापना की। आज दादाखाचर का मनोरथ पूर्ण हुआ।

भावनगर में पधरावनी

वरताल में पुष्पदोलोत्सव के बाद विचरण करते हुए श्रीहरि कारियाणी, रोहिशाला और वरतेज होकर भावनगर पधारे।

यहाँ सत्संग-समुदाय ने उनका अपूर्व धूमधाम से स्वागत किया। कई परिवारों में श्रीहरि की पधरावनी हुई। संध्या सभा में सूरत के सत्संगी दर्जी

आत्माराम श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। वे बड़ी लगन और प्रेमभाव से सुन्दर डगली (छोटा कुर्ता) बनाकर लाये थे। वह कुर्ता भव्य बेलबूटों एवं कशीदे से सुशोभित था। श्रीहरि ने यह देखकर बहुत प्रशंसा की। इस वस्त्र पर हुई कारीगरी को देखकर लोग आश्चर्य चकित रह जाते।

इस कुर्ते की की सुंदरता की बात धीरे-धीरे सारे भावनगर में फैल गई। भावनगर के महाराजा विजयसिंहजी ने यह सुना, तो उन्होंने किसी हरिभक्त को भेजकर वह कुर्ता मंगवाया। उन्होंने अपने राज्य के दर्जियों को दिखाकर कहा, 'यदि आप लोग मेरे लिए ऐसा सुन्दर कुर्ता बना दें तो मैं सौ स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार के रूप में दूँगा।' परन्तु दर्जियों ने कहा, 'महाराज, इतनी सुन्दर बेलबूटों से तैयार जरी का कुर्ता बनाना हमारे लिए सम्भव नहीं है।' महाराजा ने अपने आदमियों को आत्माराम दर्जी के पास भेजा कि आप हमारे महाराजा के लिए इतना ही सुन्दर कुर्ता बना दो। इनाम के रूप आप जो माँगोगे, दिया जाएगा।

आत्माराम ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'आप महाराजा को कहना कि मेरे कई दिनों के प्रयत्न के बाद यह कुर्ता तैयार हुआ है। इसमें केवल कारीगरी ही नहीं है, किन्तु मेरे अंतःकरण से प्रवाहित प्रेम के धागों से इसकी सिलाई हुई है और मुझे श्रेष्ठ इनाम के रूप में श्रीहरि की प्रसन्नता और अक्षरधाम की प्राप्ति के आशीर्वाद मिल चुके हैं। कुर्ता तो केवल उनकी प्रेरणा और उनके प्रति हमारे प्रेमभाव के कारण यह कुर्ता बना है। ऐसा कुर्ता और किसी के लिए नहीं बन सकता।' महाराजा इसका रहस्य समझ गये। निराश होकर उन्होंने वह कुर्ता श्रीहरि को भिजवा दिया।

दूसरे दिन महाराजा विजयसिंहजी ने अपने राजभुवन में श्रीहरि की पधरावनी की। पूजन तथा पुष्पहार से श्रीहरि को सम्मानित किया। श्रीहरि ने कहा, 'हमने आपके राज्य के गढ़डा गाँव में मंदिर बनाकर गोपीनाथदेव की प्रतिष्ठा की है। इस मंदिर और भविष्य में दूसरे भी मंदिर बनें, वहाँ राज्य की ओर से पूर्ण सहायता मिलती रहे तथा निर्विघ्न रूप से कार्य पूर्ण हो ऐसा प्रबन्ध करने के लिए हमारा निवेदन है।'

महाराजा बड़े विवेकी थे। उन्होंने कहा, 'महाराज! आपके ही आशीर्वाद से मैं राज्यशासन कर रहा हूँ, आपके ही प्रताप से मेरा राज्य

समृद्ध है। आप हमारे राज्य के किसी भी गाँव में मंदिर-निर्माण करते हैं, तो हमारे राज्य की शोभा और संपत्ति बढ़ती ही है। इसलिए मैं आपको अधिकार-पत्र लिख देता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने अपने दीवान से पत्र लिखवाया कि 'भगवान स्वामिनारायण हमारे राज्य में जहाँ कहीं भी मंदिर-निर्माण करवाए। वहाँ राज्य का कोई भी अधिकारी दखल नहीं देगा और उस कार्य में सभी कर्मचारीगण और प्रजाजन संपूर्ण सहयोग देंगे। साथ-साथ राज्य भी यथासम्भव सहायता करेगा।'

इस अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर करके उन्होंने श्रीहरि के चरणों में समर्पित किया। श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उनको आशीर्वाद दिया। वे बिदा देने के लिए द्वार तक पधारे। श्रीहरि ने वहाँ से गढ़पुर की ओर प्रस्थान किया।

गुण ग्रहण की प्रेरणा

दादाखाचर के राजभवन में संतों की भोजन पंक्ति लगी हुई थी। श्रीहरि संतों को विविध सामग्री परोस रहे थे। जैसे ही मंत्रोच्चार अथवा जयघोष के साथ भोजन शुरू ही हो रहा था कि अचानक दो संत विचरण करके उस स्थान पर आ पहुँचे। उनको परोसने के लिए कोई सामग्री नहीं बची थी।

श्रीहरि ने संतों से कहा, 'रुकिए, अब भोजन करना शुरू मत कीजिए।' फिर आगन्तुक संतों से कहा, 'आप दोनों अपने-अपने पात्र लेकर संतों की भोजन पंक्ति में भिक्षा के लिए निकलो। जो भी मिले प्रसादी के रूप में धारण कर लेना।' दोनों परमहंसों ने बैठे हुए संतों के सामने अपना पात्र लेकर घूमना शुरू किया। सभी ने अपने पात्र से अच्छी वस्तुएँ दीं। कुछ ही पलों में दोनों के पात्र पकवान से भर गए।

श्रीहरि ने यह देखकर कहा, 'देखा आपने, इन्होंने सभी के सामने झुककर जो कुछ मिला, ग्रहण कर लिया तो पूरा पात्र श्रेष्ठ पकवानों से भर गया। उसी तरह आप सब अहंकार का त्याग करके विनम्रतापूर्वक सभी संतों-भक्तों से यदि एक भी अच्छा गुण ग्रहण करोगे, तो आप का जीवन भी सद्गुणों से भर जाएगा!'

श्रावणी पूर्णिमा के दिन श्रीहरि ने गुणातीतानंद स्वामी की महिमा समझाते हुए मुक्तानंद स्वामी से कहा, 'गुणातीतानन्दजी की विशेषता अच्छे

आसन के कारण नहीं है। उनकी श्रेष्ठता तो अनादिसिद्ध है। वे तो हमारे रहने का धाम हैं। हमारी मूर्ति को तीनों अवस्था में धारण करके रखते हैं।' इस तरह उनके स्वरूप की यथार्थ रूप में पहचान करवाई।

[29]

अपनी छाप बनवाई

संवत् 1885 (सन् 1829) का चातुर्मास गढ़पुर में ही संपन्न हुआ। अन्नकूट-उत्सव के लिए श्रीहरि सारंगपुर पधारे। तत्पश्चात् सुंदरियाणा, धंधुका और खसता आकर नदी के किनारे रात्री-निवास किया। चारों ओर मध्यरात्रि का सन्नाटा पसरा हुआ था। अचानक एक शेर श्रीहरि के डेरे से केवल बीस कदम दूर आ पहुँचा और जोर से गर्जना की। हड़बड़ाहट में भगुजी ने बंदूक उठाई। परंतु श्रीहरि अचानक उठ बैठे और शेर के सामने हाँक लगाई। उस हाँक का ब्रह्मांडभेदी घोष हुआ। भय के मारे शेर तुरंत जंगल की ओर भाग निकला। भगुजी आश्चर्यवत् देखते रह गए।

दूसरे दिन कमियाळा, वरसड़ तथा सीजीवाड़ा होकर श्रीहरि वरताल पधारे। यहाँ प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव किया, जो उनका अंतिम उत्सव था। दूसरे दिन श्रीहरि ने जूनागढ़ के नारायणजी सुतार से कहा, 'हमारी मूर्ति में आपका मन तो लग गया है न! तो अब हमारे स्वरूप की ऐसी सुन्दर छाप बनाइए कि सारे संतों-हरिभक्तों को वह मूर्ति स्वाभाविक ही स्मरण में आ जाए और वे बड़े भाव से उसका दर्शन-पूजन करें।'।

नारायणजी भाई ने कहा: 'महाराज! आपकी कृपा से ऐसा ही होगा, मैं धातु के साँचे में ऐसी ही छाप तराशकर रामनवमी के दिन गढ़डा ले आऊँगा।' यह सुनकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए, परंतु उस समय उनकी वाणी का रहस्य कोई समझ नहीं पाया।

तत्पश्चात् श्रीहरि ने उपस्थित भक्तों को शिक्षापत्री-पालन के विषय में प्रेरणा दी, 'शिक्षापत्री भले ही छोटा-सा ग्रंथ है परंतु संसार की सारी समस्याओं का तथा मन की सारी शंकाओं का निवारण करने में समर्थ है। मैं यहाँ हरिकृष्ण की मूर्ति में निरंतर विराजमान हूँ।' इतना कहकर वे कुछ रथ द्वारा संघ के साथ गढ़पुर जाने के लिए निकले।

इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1886 के प्रसंग दिये गये हैं।

गवर्नर ज्हॉन माल्कम से भेंट

संवत् 1886 (सन् 1830) पौष शुक्ला द्वितीया से श्रीहरि ने बीमारी ग्रहण की। प्रत्येक पदार्थ से अपनी वृत्ति समेटकर उन्होंने उदासी ग्रहण कर ली। खाना-पीना कम कर दिया। शरीर कृश होने लगा। हरिभक्तों को चिन्ता होने लगी। श्रीहरि ने गढ़पुर से बाहर निकलना बिल्कुल बंद कर दिया। वे दिनभर अक्षरकुटीर में आराम करते रहते। तीस संत दिन में और तीस संत रात्रि के समय उनकी सेवा में लगे रहते। भगुजी, मूलुजी, सुरा खाचर आदि कई हरिभक्त भी श्रीहरि की सेवा में सावधान रहते थे।

उस समय भारत के वाइसराय पद पर विलियम बेन्टिंक का शासन चल रहा था और मुम्बई राज्य के गवर्नर पद पर सर ज्हॉन माल्कम थे। वे कभी-कभी सौराष्ट्र आते-जाते रहते थे। बिशप हैबर और अन्य अंग्रेज अधिकारियों से उन्होंने श्रीहरि के विषय में बहुत सी जानकारी एकत्र की थी। श्रीहरि के द्वारा हुए धर्म-सुधारणा और समाज-सुधारणा के कार्य की झाँकी पाकर वे अत्यंत प्रभावित थे। उन्होंने सौराष्ट्र में आकर श्रीहरि से मुलाकात लेने की इच्छा प्रकट की।



माघ माह में गवर्नर के सचिव ने पत्र लिखकर श्रीहरि को सूचित किया कि नामदार गवर्नर सर ज़ॉन माल्कम आपसे मिलना चाहते हैं। परंतु श्रीहरि का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिर रहा था। उन्होंने माघ की कृष्णा त्रयोदशी के दिन पत्र में लिखवाया कि नादुरस्त स्वास्थ्य के कारण आपको मिलना संभव नहीं है। प्रत्युत्तर में गवर्नर के सचिव थामस विलियम्सन ने श्रीहरि के स्वास्थ्य में सुधार होने की आशा व्यक्त की।

परंतु फाल्गुन मास में फिर एकबार सौराष्ट्र के कामचलाऊ पोलिटिकल एजन्ट टी. एन. ब्लेन ने दि. 22-2-1830 को दूसरा निवेदन पत्र भेजा, जिसमें श्रीहरि को संबोधित करते हुए लिखा था कि गवर्नर साहब अपने स्टाफ के साथ सौराष्ट्र में उपस्थित हैं, वे आपसे भेंट करना चाहते हैं। यदि संभव हो तो आप उनसे अवश्य मिलें। आप आ सकेंगे या नहीं इस विषय में कृपया अपनी जानकारी दीजिएगा।

गवर्नर तथा मि. ब्लेन का सद्भाव देखकर श्रीहरि ने अपनी बीमारी को दरकिनार किया तथा अपनी योगशक्ति से स्वस्थता धारण करके सरकार के संदेशवाहक को अपनी स्वीकृति दे दी। फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन श्रीहरि ने रथ में बिराजमान होकर संतों-भक्तों के साथ राजकोट के लिए प्रस्थान किया।

दि. 26-2-1830, का दिन धन्य हुआ। आज सुबह राजकोट के दीवान रोड पर स्थित पोलिटिकल एजन्ट के बंगले पर श्रीहरि और गवर्नर सर ज़ॉन माल्कम की भेंट हुई। उस मुलाकात के समय गवर्नर के सचिव थामस विलियम्सन, पोलिटिकल एजन्ट मि. ब्लेन तथा अन्य अंग्रेज अधिकारी उपस्थित रहे। श्रीहरि के साथ अयोध्याप्रसादजी, रघुवीरजी, मुकुन्द ब्रह्मचारी, शुकानन्द स्वामी, मुक्तानन्द स्वामी, सुरा खाचर, सोमला खाचर, दादाखाचर, लाधा ठक्कर, हीरजी ठक्कर, देवा भक्त और भीमभाई आदि उपस्थित थे। गवर्नर की ओर से लश्करी दलों ने बंदूक की आवाजों के साथ बैड बजाकर श्रीहरि को शाही सलामी दी। बंगले के भीतर प्रवेश करते ही गवर्नर ने श्रीहरि का गर्मजोशी से स्वागत किया। अपने दीवान-खंड में बिठाकर गवर्नर ने श्रीहरि का पुष्पमालाएँ अर्पण की, इत्र की महक से वातावरण सुगंधित किया, शाल ओढ़ाकर सत्कार किया और कुर्सी पर बिराजमान किया।

वार्तालाप करते हुए गवर्नर ने स्वामिनारायण सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की चर्चा की। श्रीहरि ने उनके प्रश्नों का समाधान करते कुछ प्रेरक उपदेश भी दिया। अन्त में गवर्नर ने पूछा, 'आप हमारे राज्य में धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। परंतु राज्य की ओर से आपको कोई कष्ट तो नहीं है?'

श्रीहरि ने कहा, 'हमें कोई खास कष्ट तो नहीं है, परंतु आप लोग गौओं एवं ब्राह्मणों के साथ सामान्य प्रजा की दुष्टों से रक्षा कीजिएगा।'

तब गवर्नर ने पूछा, 'हमारी सरकार सती-प्रथा एवं बाल-हत्या बंद करा रही है, इस विषय में आपके क्या विचार हैं?'

श्रीहरि ने कहा, 'स्त्रियों को बलात् सती होने के लिए मजबूर करना तो हत्या ही है। यदि कोई स्त्री स्वयं भी तैयार हुए तो हमें उसको बचाना चाहिए। क्योंकि वह तो आत्महत्या है। हमारा अभिप्राय यह है कि किसी तीर्थ अथवा पति के माहात्म्य के आधार पर आत्महत्या तो कभी मान्य नहीं हो सकती। पति के मरने पर परमेश्वर की पतिभाव से सेवा-पूजा करनी चाहिए। किसी भी स्थिति में आत्महत्या निषिद्ध है तथा दूध में डुबोकर की जानेवाली बाल-हत्या भी हमें स्वीकार्य नहीं है। हमने घर-घर जाकर इस विषय पर लोगों को जागृत किया है।' यह सुनकर गवर्नर अत्यंत प्रभावित हुए।

उन्होंने कहा, 'नारायण स्वामी! आपने मुझे बहुत अच्छी सलाह दी।'

अन्त में उन्होंने श्रीहरि से सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की पुस्तक माँगी और कहा, 'हमारा और हमारे शत्रुओं का भी कल्याण कीजिएगा।' श्रीहरि ने प्रसन्न होकर इस मुमुक्षु गवर्नर को आशीर्वाद के साथ शिक्षापत्री ग्रंथ की एक प्रति उपहार के रूप में दी।

दो घंटे तक परामर्श होता रहा। बिदा लेते हुए श्रीहरि के समक्ष गवर्नर और उनके साथी अधिकारियों ने अपनी हँट उतारकर झुककर अभिवादन किया और बंगले के द्वार तक आकर आदर व्यक्त किया। राजकोट में अपने निवास स्थान पर दोपहर का भोजन लेकर वे गढ़पुर के लिए विदा हुए। वहाँ पहुँचते ही कुछ ही दिनों के बाद श्रीहरि ने पुनः बीमारी ग्रहण कर ली।

अन्तिम दिन...

इस वर्ष पुष्पदोलोत्सव के लिए वे वरताल नहीं पधारे। श्रीहरि की

अनुपस्थिति से हरिभक्तों के मन में विषाद छा गया। उत्सव के बाद सारे संत-हरिभक्त सीधे श्रीहरि के दर्शन करने के लिए गढ़डा चले।

यहाँ श्रीहरि ने मुकुन्दानंद वर्णी को भेजकर रामप्रतापभाई, अयोध्याप्रसादजी, रघुवीरजी, मुक्तानंद स्वामी, गोपालानन्द स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, शुकानन्द स्वामी, निष्कुलानन्द स्वामी, आनन्दानन्द स्वामी, परमचैतन्यानन्द स्वामी, भायात्मानन्द स्वामी आदि संतों को बुलवाया। अखण्डानन्दजी, वासुदेवानन्दजी आदि ब्रह्मचारियों को, भगुजी, मूलुजी, रतनजी, मियाँजी आदि पार्षदों को, दादाखाचर, सूरखाचर, सोमलाखाचर, जीवाखाचर आदि दरबारों को, दीनानाथ भट्ट, मयाराम भट्ट, बेचर भट्ट, तुलसी दवे, प्रागजी दवे, आदि ब्राह्मणों को, लाधा ठक्कर, हीरजी ठक्कर, पूंजा सेठ, लवजी सेठ, भगा सेठ, मूलजी सेठ आदि सदगृहस्थों को एवं जीवुबा, लाडुबा आदि महिलाओं को बुलाकर श्रीहरि ने सभा का आयोजन किया।

श्रीहरि धीरे से सभी को संबोधित करते हुए गंभीरतापूर्वक कहने लगे, 'आप सब मुझे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर मानते हैं। मुझे हमेशा प्रसन्न रखने की चेष्टा भी करते हैं, तो आप मेरी कुछ बातें सुनिए और समझने का प्रयास कीजिए। मैंने अपनी इच्छा से इस मृत्युलोक में शरीर धारण किया है। इस धरती पर मेरा कार्य संपन्न हुआ है। मंदिर, शास्त्र, साधु आदि के द्वारा मैंने विशुद्ध सम्प्रदाय की स्थापना कर दी है। मेरा कार्य अब पूर्ण हुआ है। इसलिए अब मैं अन्तर्धान होना चाहता हूँ। मेरे स्वधाम जाने पर आप दुःखी मत होना। क्योंकि यह तो मृत्युलोक है, यह शरीर तो नाशवन्त है, इसलिए आप मुझे वचन दीजिए कि मेरे पीछे कहीं भी, कभी भी आत्महत्या नहीं करेंगे। मैं अब मेरे अक्षरधाम में वापस जाऊँगा।'।

श्रीहरि के शब्द सुनते ही सबके सिर पर बिजली गिरी! कुछ भक्तों के शरीर काँपने लगे, कुछ लोग बेहोश हो गए, कई भक्त दहाड़ें मारकर रोने लगे, भक्तों और संतों से नेत्रों से आँसुओं की धारा निरंतर बहने लगी।

श्रीहरि सब पर करुणादृष्टि करते रहे। उन्होंने सभी के बारंबार आश्वासन दिया, प्रेरणा और धीरज दी। परन्तु वे अपने निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अक्षरधाम जाने का निश्चय कर ही लिया था।

प्रतिज्ञा लिखाई

श्रीहरि ने औषध हो या भोजन, अत्यंत कम लिया करते थे। कभी-कभी बाजरे की राब या खिचड़ी ग्रहण करते। वे जब वन-विचरण से पधारे थे वैसा ही कृष शरीर देखकर संतों की आँखें भर जाती थीं। एक दिन भायात्मानन्द स्वामी उनको ऊलाहना देते हुए कहने लगे, 'आपने मरने का यह क्या ढोंग रचा है? न खाते हैं, न पीते हैं। अरे आप आनन्द मनाते रहिए और हमें भी आनन्दमग्न रखिए। आप हमें छोड़कर चले जाएँगे तो हम भी आपके पीछे मर मिटेंगे। कुछ साल पहले जैसे पीताम्बर नाम के एक ब्राह्मण गुरु के मरने पर उनके सत्ताईस शिष्य उनके पीछे चिता पर चढ़कर जल मरे थे, उसी तरह हम भी मर जाएँगे। आपके पीछे रक्त की नदियाँ बहेँगी। इसलिए कृपया आप धाम में जाने का संकल्प छोड़ दीजिए।'

श्रीहरि ने कहा, 'पीताम्बर तो सामान्य आदमी था। यदि मैं सर्वोपरि भगवान हूँ तो किसी की नकसीर तक नहीं फूटने दूँगा। यदि किसी का आयुष्य पूरा भी हुआ होगा तो आयुष्य बढ़ाकर भी, उसको जिन्दा रखूँगा।' कुछ देर रुककर वे फिर कहने लगे, 'किसी ने भी यदि मेरे पीछे विष खाकर, फाँसी डालकर अथवा किसी भी तरह आत्महत्या की तो वह मेरे धाम को प्राप्त नहीं होगा। वह तो गुरुद्रोही और वचनद्रोही माना जाएगा। जिसने भी मेरे पीछे आत्महत्या का संकल्प किया हो, वह मेरे चरणस्पर्श करके प्रतिज्ञा करें कि हम ऐसा कदम कभी नहीं उठाएँगे।' उन्होंने यह प्रतिज्ञा अनेक संतों-हरिभक्तों को करवाई।

ज्येष्ठ महीने का प्रारंभ हुआ। श्रीहरि की बीमारी भयानक रूप ग्रहण कर रही थी। श्रीहरि का शरीर केवल उनके योग-ऐश्वर्य से ही टीका हुआ था। एक दिन उन्होंने अपने सखा एवं संप्रदाय के दिग्गज संतकवि ब्रह्मानन्दजी को बुलाकर कहा, 'आप जूनागढ़ जाइए और भादरा वाले निर्गुणानन्दजी (गुणातीतानंद स्वामी) को यहाँ आने का आदेश दीजिए।' ब्रह्मानंद स्वामी इस आदेश का रहस्य समझ गये, अब श्रीहरि किसी के रोकने पर रुकनेवाले नहीं। वे तो जाना नहीं चाहते थे परंतु श्रीहरि की आज्ञा के पास उनका कोई चारा नहीं था। उन्होंने अपने साथ जूनागढ़ आनेवाले

संतों को दुःखी हृदय से कहा, 'आप आज श्रीहरि के आकंठ दर्शन कर ले, क्योंकि यह अवसर फिर नहीं मिलेगा। मैं देख रहा हूँ कि श्रीहरि अब ज्यादा दिन हमारे बीच नहीं रहेंगे।' वे दुःखी हृदय से जूनागढ़ जाने के लिए निकल पड़े।

थोड़ी ही दूरी पर उनका रास्ता हिरनों ने काट दिया, अपशुकुन होने के कारण ब्रह्मानंद स्वामी व्याकुल हो गए। उन्होंने रोते हुए संतों से कहा, 'मेरे पैर रह-रहकर रुक रहे हैं, आप लोगों में से यदि किसी को भी श्रीहरि की अंतिम लीला के दर्शन के लिए यहाँ रुकना है तो वे रुक जाए। मुझे तो जाने की आज्ञा हुई है, इसलिए मुझे तो जाना ही पड़ेगा।'।

यह सुनकर कुछ संत पुनः गढ़पुर लौट गए। ब्रह्मानंद स्वामी खिन्न हृदय से चलकर ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी के दिन जूनागढ़ पहुँच गए।

‘हमें स्वस्थ होना है’

ब्रह्मानंद स्वामी के जाते ही गढ़पुर की शून्यता और भी बढ़ गई। वे हमेशा मज्जाक करते हुए वातावरण को हल्का-फुल्का रखते थे। श्रीहरि को हँसते-हँसाते दिन बीत जाता था। परंतु उनके जाते ही श्रीहरि गहरी उदासीनता में सोते रहे। सिर पर चद्दर ओढ़कर वे बिस्तर पर लेटे रहते। न किसी के साथ मिलना-जुलना तथा न तो कुछ खाना-पीना। नित्यानंद स्वामी उस दिन चाँदी के कटोरे में बाजरे की राब लेकर आये। उन्होंने तीन-चार बार श्रीहरि को पुकारा। परंतु वे सिर तक लम्बी चद्दर तानकर सोते ही रहे।

नित्यानंद स्वामी शोकातुर होकर धड़ाम से भूमि पर गिर गए और सिर पछाड़कर रोने लगे। राब की कटौरी दूर जा पड़ी। श्रीहरि तुरन्त चद्दर हटाकर बिस्तर में उठ बैठे और बोले, 'आप लोग क्यों रो रहे हैं? क्या कोई मर गया है?'

नित्यानंद स्वामी ने कहा, 'आप न खाते हैं, न पीते हैं, उदासीन पड़े रहते हैं, तो क्या हम लोग उत्सव मनाएँगे?'

करुणामय श्रीहरि भक्तों के दुःख से द्रवित हो गए। उन्होंने कहा, 'जाईए, पानी गर्म कीजिए, हम स्नान के लिए आते हैं और नैवेद्य तैयार करने के लिए कहें। हमें भोजन करना है। आज हम बहुत ही स्वस्थ हैं।'।

श्रीहरि स्वस्थ हो चूके हैं यह जानकर पूरे दरबार भुवन में आनंद की लहर फैल गई। श्रीहरि स्नान किया, श्वेत वस्त्र धारण किये, वे चेहरे पर प्रसन्नता दिखाने लगे। ब्रह्मचारी द्वारा लाए गए थाल से उन्होंने भोजन भी ग्रहण किया। संध्या के समय वे सभा में पधारे तब दादाखाचर ने झालर-नगाड़े बजवाकर आनंद व्यक्त किया। दरबार भुवन के सदस्यों के द्वारा शक्कर बाँटी गई। सर्वत्र प्रसन्नता और उल्लास से माहौल आनंदित बन गया।

परंतु रात होते ही श्रीहरि ने पुनः वैसी ही उदासी और बीमारी ग्रहण कर ली। वे स्वतः अंतर्लीन हो गए। संतों और भक्तों के मन में एक अनजान सा खौफ फैलने लगा।

काकाभाई को दर्शन

श्रीहरि की कृश काया से अब अधिक बीमारी सहन करना संभव नहीं था। उनके गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर सभी हरिभक्त चिन्तामग्न रहते थे। गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि राज्यों से कई हरिभक्त कुशल समाचार जानने के लिए गढ़पुर आ रहे थे।

उन दिनों श्रीहरि के पास खबर भेजी गई कि रोजका गाँव के भक्तराज काकाभाई मृत्युशय्या पर पड़े श्रीहरि का स्मरण कर रहे हैं। काकाभाई को संकेत मिल गया था कि अब शरीर रहनेवाला नहीं है। उन्होंने तुरंत एक घोड़ी तथा चाँदी की तश्तरी श्रीहरि के चरणों में उपहार के रूप में भेजी और निवेदन करते हुए पत्र लिखा, 'हे जीवनप्राण! भक्तवत्सल प्रभु! यदि संभव हो तो आप मुझे दर्शन देने के लिए घर पधारने की कृपा करें और यदि संभव न हो तो अन्त समय पर मुझे लेने के लिए तो अवश्य पधारिएगा, सेवक को दृष्टि में रखिएगा।'।

पत्र पढ़ते ही श्रीहरि ने देखा कि काकाभाई के आदमी ने दंडवत् करते हुए घोड़ी और चाँदी की तश्तरी समर्पित की है। उन्होंने उसी पल कुछ निर्णय ले लिया और बीमारी को दरकिनार करके रोजका गाँव चलने के लिए संतों-भक्तों को आदेश दे दिया। वे कहने लगे, 'हम स्वस्थ हैं, और आज ही रोजका जाना चाहते हैं। आप सभी को भी मेरे साथ चलना है।' रथ में बिराजमान होकर श्रीहरि संघ के साथ रोजका पधारे। काकाभाई की

आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। श्रीहरि ने उनके घर दो दिन तक निवास किया। काकाभाई के परिवारजनों ने सभी की बहुत सेवा की।

जब वे गढ़पुर के लिए बिदा हो रहे थे तब काकाभाई ने प्रार्थना करते हुए कहा: 'हे महाराज! मुझे तो मेरी यह हाड़-चाम की देह अब नरककुण्ड-सी लग रही है, अतः मुझे उससे छुड़ाकर कृपया अपने अक्षरधाम में ले चलें।' श्रीहरि ने आशीर्वाद दिया, 'काकाभाई, आप चिन्ता मत कीजिए। कुछ ही दिनों में आपको अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।'

उस समय उनकी पत्नी ने अपनी स्वर्ण की चूड़ियाँ श्रीहरि को अर्पण किया। काकाभाई ने कहा, 'प्रभु, इसमें से जो भी द्रव्य मिले, आप मेरी ओर से आप संतों एवं पार्षदों को भोजन की सेवा में उपयोग करना।' श्रीहरि गढ़ड़ा पधारे। उनको पूर्ववत् विचरण करते देखकर सभी बहुत खुश हुए। काकाभाई का शरीर कुछ दिनों के बाद छूट गया। इस ओर गढ़पुर में श्रीहरि ने पुनः बीमारी ग्रहण कर ली।

‘मीठा ढाला केम विसरुं?’

संवत् 1886, ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी का दिन था। ब्रह्मानंद स्वामी गढ़पुर से निकलकर सुबह 7.00 बजे के बाद जूनागढ़ के मंदिर में पहुँचे थे। उस समय गुणातीतानंद स्वामी प्रदक्षिणा कर रहे थे। अचानक मंदिर के शिखर का एक मुख्य हिस्सा टूटकर उनके पैर के पास आ गिरा। यह भारी अपशकुन था। उनके दिल में किसी अमंगल की शंका होने लगी। उसी वक्त ब्रह्मानंद स्वामी ने मंदिर में प्रवेश किया। वे खिन्नहृदय और उदास थे। उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी को सारी बातों से अवगत किया और कहा, 'आप इसी समय गढ़ड़ा के लिए प्रस्थान करें। श्रीहरि ने आपको शीघ्र बुलाया है। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' गुणातीतानंद स्वामी फौरन अपने निवास पर गए। खूँटी से अपना झोला उठाया और एक साथी संत को लेकर पैदल ही गढ़ड़ा की ओर चल पड़े। एक दिन में चालीस कोस चलकर वे केवल दो दिन में प्रातःकाल गढ़ड़ा जा पहुँचे।

सारे गाँव में एक भयानक शून्यावकाश दिख रहा था। अक्षरकुटीर में सुरा खाचर पहरा दे रहे थे। स्वामी के आते ही उन्होंने श्रीहरि को खबर दी



कि जूनागढ़ से गुणातीतानंद स्वामी आ पहुँचे हैं। यह सुनते ही श्रीहरि तुरन्त पलंग पर उठ बैठे और कहने लगे, ‘स्वामी आये? उनको शीघ्र ही यहाँ बुलाओ।’ स्वामी ने भीतर आते ही दण्डवत्प्रणाम किया। श्रीहरि की निर्बल काया देखते ही आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। श्रीहरि ने उनको पलंग के पांइते पर बैठने का संकेत किया। वे उनके चरणों में बैठ गये। बड़े प्रेमभाव से स्वामी की ओर देखते हुए श्रीहरि कहने लगे,

‘मीठा क्हाला केम वीसरं, मारुं तमथी बांधेल तन हो,
तरस्याने जेम पाणीडुं क्हालुं, भूख्याने भोजन हो।’

अर्थात् हे प्रिय आत्मन्! मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ? मेरा शरीर तुम से बंधा हुआ है। प्यासे को जैसे पानी और भूखे को जैसे भोजन प्रिय लगता है, वैसे ही तुम मुझे प्यारे हो।

श्रीहरि को वास्तव में विश्राम की आवश्यकता थी। वे इतने से कष्ट में भी श्रमित महसूस कर रहे थे। ‘महाराज, अब आप विश्राम करें।’ स्वामी ने कहा, और वे उठकर बाहर आ गये। श्रीहरि फिर एकबार उदास होकर सो गए। तीन दिन तक वे प्रतिदिन अपने थाल से गुणातीतानंद स्वामी को प्रसाद

देकर प्रसन्नता व्यक्त करते रहते थे। उनकी प्रसन्नता देखकर सभी का मन शांत होने लगा।

स्वधाम गमन

परंतु ज्येष्ठ शुक्ला दशमी का मंगलवार धरती के लिए अमंगल सिद्ध हुआ। आज प्रातःकाल श्रीहरि जागे, मुकुन्द वर्णी ने उनको स्नान करवाया। सभीके आग्रह के कारण वे भोजन के लिए बिराजमान हुए। परंतु उनसे कुछ खाया नहीं गया। अक्षरकुटीर के बाहर आकर उन्होंने उपस्थित भक्तों को दर्शन दिया, गऊ और स्वर्ण-मुद्राओं का दान दिया। तथा अक्षरकुटीर में आकर तुरंत गोपालानन्द स्वामी को बुलाया। उनके सामने श्रीहरि फिर एकबार इस लोक से वापस लौटने की अपनी इच्छा व्यक्त करने लगे।

तत्पश्चात् गुणातीतानन्द स्वामी को बुलाकर एकान्त में कहने लगे, 'स्वामी! इस लोक में रहने की हमारी इच्छा नहीं है। आप हमारे स्वरूप की यथार्थ महिमा का विस्तार करते रहना। सभी को अवतार और अवतारी का भेद समझाना। सारे सत्संगियों को परमात्मा के आनंद में सराबोर करते रहना। सोरठ (जूनागढ़) प्रदेश के हमारे हरिभक्तों को हम अपनी मूर्ति का सुख नहीं दे पाए, वह अब तुम्हारे द्वारा देंगे।' इतना कहकर श्रीहरि अन्तर्लीन हो गए।

कुछ देर के बाद उन्होंने मुकुन्द वर्णी से चौकी मंगवाई। श्रीहरि उस पर स्वस्तिक आसन लगाकर स्वरूप का ध्यान करने लगे। स्थिर अन्तर्वृत्ति करके उन्होंने अचानक कहा, 'जय स्वामिनारायण।' और स्वतंत्रतापूर्वक एकाएक देह का त्याग कर दिया। संतों-हरिभक्तों के सिर पर मानो बिजली गिरी। श्रीहरि के स्वधाम पधारने के समाचार से संत, हरिभक्त, पुरुष-स्त्रियाँ आदि आक्रन्द करने लगे। चारों ओर भीषण कल्पांत चल रहा था। किसी भी सुध नहीं थी कि किसी को भी शांत करने का प्रयास करें। गोपालानन्द स्वामी ने आकर सभी को सान्त्वना दी।

गंगा तथा उन्मत्तगंगा के जल से श्रीहरि के शरीर को स्नान करवाया गया। पीताम्बर, श्वेत कुर्ता, दुपट्टा और श्वेत पगड़ी तथा आभूषणों के साथ पुष्पमालाएँ अर्पण की गईं। केसरयुक्त चन्दन से तिलक के बीच कुंकुम का टीका लगाया गया। वरिष्ठ संतों ने श्रीहरि की आरती उतारी। उनके शरीर

को एक सुंदर पालकी में बिराजमान करके सभी अबीर, गुलाल, कंकुम तथा पुष्प, उड़ाते हुए धुन-भजन तथा नाम स्मरण के साथ लक्ष्मीवाड़ी में आ पहुँचे। यहाँ उनका चन्दनकाष्ठ की चिता पर ब्राह्मणों के द्वारा शास्त्रोक्त विधि अग्नि संस्कार किया गया। श्रीफल, घी, जौ, तिल आदि से हवन किया जाने लगा। आज इसी प्रसादी स्थल पर एक सुन्दर स्मृति मंदिर विद्यमान है।

‘मैं तो आप में अखंड रहा हूँ’

अग्नि की शिखाएँ विराट शून्य की ओर उठ रही थी। सबके दिलों में रिक्तता छाई हुई थी। हर कोई शून्यमनस्क होकर श्रीहरि की स्मृतियों में खोये रहते थे। दादाखाचर यही सोचकर रो रहे थे कि ‘अब नित्य नवीन सुख कौन देगा?’ उनको बड़े-बड़े संतों-भक्तों ने सान्त्वना दी। पर उनके दिल को सुकून नहीं मिल रहा था। गोपालानंद स्वामी ने कहा, ‘भक्तराज, यदि आप धैर्य नहीं रखेंगे तो किसी को भी धैर्य नहीं रहेगा, इसलिए आप उस प्रासादिक स्थल पर जाइए जहाँ श्रीहरि हमेशा बिराजमान होकर कथामृत का आस्वाद कराते थे।’ दादाखाचर जैसे ही वहाँ गए तो स्तब्ध रह गए। श्रीहरि सभा के बीच बैठे हैं, कंठ में गुलाब के पुष्पों की माला सुशोभित है और सभाजनों से बातें कर रहे थे। दादाखाचर हाथ जोड़कर खड़े रह गए। तभी श्रीहरि की आवाज़ सुनाई दी, ‘अरे, तुम रोते हो किस लिए? तुम मुझे याद करना, मैं उसी वक्त तुम्हें दर्शन दूँगा।’ इतना कहकर अपने कंठ से गुलाब की माला निकालकर दादाखाचर को आशीर्वाद के रूप में दे दी। दादाखाचर का मन उसी दिन शांत हो गया।

संध्या के बाद गहन अन्धकार का साम्राज्य फैल चुका था। गुणातीतानंद स्वामी शौचादि से निवृत्त होकर हाथ में तुम्बी लिए हुए लक्ष्मीवाड़ी में वापस लौट रहे थे। रास्ते में पानी के छोटे-से प्रवाह के पास उन्होंने हरी दूर्वा देखा तो सोचने लगे, ‘इस दूर्वा का जीवन पानी है, पानी से ही वह हरी और प्रफुल्लित रहती है। हमारे लिए जीवन महाराज ही थे, वे तो अब चल बसे!’ विचारों का यह प्रवाह अचानक अटक गया और वे मूर्छावश होकर उसी खेत में गिर पड़े। हाथ में रही तुम्बी दूर जा गिरी।

उसी पल श्रीहरि ने दिव्य रूप में प्रकट होकर स्वामी का हाथ थाम लिया। उनको जाग्रत करके कहा, 'अरे, यह क्या!? मैं कहाँ गया हूँ? मैं तो आप में निरंतर रहा हूँ, निरंतर रहा हूँ, निरंतर रहा हूँ।' इतना कहकर, श्रीहरि अपने प्राकट्य का रहस्य बताकर अदृश्य हो गये। आज गुणातीत परंपरा के द्वारा श्रीहरि इस धरती पर प्रकट हैं।

भगवान स्वामिनारायण का पृथ्वी पर निवास :

	वर्ष	मास	दिन
(1) आ.सं. 1837 चै.शु. 9 से आ.सं. 1849 आ. शु. 10, धर्मभक्ति के घर छपिया-अयोध्या में निवास।	11	3	1
(2) आ.सं. 1849 आषाढ शु. 10 से आ.सं. 1856 श्रा. कृ. 6, तपश्चर्या और वनविचरण किया।	7	1	11
(3) आ.सं.1856 श्रा. कृ. 6 से आ.सं.1857 ज्ये. कृ. 12, मुक्तानन्द स्वामी के साथ लोज के आश्रम में।	0	10	6
(4) आ.सं. 1857 ज्येष्ठ कृ. 12 से आ.सं. 1858 मार्ग. शु. 13, रामानन्द स्वामी के साथ निवास तथा विचरण।	1	5	16
(5) आ.सं.1858 मार्ग. शु. 13 से आ.सं.1886 ज्ये.शु. 10 सत्संग विचरण एवं सम्प्रदाय संस्थापन।	28	2	27
इस पृथ्वी पर निवास	49	2	1

ग्रन्थसूचि :

1. श्रीजी के प्रसादीपत्र
2. श्रीहरिलीलामृत
3. श्री हरिचरित्रामृतसागर
4. भक्तचिन्तामणि
5. श्रीहरिचरित्रचिन्तामणि
6. अक्षरानन्द स्वामी की बातें
7. भायात्मानन्द स्वामी की बातें
8. श्रीस्वामिनारायण चरित्र,
9. स्वामिनारायण सम्प्रदाय का सचित्र इतिहास
10. गुणातीतानन्द स्वामी का जीवनचरित्र - ह.त्रि. दवे
11. स्वामी सहजानन्द - कि. घ. मशरुवाला
12. श्री स्वामिनारायण - एम. सी. पारेख।

